

नमोऽस्तु ते व्यास विराजते बुद्धे पुमान्
रविंदाय तपत्रनेत्र ॥ येन वया भारत
तेन पुराः प्र ॥ श्रीर्जयति ॥ ज्वालि तो ज्ञान
मयः प्रदीप भाषा टीका ॥ २ ॥ प्रपन्नपादि
जाता यतो ब्रह्मैकपादे ज्ञानमुद्र
य कृष्णाय जीतामृतद्वहेनमः ॥ ३ ॥
अथमंगलम् ॥ शुक्लांबरधरविष्णुं शशिवर्णे चतु
र्भुजम् ॥ प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चै
व ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ व्यासं वसिष्ठं नृपारं शक्तेः पौ
त्रमकल्मषम् ॥ पराशरात्मजं वंदे शुकतातंतपोनिधिम्
॥ ३ ॥ व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे ॥ न
मो वै ब्रह्मविधये वासिष्ठाय नमोनमः ॥ ४ ॥ अचतुर्वदनो
ब्रह्माद्विबाहुरपरो हरिः ॥ अफाललोचनः शंभुर्भगवान् बा
दरायणिः ॥ ५ ॥ ॥ इति मंगलम् ॥ ॥
श्रीगणेशाय नमः ॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥ जन्मोदय
यतो देवं तं नत्वा स्वहृदि स्थितम् ॥ वाक्यार्थबोधिनीं स्तुतुं गीता
व्याख्यां करोम्यहम् ॥ १ ॥ श्रीश्रीनिवासतातार्यशिष्यो ब्रह्मकुलो
द्भवः ॥ रघुनाथप्रसादोऽहं सुकलोहरिसेवकः ॥ २ ॥ उपोद्घातः ॥
प्रथम श्रीमद्भगवद्गीताके प्रगट होनेका कारण कहता हौंकि,
राजा पांडु औ राजा धृतराष्ट्र ये दोनौ वैमात्र भाई थे जिनमे
राजा पांडुके दोस्ती थीं पहिलि कुंती, दुसरी माद्री, जिनमे कुंतीके
तीन पुत्र थे युधिष्ठिर, भीम औ अर्जुन औ माद्रीके दो पुत्र नकुल
औ सहदेव औ राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे जिनमे दुर्योधन ज्ये
श्रीमद्भगवद्भगवद्गीताके प्रगट होनेका कारण कहता हौंकि,
राजा पांडु औ राजा धृतराष्ट्र ये दोनौ वैमात्र भाई थे जिनमे
राजा पांडुके दोस्ती थीं पहिलि कुंती, दुसरी माद्री, जिनमे कुंतीके
तीन पुत्र थे युधिष्ठिर, भीम औ अर्जुन औ माद्रीके दो पुत्र नकुल
औ सहदेव औ राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे जिनमे दुर्योधन ज्ये
श्रीमद्भगवद्भगवद्गीताके प्रगट होनेका कारण कहता हौंकि,
राजा पांडु औ राजा धृतराष्ट्र ये दोनौ वैमात्र भाई थे जिनमे
राजा पांडुके दोस्ती थीं पहिलि कुंती, दुसरी माद्री, जिनमे कुंतीके
तीन पुत्र थे युधिष्ठिर, भीम औ अर्जुन औ माद्रीके दो पुत्र नकुल
औ सहदेव औ राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे जिनमे दुर्योधन ज्ये

सुदव सुतो देव कसु चारु रम दनम देव
की परमानं दं कृष्ण व दे जग दु रुम ॥५॥

गौतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

२
ष पुत्र था परंतु राजा धृतराष्ट्र जन्मांध थे इसवास्ते राज्यकार्य
सर्व दुर्योधनके स्वाधीन था जब राजा युधिष्ठीरको चौपडखेलाइ
छल करिके राज्य लैलिया औ वनवास दिया, जब ये वनवास
से आये औ राज्य मागा तब इन्होंने राज्य न दिया इसलिये
युद्धके वास्ते कुरुक्षेत्रको चलनेलगे तब धृतराष्ट्रने भी तयारीकी
जब व्यासजीने कहा कि तुम नेत्रबिना युद्धमे क्या करौंगे तब
धृतराष्ट्र बोले की हम युद्धका वृत्तांतही सुना करौंगे सो सुनिके व्या-
सजीने कहा की यह संजय तुझारा सारथी हमारा शिष्य है
इसको हम वरदान देते हैं सो इसको इहांही बैठे सर्व वृत्तांत दृ-
ष्टिगोचर होयगा, सो सुनिके राजा धृतराष्ट्र हस्तिनापुरही मे रहे
और सर्व कुरुक्षेत्रमे जायके युद्धका प्रारंभ किया तहां अर्जुनने
देखा कि दोनौ सेनौ मे हमारे ही सुहृद मित्र औ कुटुंबी हैं इनको
हम कैसे मारें ऐसा समुझिके धनुषबान डारि दिया औ रथमे प
आद्वागमे जा बैठा जब श्रीकृष्णने देखा कि इस अर्जुनने अ
पना क्षत्रियधर्म त्यागी दिया औ धर्मत्यागने से इसका कल्या
ण न होयगा इसवास्ते, इसको तत्त्वज्ञानका उपदेश करना चाहि
ये, जब यह स्वधर्ममे प्रवर्त होयगा ऐसा विचारिके गीताशास्त्र
उपदेश किया, सोई गीता श्रीमन्माहाभारतमे वेदव्यासजीने यु
क्त कथा, तिसमे सर्व श्लोक श्रीकृष्णमुखारविंदनिर्मित हैं औ
कुछ श्लोक प्रबंध रचनाके वास्ते व्यासजीने भी निर्माण किये हैं,
तहां प्रथम श्लोक धृतराष्ट्रके प्रश्नका है, धृतराष्ट्र संजयसे पूछा है-

मुलम-

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्स

वः ॥ मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

ह व ती कृपे रा व ड ती क र्से न वे ला कुं

पांडवै र रान दी के व र्त कः के

11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1041 1042 1043 1044

अन्वयः

हे आचार्य, धीमतातवशिष्येण द्रुपदपुत्रेण व्यूढां पांडु-
पुत्राणां एतां महतीं चमूं पश्य ॥ ३ ॥

टीका.

दुर्योधन द्रोणाचार्यसे कहते हैं कि, हे आचार्य, बुद्धिमान्
और आपका शिष्य ऐसा जो द्रुपदराजाका पुत्र धृष्टद्युम्न ति-
नसे व्यूहरचना करिके सजी है ऐसी जो पांडुपुत्रोंकी यह
श्रेष्ठ सेना इसको तुम देखौ ॥ ३ ॥

मूलम्.

अत्रशूरामहेष्वासाभीमार्जुनसमायुधि ॥ युयु
धानोविराटश्चद्रुपदश्चमहारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतु
श्चेकितानःकाशिराजश्चवीर्यवान् ॥ पुरुजित्कुं
तिभोजश्चशैब्यश्चनरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्यु
श्चविक्रांतउत्तमौजाश्चवीर्यवान् ॥ सौभद्रोद्रौप
देयाश्चसर्वएवमहारथाः ॥ ६ ॥

अन्वयः

अत्र अस्यां सेनायां युधि संग्रामे भीमार्जुनसमाः महे
ष्वासाः संति ते इमे युयुधानः विराटः महारथः द्रुपदः
॥ ४ ॥ धृष्टकेतुः चेकितानः च वीर्यवान् काशिराजः
पुरुजित् कुंतिभोजः च नरपुंगवः शैब्यः ॥ ५ ॥ विक्रांतः
च द्रौपदेयाः एते सर्वे महारथाः एव ॥ ६ ॥

टीका.

इस सेनामे जे गूर वीर हैं वै संग्राम करनेमेभी और अर्जु-

१६८२

अ. ग.
३३

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

५

नके समान बडे धनुषधारी हैं ते ये युयुधान विराट औ महारथ
द्रुपद ॥४॥ धृष्टकेतु, चेकितान औ प्राक्रमी काशीका राजा पुरु
जित्, कुंतिभोज तथा नरनमे श्रेष्ठ शैव्य ॥५॥ ऐसाही शूरवीर
प्राक्रमवालौमे श्रेष्ठ औ बलवान् ऐसा युधामन्यु औ सुभद्राका
पुत्र अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पांचौ पुत्र ये सर्व महारथी है, जो
दसहजारशूर वीरोंको एकही जीतै औ शस्त्र तथा शास्त्रमे प्रवी-
ण होई उसको महारथी कहते हैं ॥ ३ ॥

मूलम.

अस्माकंतुविशिष्टायेतान्निबोधद्विजोत्तम ॥ ना
यकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थतान्ब्रवीमि ॥ ७ ॥
भवान्भीष्मश्चकर्णश्चकृपश्चसमितिंजयः ॥ अ
श्वत्थामाविकर्णश्चसौमदत्तिस्तथैवच ॥ ८ ॥ अ
न्येचबहवःशूरामदर्थेत्यक्तजीविताः ॥ नानाशस्त्र
प्रहरणाःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ ९ ॥



अन्वयः

हेद्विजोत्तम, येतु अस्माकंसैन्यस्य नायकाः विशिष्टाः ता
न् निबोध तान् ते संज्ञार्थं ब्रवीमि ॥७॥ भवान् भीष्मः च
कर्णः च समितिंजयः कृपः अश्वत्थामा विकर्णः तथा एव
सौमदत्तिः ॥८॥ मदर्थं त्यक्तजीविताः नानाशस्त्रप्रहरणाः
अन्ये च बहवः शूराः संति एते सर्वे युद्धविशारदाः संति ॥९॥

टीका

दुर्योधन द्रोणाचार्यसे कहते हैं कि, हे द्विजोत्तम, जे हमारी
सेनाकेशरदार श्रेष्ठ हैं तिनको तुम जानौ, मै उनके नाम जानने

केवास्ते कहता हों ॥७॥ आप भीष्म, कर्ण औ संग्रामजीतने वाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, तैसाही सोमदत्तराजाका पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥ औ मेरेवास्ते त्याग है जीवन जिन्होंने ऐसे नानाशस्त्रोंके प्रहार करनेवाले औरभी बहुत गुरवीर हैं ये सर्व युद्ध करनेमे चतुर हैं ॥ ९ ॥

मूलम्

अपर्याप्तंतदस्माकंबलंभीष्माभिरक्षितम् ॥ प
र्याप्तंत्विदमेतेषांबलंभीष्माभिरक्षितम् ॥ १० ॥
अयनेषुचसर्वेषुयथाभागमवस्थिताः ॥ भीष्म
मेवाभिरक्षंतुभवंतःसर्वेएवहि ॥ ११ ॥

अन्वयः

अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं तत् अपर्याप्तं तु एतेषां
इदं बलं भीष्माभिरक्षितं अपर्याप्तं ॥ १० ॥ अतः सर्वेषु अ
यनेषु यथाभागं अवस्थिताः संतः भवन्तः सर्वेहि भीष्म
एव अभिरक्षन्तु ॥ ११ ॥

टीका

हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना भीष्मकरिके रक्षित हैतौभी असमर्थ दीखती है औ इनौकी सेना सात अक्षौहिणी है तौभी भीमकरिके रक्षित समर्थ दीखती है, इहां दुर्योधनके मनकायह तात्पर्य है कि, भीष्मपितामह उभयपक्षपाती हैं, कदापिउनका पक्षकिया तौ हमारी सेनाका रक्षक कोईभी नहीं इसवास्ते आप विचार करो ॥ ११ ॥ इसवास्ते जहांजहां परसेना प्रवेशकेस्थान हैं याने नाके हैं, उन सर्व नाके नाकेपर यथाभाग याने आपआ

पके यूय लैके सावधानखडे व्हैके आपलोग भीष्महीकी रक्षाकरौ याने कोई परसेनाका दूतभीभीष्मके समीपन आने पावै ॥ ११ ॥

मूलम्.

तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवद्धः पितामहः ॥ सिंहना
दंविनद्योच्चैःशंखंदध्मौप्रतापवान् ॥ १२ ॥

अन्वयः

प्रतापवान कुरुवृद्धः पितामहः तस्य हर्षं संजनयन्
सन् उच्चैः सिंहनादं विनद्य शंखं दध्मौ ॥ १२ ॥

टीका.

प्रतापी औ कुरवंशिनमें बडे तथा पितामह जो भीष्म सो
दुर्योधनके हर्ष उत्पन्न करते हुवे उंचेस्वरसे सिंहसरीखे गर्जना
करिके आपका शंख बजाते भये ॥ १२ ॥

मूलम्.

ततःशंखाश्चभेर्यश्चपणवानकगोमुखाः ॥ सहस्रै
वाभ्यहन्यंतसशब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

अन्वयः

ततः शंखाः च भेर्यः पणवानकगोमुखाः सहसा एव अ
भ्यहन्यंतसशब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

टीका.

भीष्मने शंख बजायातदनंतर सर्वसैनौमें शंख, भेरी, ढोल,
नगारे, रणसिंहे ये सर्व वाजे एकाएकी बजने लगे सोशब्द बहुत
भारी होता भया ॥ १३ ॥

मूलम्.

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ॥ माधवः
पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

अन्वयः

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ माधवः च पाण्डवः
एव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

टीका.

सर्व बाजे बाजनेके पीछे शुक्लवर्णके घोड़ोंसे जुड़ा ऐसा जो
बड़ा रथ तिसपर बैठेहुवे श्रीकृष्ण और अर्जुन ये दोनों आप
आपके दिव्यशंख यानें आप्राकृतशंखोंको बजाते भये ॥ १४ ॥

मूलम्.

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥ पौंड्रं
धूमौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥ अनं
तविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ नकुलः सहदे
वश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

अन्वयः

हृषीकेशः महाशंखं पाञ्चजन्यं दध्मौ, धनंजयः देवदत्तं द
ध्मौ, भीमकर्मा वृकोदरः पौंड्रं दध्मौ ॥ १५ ॥ कुंतीपुत्रः
राजा युधिष्ठिरः अनंतविजयं शंखं दध्मौ, नकुलः च सह
देवः एतौ सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

टीका.

हृषीकेश जो श्रीकृष्ण ते आपका जो श्रेष्ठ शंख पाञ्चजन्य
उसको बजाते भये, धनंजय जो अर्जुन सो देवदत्तनामा शंख

बजाते भये औ भयंकर हैं कर्म जिनके औ उदरसे जिनके वृ-
क नाम अग्नि अतिप्रबल है ऐसे जोभीम सो पौंड्रनाम महाशं-
ख बजाते भये ॥१५॥ कुंतीके पुत्र राजायुधिष्ठिर अनंतविज-
यनाम शंख बजातेभये नकुल सुघोषनाम शंखबजाते भये
सहदेव मणिपुष्पक नाम शंख बजाते भये ॥ १६ ॥

मूलम्.

काश्यश्चपमेष्वासःशिखंडीचमहारथः ॥ धृष्ट-
द्युम्नोविराटश्चासात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदोद्रौपदेयाश्चसर्वशःपृथ्वीपते ॥ सौभद्रश्च
महाबाहुःशंखान्दध्मुःपृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ सधो
षो धार्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ॥ नभश्चपृ-
थिवींचैवतुमुलोव्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

अन्वयः

परमेष्वासःकाश्यःचमहारथःशिखंडीधृष्टद्युम्नः विराटः
च अपारजितःसात्यकिः ॥१७॥ हेपृथिवीपते द्रुपदः च
सर्वशःद्रौपदेयाःचमहाबाहुःसौभद्रःइमेसर्वे पृथक्पृथक्
शंखान्दध्मुः ॥१८॥ सतुमुलो धोषःनभःच पृथिवींव्यनु
नादयन् सन् धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥१९॥

टीका.

श्रेष्ठ है धनुष्यजिसकाऐसाकासिराज औ महारथीशिखंडी
औधृष्टद्युम्न विराट तथा शत्रुघ्नकरिके अजित ऐसा सात्यकि १७
हेपृथिवीपतेधृतराष्ट्राजाद्रुपदऔद्रौपदीकेसर्वपुत्रऔविशालहै
वाहैं जिनकीऐसा सुभद्राकापुत्र अभिमन्यु ये सर्व न्यारे न्यारे
आप आपके शंखबजातेभये ॥१८॥ सो कोलाहलशब्द आका

श औपृथ्वीको शब्दायमान करताकरता तुझारे पुत्रोंका हृदय विदीर्ण किया ॥ १९ ॥

मूलम.

अथव्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥
प्रवृत्तेशस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥ हृषी-
केशं तदा वाक्यमिदमाहमहीपते ॥ सेनयोरुभयो-
र्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१

अन्वयः

हेमहीपते अथ शस्त्रसंपाते प्रवृत्ते सति कपिध्वजः पांडवः
धार्तराष्ट्रान् व्यवस्थितान् दृष्ट्वा तदा धनुः उद्यम्य हृषी-
केशं इदं वाक्यमाह, हे अच्युत उभयोः सेनयोर्मध्येमे-
रथं स्थापय ॥ २१ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रको कहते हैं कि हे महीपते वह बड़ा घोरशब्द
निवृत्तहुये पीछे शस्त्रोंके चलनेकी तयारी भई तब कपिनाम वा-
नरका चिन्ह है ध्वजामें जिनके ऐसे पांडुके पुत्र जो अर्जुन सो
तुझारे पुत्रोंको युद्ध करनेको खड़े देखिके धनुषको हाथमे ऊँचा
लैके श्रीकृष्णसे ये वचन बोलते भये कि हे अच्युत दोनों सेनों
के मध्यमे मेरा रथ स्थापित करौ ॥ २१ ॥

मूलम-

यावदेतान्निरीक्ष्येहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥ कै-
र्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

अन्वयः

अहं यावत् एतान् योद्धुकामान् अवस्थितान् निरीक्ष्ये
अस्मिन् रणसमुद्यमे मया सह कैः योद्धव्यं ॥ २२ ॥

टीका

मैं प्रथम ये जो युद्ध कि इच्छा करिके स्थित हैं तिनको देखौंगा कि इसरणके प्रारंभमें मेरेको कोन कोनसे युद्ध करना योग्य है ॥ २२ ॥

मूलम्

योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहं य एतेऽत्र समागताः ॥

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

अन्वयः

य एते दुर्बुद्धेः धार्तराष्ट्रस्य युद्धे प्रियचिकीर्षवः अत्र समागताः तान् योत्स्यमानान् अहं अवेक्ष्ये ॥ २३ ॥

टीका

जे ये यत्तने दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्रदुर्योधनके युद्धमें प्रिय करने की इच्छा करनेवालोंको मैं देखा चाहता हौं ॥ २३ ॥

मूलम्

संजय उवाच ॥ एवमुक्तौ हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥

॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षतां ॥

उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

अन्वयः

संजय उवाच हे भारत गुडाकेशेन एवमुक्तः हृषीकेशः उभयोः सेनयोः मध्ये रथं स्थापयित्वा भीष्मद्रोणप्रमुखतः च सर्वेषां महीक्षतां प्रमुखतः इति उवाच हे पार्थ एतान् समवेतान् कुरून् पश्य ॥ २५ ॥

टीका

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये कि, हे भारत यानें भरतवंशमें उत्पन्न हे धृतराष्ट्र गुडाका जो निद्रा उसका जीतनेवाला जो

अर्जुन तिसने जब कहाकि हे कृष्ण हमारा रथ दोनों सेनाके बीचमें खड़ाकरो तब श्रीकृष्णजीने दोनों सेनाओंके मध्यमे रथ खड़ा करिके भीष्म द्रोणाचार्य और सर्व राजोंके सन्मुख ये वाक्य बोलेकि हे पृथाके पुत्र ये जो यकष्टे भये हैं कुरुवंशी इनको तुम देखो ॥ २५ ॥

मूलम्.

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थःपितृन्पितामहान् ॥
 आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखीं
 स्तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान्सुहृदश्चैवसनेयोरुभयोर
 पि॥ तान्समीक्ष्यसकौंतेयःसर्वान्बन्धून्वस्थितान्
 ॥ कृपयापरयाविष्टोविषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

अन्वयः

अथपार्थः तत्रस्थितान् पितृन् पितामहान् आचार्यान्
 मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् तथासखीन् ॥ २६ ॥
 श्वशुरान् च सुहृदःएव अपश्यत् सकौंतेयः उभयोःसेन
 योः अपि तान् सर्वान् बन्धून् अवस्थितान् समीक्ष्य पर-
 या कृपया विष्टः विषीदन् सन् इदं अब्रवीत् ॥ २७ ॥

टीका.

जब श्रीकृष्णने दोनों सेनाओंके मध्यमे रथ स्थापित करिके कहाकी हे अर्जुन, ये कुरुवंशी खड़े हैं इनको देखो तब पृथाकापुत्र पार्थ याने अर्जुन दोनों सेनाओंमें देखते हैं तौ पितायाने पितास दृश भूरिश्रवादिक काका पितामह भीष्म सोमदत्तादिक आचार्य द्रोणाचार्यादिक मातुल शल्य शकुनि इत्यादिक भ्राता दुर्योधनादिक पुत्र द्रौपदीसे उत्पन्नपांच पौत्र लक्ष्मादिकोंके बेटे स

स्वा अश्वत्थामा जयद्रथादिक ॥२६॥ श्वशुर द्रुपद आदिक औ सुहृद वे जो प्रत्युपकार बिना प्रीतिकरैते कृतवर्मादिक इन से-
बको देखता भया, इन सर्वबंधुनको युद्धकेवास्ते खडे देखिकेअ
ति रुपा करिके युक्त अगाडी कहैगे वै वचन श्रीकृष्ण भगवानसे
बोला इहां कौतेय याने कुंतिपुत्र कहनेका तात्पर्यकि, ऐसी
जगह करुणा करना पुरुष बुद्धिवालेका धर्म नहीं है ॥ २७ ॥

मूलम.

अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्णायुयुत्सुं समुप-
स्थितं ॥ सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥ गांडी
वंसं स ते हस्ता त्वक्चैव परिदह्यते ॥ न च शक्नोम्यव-
स्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥ निमित्तानि च
पश्यामि विपरीतानि केशव ॥ न च श्रेयोऽनुपश्या-
मि ह त्वास्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

अन्वयः

अर्जुनउ० ॥ हे कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितं इमं स्वजनं दृ-
ष्ट्वा मम गात्राणि सीदंति च मुखं परिशुष्यति मे शरीरे वेष-
थुः च रोमहर्षः जायते ॥ २९ ॥ हस्तात् गांडीवं संसते च
त्वक् एव परिदह्यते अहं अवस्थातुं न शक्नोमि च मम मनः
भ्रमति इवा ३० ॥ हे केशव निमित्तानि च विपरीतानि पश्या-
मि आहवे स्वजनं हत्वा अनुश्रेय अपि न पश्यामि ॥ ३१ ॥

टीका.

अर्जुन कहते भये कि, हे श्रीकृष्ण युद्ध कि है इच्छा जिनके ऐसे
जो ये हमारे ही बंधु जन नजीक स्थित हैं इनको देखिके मेरे गा

त्र शिथिल होते हैं और मुखभी सूखता है और मेरे शरीरमें कंपा और रोमांचभी होते हैं ॥ २९ ॥ हाथसे गांडीव धनुषभी पड़ा जाता है औ त्वचाभी जली जाती है मैं खड़े होनेकोभी नहीं सकता हौं और मेरा मनभी भ्रमता जैसा है ॥ ३० ॥ हे केशव निमित्त याने शकुन वेभी विषरीत ही देखता हौं औ संग्राममें आपके बंधुजनौंका बध करिके पीछे कल्याण होयगा सोभी नहीं देखता हौं ॥ ३१ ॥

मूलम्

नकांक्षेविजयंकृष्णनचराज्यंसुखानिच ॥ किं
नोराज्येनगोविंदकिंभोगैर्जीवितेनवा ॥ ३२ ॥ ये
षामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाःसुखानिच ॥ तइमे
ऽवस्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हे कृष्ण अहं विजयं न कांक्षे च राज्यं न कांक्षे च सु-
खानि न कांक्षे, हे गोविंद नः अस्माकं राज्येन किं वा
भोगैः किं वा किं जीवितेन ॥ ३२ ॥ नः अस्माभिः ये-
षामर्थे राज्यं कांक्षितं च भोगाः कांक्षिताः सुखानि
कांक्षितानि ते इमे प्राणान् च धनानि त्यक्त्वा युद्धे
अवस्थिताः ॥ ३३ ॥

टीका.

हे कृष्ण मैं संग्रामजीतना नहीं चाहता हौं औ राज्यभी न
ही चाहता हौं औ सुखभी नहीं चाहता हौं, हे गोविंद हमको रा-
ज्यसे क्या प्रयोजन है अथवा भोगोंसे क्या प्रयोजन है अथवा
जीवनेसेभी क्या प्रयोजन है ॥ ३२ ॥ हमने जिनके वास्ते राज्य
चाहता और भोग चाहेथे औ सुखभी चाहेथे ते ये सब प्राण

और धनौको त्यागिके युद्धमे खडे हैं ॥ ३३ ॥

मूलम्.

आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैवचपितामहाः ॥ मातु
लाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसंबंधिनस्तथा ॥ ३४ ॥
नतानहंतुमिच्छामि घ्नतोऽपिमधुसूदन ॥ अपि
त्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंनुमहीकृते ॥ ३५ ॥

अन्वयः

इमे आचार्याःपितरः पुत्राःतथा एव पितामहाःमातुलाः
श्वशुराः पौत्राःश्यालाःतथा संबंधिनः संति ॥ २४ ॥ हे
मधुसूदन त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोःअपि एतान् घ्नतोपि हं
तुं इच्छामि महीकृते किंनु ॥ ३५ ॥

टीका.

अर्जुन कहतेभये कि जे ये सन्मुख लडनेको खडे हैं ते येसब
कोई आचार्य कोई पितासदृश कोई पुत्रतथा पितामह मामा
ससुर पौत्र शाले तथा औरभी संबंधीही हैंइसवास्ते हेमधुसूदन
तीन लोकके राज्यके वास्ते भी जो ये मेरेकोमारें तौ भी मै
इनके मारनेकी इच्छा नहीं करताहौं औ पृथ्वीके वास्ते
तोक्या मारौं ॥ ३५ ॥

मूलम्.

निहत्यधार्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन ॥ पा
पमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥
तस्मान्नार्हावयंहंतुंधार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान्॥स्वज
नंहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन धार्तराष्ट्रान् निहत्यनःकाप्रीतीःस्यात् एतान्
 आततायिनःहत्वा अस्मान् पापं एव आश्रयेत् ॥ ३६ ॥ त
 स्मात् स्वबांधवान् धार्तराष्ट्रान् हंतुं वयं अर्हान् हेमाध
 व हि स्वजनं हत्वा वयं कथं सुखिनः स्याम ॥ ३७ ॥

टीका.

हे जनार्दन धृतराष्ट्रके पुत्राँकोमारिके हमारी क्या प्रसन्नता
 होयगी इन आतायिनको मारिके हमको पापही होयगा ॥
 ॥ ३६ ॥ तिसी वास्ते हमारे बंधु जे धृतराष्ट्रके पुत्र इनकोमारने-
 को हम योग्य नहीं हैं हे माधव अपने बंधुनकोमारिके हम कै-
 से सुखी होयगे ॥ ३७ ॥ आतातायी छप्रकारके होते हैं जो आ-
 गिलगावे १ विषदेई २ शस्त्र लैके सन्मुख युद्ध करनेको आवे
 ३ धनहरै ४ पृथ्वीहरै ५ औ स्त्रीहरण करै यहछठा ॥ ६ ॥

मूलम्.

यद्यप्येतेनपश्यंतिलोभोपहतचेतसः ॥ कुलक्ष
 यकृतं दोषंमित्रद्रोहे चपातकं ॥ ३८ ॥ कथंनज्ञेय
 मस्माभिःपापादस्मान्निवर्तितुं ॥ कुलक्षयकृतंदो
 षंप्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे जनार्दनलोभोपहतचेतसःएतेकुलक्षयकृतंदोषंचमित्र
 द्रोहे पातकं यद्यपिनपश्यंति तथापिकुलक्षयकृतं दोषंप्र
 पश्यद्भिःअस्माभिः अस्मात्पापात् निवर्तितुं कथंनज्ञेयं ॥ ३९ ॥

टीका.

हे जनार्दन लोभकरिके नष्ट भई हैं बुद्धि जिनकी ऐसेजेयेदु
 र्योधनादिक कुलक्षयका दोष औ मित्रद्रोहका पाप यद्यपि नहीं
 देखते हैं तौ भी कुलक्षय कृत दोष जानने वाले जो हम तिनक-

रिक्के इस कुलक्षयकृत पापसे निवर्त्त होनेको कैसे न जानना चाहिये याने जाननाही चाहिये ॥ ३९ ॥

सूलम्.

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥ धर्मेन
ष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

अन्वयः

कुलक्षये सति सनातनाः कुलधर्माः प्रणश्यंति उत धर्मे
नष्टे सति कृत्स्नं कुलं अधर्मः अभिभवति ॥ ४० ॥

टीका.

कुलके नाश होनेसे सनातन कुलधर्म नष्ट होते हैं फिरि
धर्मनष्ट होनेसे समस्त कुलपर अधर्म फैलिजाता है ॥ ४० ॥

सूलम्

अधर्माऽभिभवात्कृष्णप्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥ स्त्री
षु दुष्टा सुवार्ण्ये जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हे कृष्ण अधर्माभिभवात्कुलस्त्रियः प्रदुष्यंति हे वार्ण्ये
दुष्टासु स्त्रीषु वर्णसंकरः जायते ॥ ४१ ॥

टीका.

हे कृष्ण कुलमे अधर्म फैलनेसे कुलकी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी
होती हैं हे वार्ण्ये याने हे वृष्णिवंशोत्पन्न हे भगवन् उन दुष्ट
स्त्रियोंमे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं, वार्ण्ये कहनेसे उभय कुल
शुद्धता सूचन किया; जैसे पितृकुल तौ यादव मातृकुल वृष्णि
हैं- इसमे यह तात्पर्य है कि, आपसरीखा हमाराभी कुल शुद्ध
रहना चाहिये ॥ ४१ ॥

मूलम्.

संकरोनरकायैवकुलग्नानांकुलस्यच ॥ पतंतिपि
तरोह्येषांलुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

अन्वयः

संकरःकुलग्नानां कुलस्य नरकाय एव, हि यस्मात् लुप्त
पिंडोदकक्रियाः एषां पितरः पतंति ॥ ४२ ॥

टीका.

वह वर्णसंकर कुलघातके कुलको नरकहीके वास्ते है,
क्योंकि लुप्तभई पिंडोदकक्रिया जिनकी ऐसे उनके पितर स्व
र्गसे पडते हैं ॥ ४२ ॥

मूलम्.

दोषैरेतैःकुलग्नानांवर्णसंकरकारकैः ॥ उत्साद्यंते
जातिधर्माःकुलधर्माश्चशाश्वताः ॥ ४३ ॥

अन्वयः

वर्णसंकरकारकैः एतैःदोषैः कुलग्नानां जातिधर्माःच शा
श्वताः कुलधर्माः उत्साद्यंते ॥ ४३ ॥

टीका.

वर्णसंकरके किये जो ये यतने दोष तिनौं करिके कुलघा
तियोंके जातिधर्म औ सनातन कुलधर्मसमूल नष्ट होते है ॥ ४५

मूलम्.

उत्सन्नकुलधर्माणांमनुष्याणांजनार्दन ॥ नरके
नियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां नरके नियते
वासो भवतिइति अनुशुश्रुमः ॥ ४४ ॥

टीका.

हे जनार्दन उच्छिन्न भये हैं कुलधर्म जिनके ऐसे मनुष्योंको नरकमें अवश्य वास्त होता है ऐसे हमने धर्मशास्त्रमें सुना है ॥ ४४ ॥

मूलम्.

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥ यद्वाज्य
सुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अन्वयः

अहो बत वयं महत्पापं कर्तुं व्यवसिताः यत् राज्यसु-
खलोभेन स्वजनं हंतुं उद्यताः ॥ ४५ ॥

टीका.

अहो बहुत पछितानेकी बात है जो हम बड़ा पाप करनेका
निश्चय करते हैं जो राज्य सुखके लोभसे आपके बंधुजनोको
मारनेका उपाय करते हैं ॥ ४५ ॥

मूलम्.

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥ धार्तरा-
ष्ट्रारणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः

शस्त्रपाणयः धार्तराष्ट्राः यदि अशस्त्रं अप्रतीकारं मां रणे ह-
न्युः तत् मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

टीका.

शस्त्र हाथमें हैं जिनके ऐसे जो धृतराष्ट्रके पुत्र जो शस्त्र-
रहित औ सन्मुख न लड़ते हुये मेरेको रणमें मारेंगे तौ भी
मेरा अति भला होयगा ॥ ४६ ॥

मूलम्.

संजय उ० ॥ एवमुक्त्वा ऽर्जुनः संख्येरथोपस्थ उपा-

विशत्॥विसृज्यसशरंचापंशोकसंविग्रमानसः॥४७॥

अन्वयः

संजयउ०॥शोकसंविग्रमानसःअर्जुनःसंख्येएवं उक्त्वा
सशरं चापं विसृज्य रथोपस्थे उपाविशत् ॥ ४७ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रको कहते हैं कि हे राजन् शोक करिके है
व्याकुल मन जिसका ऐसे अर्जुन संग्रामभूमीमें ऐसे कहिके बा
णसहित धनुषको त्यागिके रथमे पिछाडी जा बैठा ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयो
गशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेअर्जुनविषादयोगो
नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इतिश्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भग०वाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः॥१॥

मूलम्.

संजयउवाच ॥ तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्ष
णम्॥विषीदंतमिदंवाक्यमुवाचमधुसूदनः ॥ १ ॥

अन्वयः

संजयउवाच ॥ तथा कृपया आविष्टं अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं
विषीदंतं तंमधुसूदनः इदं वाक्यं उवाच ॥ १ ॥

टीका.

संजयकहते हैं कि तैसी पूर्वोक्तकरुणाकरिकेव्याप्त औ आंसु
औंके भरनेसे व्याकुल है नेत्र जिसके ऐसे अर्जुनको यह
वाक्य बोलतेभये ॥ १ ॥

मूलम्.

वाच कुतस्त्वाकश्मलमिदंविषमेसमुपस्थितं ॥ अनार्य

जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं अकीर्तिकरं इदं कश्मलं
विषमे त्वा कुतः समुपस्थितं ॥ २ ॥

टीका.

प्रथम श्लोकमें कहा कि भगवान् अर्जुनको यह वाक्य कहते
भये सो अब खुलासा कहते हैं हे अर्जुन अनार्य जो अधमजन
तिनोंके सेवनेयोग्य औ स्वर्गप्राप्तिका बाधक औ कीर्तिकाभी
नाशक ऐसा जो यह मोह सो विषम याने ऐसे कठिन युद्धके
समयमें तुमको कहाँसे प्राप्त भया ॥ २ ॥

मूलम्.

क्लैव्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे पार्थ क्लैव्यं मास्मगमः एतत् त्वयि न उपपद्यते हे परं
तप क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ ॥ ३ ॥

टीका.

हे पार्थ याने पृथाके पुत्र अर्जुन तुम कादरताकोन गृहण
करौ यह कादरता तुमको न प्राप्तहोना चाहिये कारण कि तुम
शत्रुनको संतापित करने वाले हौ इसवास्ते तुच्छ अंतःकरणकी
दुर्बलताको त्यागिके उठौ ॥ ३ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ कथं भीष्ममहं संख्येद्रोणं च मधुसूद
न ॥ इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हा वरिसूदन ॥ ४ ॥

अन्वयः

अर्जुन उ० ॥ हे मधुसूदन अहं संख्ये भीष्मं च द्रोणं प्रति
इषुभिः कथं योत्स्यामि हे अरिसूदन इमौ पूजाहौ ॥ ४ ॥

टीका

अर्जुन बोले कि हे मधुसूदन मैं संग्राम में भीष्म और द्रोणाचार्य से बाणों करिके कैसे युद्ध करौंगा हे अरिसूदन ये दोनों पूजके योग हैं इस श्लोक में दो संबोधन दिये जिनमें मधुसूदन का यह तात्पर्य है कि आप दैत्यनाशक हौ परंतु सज्जन जनौ से युद्ध कैसे कराते हो औ अरिसूदन कहने से यह आया कि आप शत्रु हंता हौ परंतु ये हमारे बड़े गंधपुष्पादिकों करिके पूजने योग्य तिनपर बाणप्रहार क्यों करवाते हौ ॥ ४ ॥

मूलम्-

गुरुन हत्वा हि महानुभावांश्छेयो भोक्तुं भैक्ष्यम
पीह लोके ॥ हत्वार्थकामांस्तु गुरुनि हैव भुंजीय
भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

अन्वयः

इह लोके महानुभावान् गुरुन् अहत्वा भैक्ष्यं अपि भोक्तुं
श्रेयः तु अर्थकामान् गुरुन् इह एव रुधिरप्रदिग्धान्
भोगान् भुंजीय ॥ ५ ॥

टीका.

इस लोक में बड़े प्रतापी गुरुन को मारे विना जो भीख
मागी के खाना वह भी श्रेष्ठ है परंतु अर्थ कामना वाले गुरु-
न को मारिके जो भोग मिलें वै भोग इस लोक ही में रक्त
के सने भये हैं तात्पर्य परलोक तौ विगड हीगा ॥ ५ ॥

मूलम्.

न चैतद्विद्मः कतरन्नोगरीयो यद्वा जयेम यदि वा नोजये

युः॥ यानेवहत्वानजिजीविषामस्तेवस्थिताःप्रमुखे
धार्तराष्ट्राः॥६॥कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छा
मित्वांधर्मसंभूढचेतः ॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि
तन्मेशिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥ ७ ॥

अन्वयः

जयाजययोर्मध्ये नः करतु गरीयः किं नामाधिकतरं य-
द्वाजयेम यदि वानः अस्मान् इमे जयेयुः एतत् च न वि-
द्यः यान् हत्वा वयं न जिजीविषामः ते धार्तराष्ट्राः प्रमुखे
एव अवस्थिताः ॥ ६ ॥ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः धर्म-
संभूढचेताः अहं त्वां पृच्छामि मे यत् निश्चितं श्रेयः स्यात्
तत् ब्रूहि अहं ते शिष्यः अतः त्वां प्रपन्नं मां शाधि ॥ ७ ॥

टीका.

अर्जुनका अभिप्राय यह है कि जो कदापि हम अधर्मभी
अंगीकार करिके युद्ध करेंगे तो भी जितीहारिका निश्चय नहीं
इसी अभिप्राय करिके श्रीकृष्णसे बोले कि हे कृष्ण जय औ प-
राजय इन दो नौमे हमको कौनसा अधिक है क्योंकि हम इनको
जीतेंगे अथवा ये हमको जीतेंगे हम यह भी नहीं जानत है
और भी यह जय भी अंतमे पराजय समान है जैसे किजिन-
कोमारिके हम जीना भी नहीं चाहते हैं तेही धृतराष्ट्रके पुत्रस-
सन्मुख खडे हैं ॥ ६ ॥ इनको मारिके हम कैसे जीवेंगे यह
कृष्ण पना और कुलक्षय करनेका दोष इन दोनों करिके परा
भवको प्राप्त हुआ है स्वभाव जिसका ऐसा जो मैं तैसेही धर्म मे
भूढ है चित्त जिसका याने युद्ध छोडिके भिक्षा मागना यह क्ष-
त्रियका धर्म हैं अथवा अधर्म है ऐसा संदिग्ध चित्त मैं तुमको-
प्रच्छता हों जो मेरा निश्चय कल्याण कारक होय सोई कहौ

क्योंकि मैं तुझारा शिष्य हूँ इसवास्ते आपके शरण आया हूँ मेरेको सिखावो क्यों कि शिष्यको सिखाना ही चाहिये ॥ ७ ॥

मूलम्.

नहिप्रपश्यामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषण
मिन्द्रियाणां ॥ अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धराज्यं
सुराणामपिचाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

भूमौ असपत्नं ऋद्धं राज्यं अवाप्य च सुराणां अपि आ-
धिपत्यं अवाप्य यत्तमम इन्द्रियाणां उच्छोषणं शोकं
अपनुद्यात् तत् तत् उपायं हि न पश्यामि ॥ ८ ॥

टीका.

अर्जुन मनमे शंकाकिया कि कदाचित् भगवान् कहिदेइंगे कि आपना कल्याण आपही विचारसे करौ इसवास्ते येवचन बोले कि हे कृष्ण जोइहां पृथ्वीमे शत्रुरहित समस्त राज्य मिलै औ परलोकमे देवतौंका भी राज्य मिलै तौभी जो मेरी इन्द्रियोंके सुखाने वाले शोकको दूरकरै सो उपाय निश्चयकरिके मैं नहीं देखताहूँ अर्थात् आपही उपदेश करौ यह अभिप्राय ॥ ८ ॥

मूलम्.

संजयउवाच॥ एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः
नयोत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ॥ ९ ॥

अन्वयः

संजयउवाच परंतपः गुडाकेशः हृषीकेशं एवं उक्त्वा ह प्र-
सिद्धं नयोत्स्य इति गोविंदं उक्त्वा तूष्णीं बभूव ॥ ९ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये कि हे राजन् शत्रुनको संतापित

करनेवाला श्री निद्राके भी जीतनेवाला ऐसा जो अर्जुन सो हृषीकेश याने इंद्रियोंके प्रेरक ऐसे कृष्णसे पूर्वोक्त वाक्य बोलि-
के श्री प्रसिद्ध जैसे होय तैसे याने सबके सुनते बोला कि मैं युद्ध न करौंगा ऐसे गोविंद याने समस्त इंद्रियोंके अंतर्यामि कृष्णसे कहिके चुपहोकर बैठ रहा इस श्लोकमें संजयने हृषीकेश पदसे तौ जनाया कि सबकी इंद्रियोंके प्रेरक कृष्ण हैं, सो अर्जुनके पक्षपर हैं श्री अर्जुनके विशेषण परंतप श्री गुडाकेश कहने में यह देखाया कि, अर्जुन शत्रुनका संतापित करनेवाला श्री निद्रा जित है तुझारे पुत्र आलसी हैं इसवास्ते अर्जुनही जानै गा गोविंदपदसे यह जनाया कि सबकी इंद्रियोंके अंतर्यामी कृष्ण है सो तुझारे पुत्रोंके मनके पापकोभी जानते है इसवास्ते धर्मक्षेत्रमे पापीका नाशही करैंगे ॥ ९ ॥

मूलम्.

तमुवाचहृषीकेशः प्रहसन्निवभारत ॥ सेनयोरु
भयोर्मध्येविषीदंतमिदंवचः ॥ १० ॥

अन्वयः

हे भारत उभयोः सेनयोः मध्ये विषीदंतं तं प्रहसन्निव हृ-
षीकेशः इदं वक्ष्यमाणं वचः उवाच ॥ १० ॥

टीका.

हे भारत याने हे धृतराष्ट्र, दोनों सेनोंके मध्यमे विषादको प्राप्त हो रहे है ऐसे अर्जुनको हसतेसरिखे याने लजित करते हुवे श्रीकृष्ण भगवान् ये जो अगाडी कहैंगे सो वाक्य बोलत भ ये याने आत्मा औ परमात्माका यथार्थ ज्ञान और उसके प्रा-
प्तिका उपायरूप जो कर्मयोग औ भक्तियोग युक्तवाक्य नत्वे वाहं जातुनासं इहांसे लैके अहंत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्या मि माशुच इसपर्यंत वाक्य बोलते भये ॥ १० ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच॥ अशोच्यान् अन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादां
 श्रभाषसे॥ गतासून गतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ ११

अन्वयः

श्रीभगवानुवाचात्त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः च प्रज्ञावादा
 न् भाषसे पण्डिताः गतासून् च अगतासून् न अनुशोचन्ति ११

टीका.

इसलोकका एक आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं कि देह और आत्माके अविवेकसे इसको शोक है उस विवेकके देखानेके वास्ते भगवान् बोले कि तुम जो नहि शोचने योग्य बंधुतिनका शोक करते हो कि इन स्वजनौको देखिके मेरे गात्र शिथिल होते हैं इत्यादि करिके तहां तुमको ऐसे विषम स्थानमे शोक क्यों उत्पन्न भयाइत्यादि वाक्यों करिके ज्ञानभी दिया तौभी प्रज्ञावाद थाने हम भीष्मको कैसे मारेंगे ऐसे पंडितोंके सदृश केवल बोलते हैं परंतु पंडित नहीं हो क्यों कि मेरे हुवे बंधुनको और जीवितेनकोभी पंडित लोग शोच नहीं करते हैं याने मेरे हुयेनका तौ मरनेका शोक और जीविते बंधुनविना कैसे जीवेंगे ऐसे शोक नहीं करते हैं यह एक आचार्यकृत अर्थ अब दूसरे सिद्धांती कृत अर्थ लिखते हैं श्रीकृष्णने देखा कि इस अर्जुनको धर्म और अधर्मका ज्ञान नहीं है इसवास्ते यह धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म मानिरहा है और धर्म जाननेकी इच्छा करता है तौ इसका मोह नाश करना चाहिये सो मोह आत्मदर्शन विना नष्ट होनेका नहीं और ज्ञान विना आत्मदर्शन होनेका नहीं और निष्काम कर्म विना ज्ञान होनेका नहीं सो निष्काम कर्म अध्यात्म शास्त्र विना होनेका नहीं अध्यात्मशास्त्र कहते हैं देह और आत्माके विवेकको ऐसा विचारिके भगवान् बोले कि हे अर्जुन तुम शोचने योग्य नहीं तिनका

तौ शोक करते हौ औ बातें पंडितसदृश बोलते हौ जैसे कि हमारे पितर श्राद्धतर्पण न होनेसे स्वर्गसे पहुँगे सो यह स्वर्ग की प्राप्ति औ पडना श्राद्धादिक होने न होनेके स्वाधीन न-ही हैं क्यों कि स्वरुत पुण्यपापके स्वाधीन हैं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशांति इत्यादिक प्रमाणसे वै पुण्य पाप आत्माके स्वाधीन है कुच्छ केवल देहके स्वाधीन नहीं हैं यद्यपि पुत्रादि रुत श्राद्धादिकका पुण्यभी मिलता है क्यों कि वैभी देह औ आत्माके संयोगहीसे हैं परंतु श्राद्ध न होनेसे स्वर्गसे पात होनेका संभव तौ कोईभी कालमें नहीं है यह देह नित्य नाशवान औ आत्मा नित्य एक रस है इसी लिएगतासु देह औ अगतासु आत्मा हैं ये दोनौ शोचने योग्य नहीं नासतोवि द्यतेभावोनाभावोविद्यतेऽसतःइत्यादि प्रमाणोंसे ऐसासमुझिके पंडितजन शोक नहींकरते हैं इसवास्ते तुमको भी यह योग्य नहीं है कि मै इनसे युद्ध न करौंगा औ भीख मागौंगा इस कहनेसे यह जानते है कि तुम देहका स्वभाव औ देहातिरिक्त आत्माको भी नहीं जानते है यह आत्मा ऐसा नहीं कि जन्म नेसे है औ मरनेसे नहीं जन्मता औ मरता यह देह है इसवास्ते इन दोनौका शोक न करना चाहिये औ यह युद्धादिक कर्म-निष्काम करनेसे आत्मस्वरूप देखाने वाला है स्वे स्वे कर्म-ण्यभिरतः सिद्धिं विंदति मानवाः इत्यादि वाक्य प्रमाणोंसे युद्ध करौ यह अभिप्राय है ॥ ११ ॥

मूलम्.

नत्वेवाहंजातुनासंनत्वंनेमेजनाधिपाः ॥ नचैवन

भविष्यामःसर्वेवयमतःपरम् ॥ १२ ॥

अन्वयः

इतः पूर्वं अहं जातु न आसं अपितु आसं एव त्वं न
आसीः अपितु आसीः एव इमे जनाधिपाः न आसन्
अपितु आसन् एव अतः परं सर्वेवयं किं न भविष्यामः
अपितु भविष्यामः एव ॥ १२ ॥

टीका

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन प्रथम आत्मनका स्वभाव
तुम सुनो मैं सर्वेश्वर इस कालसे पूर्व अनादि कालमें क्या न
था ऐसा नहीं मैं जबभी था औ क्या तुम न थे यों नहीं तुझीथे
ऐसेही ये सर्व राजा न थे अर्थात् थे औ इस कालसे अनंतर
याने इसको बाद हमतुम औ ये सर्व क्या न होयेंगे अर्थात् हो
यहींगे इहाँ यह अभिप्राय है कि जैसे मैं सर्वेश्वर नित्य हौं तैसे
तुम सर्व क्षेत्रज्ञ नित्य हौइहाँ एक सिद्धांती कहते हैं कि हम तुम
औ ये ऐसा कहनेमें दीखताहै कि आत्मा औ परमात्माका भेद
पारमार्थिक है इसीसे भगवानहीने कहाहै क्यों कि अज्ञानसे मो
हे भये अर्जुनके मोहनित्तिकेलिये पारमार्थिकही उपदेशका
संभव है जो कि औपादिक भेद होता तौ तत्त्व उपदेशके समय
में यह भेद न उपदेश करते इसवास्ते श्रीकृष्णने जो भेद कहा
सोई सत्य है और श्रुतिभी कहती है तथाच श्रुतिः॥ नित्यो नि
त्यानां चेतनश्चेतनानामेकोबहूनां योविदधाती कामानिति श्रु-
तिका अर्थ जो बहुतनित्यचेतन हैं तिनका जो एकनित्यचेतन
है सो कामना पूरण करता है जो कोई कहौ कि भेद अज्ञान कृतहै
तौ यह उत्तरहै कि परमार्थ दृष्टिके अधिष्ठाता औ आत्मयाभा
त्म्यसें नित्यही निवृत्त है अज्ञान जिनका ऐसे जो नित्य स्वरूप
परम पुरुष श्रीकृष्ण तिनके विषे अज्ञानकृत भेद दर्शनका कार्य
कैसे संभवै तहाभी कोई कहै कि श्रीकृष्णभी अज्ञ है तो उ च रहै
कि अज्ञका उपदेश भी प्रमाण नहीं जब कोई कहै कि श्री कृष्णने

अभेद निश्चय किया है इसवास्ते बाधितानुवृत्ति यह भेदज्ञान रूप अल्पज्ञता जलेहुये वस्त्रतुल्यबंधनकारक नहीं है तबउत्तर यह है कि मरीचिकाजल याने मृगतृष्णाजल सो बाधितानुवृत्ति है उसके जाननेवाला उसमेजल लेनेक्यों जायगा जो गयातौ अज्ञ है ऐसेही जो भेद मिथ्या है औ गीताशास्त्रमे उपदेश करतेहैं तौ यहशास्त्र औ उपदेशकारकभी अप्रमाण है औ भेदविना उ पदेशकाभी संभव नहीं औ परमेश्वरमे यहभी संभव नहीं है कि प्रथम अज्ञ थे शास्त्र अध्ययनसे ज्ञान भया जिसको शास्त्राध्ययनसे ज्ञान होता है उसको कोई कोई कालमे अज्ञानभी होता है यह संभवभी श्रीकृष्णमे नहीं है तथाच श्रुतिः यः सर्वज्ञः सर्ववित् पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन भविष्याणि च भूतानि मां तु वेदन कश्चन इत्यादि करिके भेदही प्रतीत होता है भेदविना उपदेश किसको करै तहां कोई कहै कि अर्जुन कृष्णका प्रतिबिंब है सो आपको आपही कहते हैं तहां समुझना चाहिये कि मणि काच इत्यादिकौमे आपका प्रतिबिंब देखिके सेवायउन्मत्त याने दिवाने विना कोईभी न वातैंकरैगा औ जो करे सोउन्मत्त इसवास्ते उसके वाक्योंकाभी प्रमाणनहीं जिसको गुरुपरंपरासेभी अभेदज्ञान होयगा उसकोभी उपदेश करनेका संभव नहीं हो सकता इसवास्ते शिष्यको उपदेश देनेका प्रयोजन नहीं जो कहै कि गुरु और ज्ञान कल्पित है तौ शिष्य और ज्ञान भी कल्पित हुआतौभी उपदेश निष्प्रयोजन है इसवास्ते भेदही सिद्ध है यह निश्चय होता है ॥ १२ ॥

मूलम्.

देहिनोस्मि न्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥

तथादेहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

अन्वयः

यथाअस्मिन् देहेदेहिनःकौमारं यौवनंजरा भवन्तितथा
देहांतरप्राप्तिः भवति तत्र धीरः न मुह्यति ॥ १३ ॥

टीका.

जैसे इस देहमे जीवकी कुमारअवस्था यौवनअवस्था औ
वृद्धावस्था होती हैं याने कुमार अवस्था नष्ट व्हे के यौवन
नष्ट होनेसे वृद्ध ऐसेही यह देह नष्ट भया दूसरा मिलेगा
तहां स्थिर बुद्धी वाले धीर पुरुष शोक नहीं करते हैं तहां भगवान
का अभिप्राय यह है कि शास्त्रीय स्ववर्ण के उचित युद्धकरौ १३

मूलम्.

मात्रास्पर्शास्तुकौंतेयशीतोष्णसुखदुःखदाः ॥

आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत

॥ १४ ॥ यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ॥ सम

दुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय मात्रास्पर्शाः तु शीतोष्णसुखदुःखदाः संति हे
भारत ते आगमापायिनः अनित्याः तान् तितिक्षस्व
॥ १४ ॥ हे पुरुषर्षभ समदुःखसुखं यं धीरं पुरुषं हि ए-
ते न व्यथयन्ति सः पुरुषः अमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

टीका.

हे कुंतिके पुत्र मात्रा कहिये इंद्रिय तिनके स्पर्श शब्द स्पर्श
रूपादिके ये शीत उष्ण याने मृदु परुषादिके शब्द शीतोष्णश
स्त्रादिप्रहार संयोग वियोगादिके दुःख के देनेवाले हैं तोभी
हे भारत याने तुम भरतवंशी हौं ये आगमापायी याने होते

औ जाते हैं अर्थात् इनके किये हुये सुखदुःख होते औ जाते भी हैं इसवास्ते ये अनित्य हैं इनको सहन करौ ॥ १४ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ सुख औ दुःख समान हैं जिसके ऐसे जिस धीर पुरुषको ये पीडित नहीं करिसकते हैं सो मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

मूलम्.

नाऽऽसतोविद्यतेभावोनाऽभावोविद्यतेसतः ॥

उभयोरपिदृष्टोतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

अन्वयः

असतः भावः न विद्यते सतः अभावः न विद्यते तत्त्वदर्शिभिः

अनयोः उभयोः अपि अंतः दृष्टः ॥ १६ ॥

टीका.

जो आत्मन कानित्यत्व स्वाभाविक औ देहोंका नाशित्वभी अशोकनिमित्त कहा गतासूनगतासूंश्चनानुशोचन्तिपंडिताः इसवाक्य करिके सो अवस्पष्ट दर्शाते हैं नासत इत्यादि करिके असत् जो शरीर है उसका सद्भाव नहीं होता है सत् जो आत्मा तिसका असद्भाव नहीं ऐसे देह औ आत्मा इन दोनोंका तत्वज्ञानी पुरुषोंने निर्णय करि देखा है देह अचिद्वस्तु है इसका असत् स्वरूप है आत्मा चेतन है इसका सत् स्वरूप है ऐसा निर्णय किया है सोई यही अर्थ अगाडिके श्लोकोंमे स्पष्ट करेंगे अविनाशितु तद्विद्धि औ अंतवंतइमेदेहा इन श्लोकोंकरिके ॥ १६ ॥

मूलम्.

अविनाशितुतद्विद्धियेनसर्वमिदंततम् ॥ विनाश

मव्ययस्यास्यनकश्चित्कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ अंत

वंतइमेदेहानित्यस्योक्ताशरीरिणः ॥ अनाशिनो

ऽप्रमेयस्यतस्माद्युध्यस्वभारत ॥ १८ ॥

अन्वयः

येन इदं सर्वं ततं तत् अविनाशि विद्धि अस्य अव्यय
स्य विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति ॥ १७ ॥ अनाशिनः
अप्रमेयस्य नित्यस्य शरीरिणः इमे देहाः अंतवन्तः उक्ताः
हे भारत तस्मात् युध्यस्व ॥ १८ ॥

टीका.

आत्माका अविनाशित्व कैसे है सो कहते हैं जिस आत्मत्व
करिके यह सर्व अचेतन तत्त्व व्याप्त है वही आत्मतत्त्वको अ-
विनाशि जानौ जो व्यापक वस्तु होता है सो अति सूक्ष्म होता
है उसको दुसरा कोई भी नहीं नाश करि सकता है और जिसमे
व्याप्त होता है उसको शस्त्र मुद्गरादिक वायु उत्पन्न करिके नाश
करिसकते हैं इसवास्ते आत्मतत्त्व अविनाशि है क्यों कि अ-
व्यय है अर्थात् घटता बढ़ता नहीं ॥ १७ ॥ नाशरहित औ प्र-
माणरहित नित्य ऐसा जो शरीरांतर्यामि आत्मा तिसके जो ये
देह हैं ये ही नाशवान हैं क्यों कि ये देह घटते बढ़ते हैं जो घटै
बढ़ेगा उसका नाश भी होयगा औ यह अप्रमेय है अर्थात् अ-
चित् इसका प्रमाण नहीं करिसकता और अचितका यह जान
नेवाला हैं- तेरहवे अध्यायमे कहेंगे एतद्योवेत्तितं प्राहुः क्षेत्रज्ञमि-
तितद्विदः। यह आत्मा देहके बढ़ने घटनेसे बढ़ता घटता नहीं औ
जानता है जैसे कि इस देहको मैं जानता हौं ऐसे देहसे यह आ-
त्मा अन्य प्रतीत होता है औ एकरस है नित्य है इसवास्ते आ-
त्माको अविनाशी औ देहनाशवान है ये दोनों शोचनेयोग्य न-
हीं इसवास्ते शस्त्रपातपरुष वाक्यादिकस्पर्श आपमे अथवा दू-
सरोंमे प्राप्त भयोंको धरिज करिके सहन करौ औ मोक्षसाधन
फलानुसंधानरहित युद्धरूप आपका कर्म प्रारंभ करौ ॥ १८ ॥

मूलम्.

यएनंवेत्तिहंतारंयश्चैनंमन्यतेहतम्॥

उभौतौनविजानीतौनायंहंतिनहन्यते ॥ १९ ॥

अन्वयः

यः एनं हंतारं वेत्ति च यः एनं हतं मन्यते तौ उभौ न विजानीतः अयं न हंति न हन्यते ॥ १९ ॥

टीका.

जो इस आत्माको मारनेवाला करिके जानता है औ जो इसके दुसरे कारणों करिकेमरा जाता है वै दोनों अज्ञानीहैं यह आत्मा न मारता है न मरता है जीना मरना शरीरसंयोग औ वियोगका नाम है ब्राह्मण हिंसादिक न करनेका मतलब यह है कि उत्तम शरीर बड़े पुण्यसे मिलता है इसवास्ते वियोग न करना ॥ १९ ॥

मूलम्.

नजायतेम्रियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वाभवितावा
नभूयः ॥ अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणोनह
न्यतेहन्यमानेशरीरे ॥ २० ॥

अन्वयः

अयं आत्मा कदाचित् न जायते वा न म्रियते न भूत्वा वा भूयः न भविता अयं अजःनित्यः शाश्वतः पुराणः शरीरे हन्यमाने न हन्यते ॥ २० ॥

टीका.

यह आत्मा कोई कालमेंभी न जन्मता है न मरता है औ न भया है न फिर होयगा इसवास्ते यह अजन्मा है औ नित्य नाम एकरस है शाश्वत सदा रहनेवाला है पुरा-

ए अर्थात् पहिलेभी ऐसाही था इन कारणोंसे शरीर नष्ट होनेसेभी यह मरता नहीं ॥ २० ॥

मूलम्.

वेदाविनाशिनं नित्यं एनमजमव्ययम् ॥

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंतिकम् ॥ २१ ॥

अन्वयः

यः एनं अजं अव्ययं नित्यं अविनाशिनं वेद हे पार्थ
सः पुरुषः कं कथं घातयति कं कथं हंति ॥ २१ ॥

टीका.

जो पुरुष इस आत्माको अजन्मा अविकारी नित्य एक-
रस नाशरहित जानता है हे अर्जुन सो पुरुष किसको औ
कैसे मरवावै तथा किसको कैसे मारता है अर्थात् इनको
मै मरवावौंगा अथवा मारौंगा यह शोच करना अनात्मज्ञान
मूल है इसलिये शोक त्यागिके युद्ध करौ ॥ २१ ॥

मूलम्.

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति न
रोऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य
न्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

अन्वयः

यथा जीर्णानि वासांसि विहाय नरः अपराणि नवा-
नि गृह्णाति तथा जीर्णानि देहानि विहाय देही
अन्यानि नवानि संयाति ॥ २२ ॥

टीका.

यद्यपि शरीरनाश होनेसे आत्माका नाशनहीं तथापि शरी-
र वियोगका तौ शोच करनाही चाहिये; ऐसा अर्जुनका अभि-

प्रायः समुद्रिके श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जैसे जीर्णवस्त्रोंका त्याग करिके मनुष्यको नवीन वस्त्र गृहण करता है तैसेही जीर्ण देहको त्यागिके यह जीव और नई देहको प्राप्त होता है अर्थात् धर्मयुद्धमें शरीर त्यागनेसे मोक्ष अथवा दिव्य देवशरीरकी प्राप्ति होती है इसवास्ते शोकका कारण नहीं है ॥ २२ ॥

मूलम्.

नैनंछिंदंतिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः ॥ नचैनंक्लेदयंत्यापोनशोषयतिमारुतः ॥ २३ ॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥ नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयंसनातनः ॥ २४ ॥ अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥ तस्मादेवंविदित्वैनंनानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अन्वयः

शस्त्राणि एनं न छिंदंति च पावकः एनं न दहति च आपः एनं न क्लेदयंति च मारुतः एनं न शोषयति ॥ २३ ॥ अतः अयं अच्छेद्यः अयं अदाह्यः अयं अक्लेद्यः च अयं अशोष्य एव अयं नित्यः सर्वगतः स्थाणुः अचलः सनातनः ॥ २४ ॥ अयं अव्यक्तः अचिंत्यः अयं अविकार्यः उच्यते तस्मात् एनं एवं विदित्वा अनुशोचितुं न अर्हसि ॥ २५ ॥

टीका.

अविनाशितुतद्विद्धि येन सर्वमिदंततं यह वाक्य जो प्रथम कहाथा उसी अविनाशित्वको सुखसे समुझनेको फिरिभी दृढ करते हैं शस्त्र इसको छेदन नहीं करते हैं अग्नि जलाता नहीं जलभि जोता नहीं पवनसुखाता नहीं इस कारणसो यह छेदने योग्य नहीं जलाने योग्य नहीं भी जने योग्य नहीं औ सुखने

३६

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

योग्य भी नहीं इसीसे नित्य है सर्व देव मनुष्यादि शरीरोंमें व्यापक है, स्थिर स्वभाव अचल औ सनातन है अति सूक्ष्म-त्वसे प्रगट दीखाता नहीं औ चिंतवन करनेमेंभी आता नहीं औ विकाररहित है, इसवास्ते इसको ऐसा जानिके तुम शोच करने योग्य नहीं हो ॥ २५ ॥

मूलम्.

अथैवैनंनित्यजातंनित्यं वामन्यसेमृतम् ॥ त
थापित्वंमहाबाहोनैनंशोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥ जा
तस्यहिध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥ तस्माद्
परिहार्यैर्येनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो अथ एनं नित्यजातं वा नित्यं मृतं मन्यसे
तथापि त्वं एनं शोचितुं न अर्हसि ॥ २६ ॥ जातस्य हि
मृत्युः ध्रुवः च मृतस्य जन्म ध्रुवं तस्मात् अपरिहार्यैर्ये
त्वं शोचितुं न अर्हसि ॥ २७ ॥

टीका.

भगवान् अर्जुनको कहते भये कि, हे महाबाहो जो तुम इस
आत्माको नित्य जन्मा अथमा नित्य मराही समुझौंगे तौभी
शोच न करना चाहिये कारण कि जन्ममरणभी अनिवार्य हैं
॥ २६ ॥ जैसे कि जो जन्मा है उसका मृत्यु निश्चय है औ म-
रेका जन्मभीनिश्चय है इसवास्ते जिसका परीहारनहीं उस-
का शोचभी न करना चाहिये सो तुमभी शोच न करौ ॥ २७ ॥

मूलम्.

अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारत ॥ अ
व्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना ॥ २८ ॥

हे भारत भूतानि अव्यक्तादीनि व्यक्तमध्यानि अव्य-
क्तनिधनानि एव तत्र परिदेवना का ॥ २८ ॥

टीका

विद्यमान द्रव्यकी प्रथम अवस्थाकी विरोधी अवस्थांतर प्राप्ति देखनेसे जो अति अल्प शोक है उसकाभी मनुष्यादिकों में शोकका संभव नहीं सो कहते हैं हे भारत भरतवंशोत्पन्न अर्जुन मनुष्यादिक भूत हैं तौभी जन्मसे प्रथम दीखते नथे औ जन्मसे पीछे मरणके आदि ऐसे मध्यमे दीखते हैं फिरी अंतमें भी नहीं दीखते हैं तहां शोच क्यों करना चाहिये ॥ २९ ॥

मूलम्.

आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदतितथैव
चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्ये
न वेदनचैव कश्चित् ॥ २९ ॥

अन्वयः

कश्चित् एनं आश्चर्यवत् पश्यति च तथा एव अन्यः आ-
श्चर्यवत् वदति च अन्यः एनं आश्चर्यवत् शृणोति च क-
श्चित् एनं श्रुत्वा अपि एव न वेद ॥ २९ ॥

टीका.

शरीरहीको आत्मा समुझै तौभी शोक कारण नहीं ऐसा कहा
और शरीरसे पृथक जो आत्मा तिरुके विषे द्रष्टा वक्ता श्रोता औ
सुनिके जाननेवाला भी दुर्लभ है सो कहते हैं पूर्वकहे लक्षणयुक्त
समस्तसे विलक्षण जो आत्मा इसको कोई एक बड़े तपसे जि-
सके पाप नष्ट भये होय औ पुण्य बढा होय ऐसा मनुष्य आ-
श्चर्य सदृश देखता है तैसाही और मनुष्य आश्चर्य सदृश कह-

ता है औ तैसाही और पुरुष इसको आश्चर्य सरीखा सुनता है औ कोई एक मनुष्य सुनिकैभी निश्चै जानता नहीं अर्थात् इस आत्मस्वरूपका निश्चय देखना कहना सुनना औ जानना भी दुर्लभ है यह कहा ॥ २९ ॥

मूलम्.

देहीनित्यमवध्येऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥ तस्मात्
त्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

अन्वयः

हे भारत सर्वस्य देहे अयं देही नित्यं अवध्यः तस्मात् त्वं
सर्वाणि भूतानि शोचितुं न अर्हसि ॥ ३० ॥

टीका.

सर्व देवादिक चराचर शरीरोंमें यह जीव अवध्य है अर्थात्
उन देहोंके नष्ट होनेसे इसका नाश नहीं होता है इसवास्ते इन
सर्व भीष्मादिकोंका शोच करना तुमको योग्य नहीं है ॥ ३० ॥

मूलम्.

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥ धर्म्या
द्वियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयः

स्वधर्मं अपि अवेक्ष्य त्वं विकंपितुं न अर्हसि क्षत्रियस्य
धर्म्यात् युद्धात् अन्यत् श्रेयः ही न विद्यते ॥ ३० ॥

टीका.

जो यह वर्तमान युद्ध प्राणिहिंसयुक्त है तौभी अग्निषोमी-
यादि यज्ञ सदृक्ष तुह्यारा स्वधर्म है इसको जानिकेभी तुमको द-
या न करना चाहिये क्यों कि क्षत्रियको धर्म युद्धके सेवाय दुस-
रा उपाय कल्याणकारक नहीं है जैसे अग्निषोम यज्ञमें जो छाग

मारा जाता है उसको तुच्छछागदेह छुटिके देवशरीर मिलता है इसी वास्ते उसयज्ञमे ब्राह्मणको छागमारनेका दोष न देखना चाहिये उसमे पुण्यही है- ऐसेही युद्धमे जो शास्त्रलैके सन्मुख आय केलडे उसपर शास्त्र चलानेका दोष नहीं क्यों कि शास्त्रवाक्य है श्लोक द्वाविमौपुरुषौलोकेसूर्यमंडलभेदिनो । यः स भ्राड्योगयुक्त श्ररणेचापिमुखेहतः ॥ १ ॥ इसका अर्थदोपुरुष सूर्यमंडल भेदन करिकेश्रेष्ठपदको प्राप्त होते है; एकयोगयुक्त संन्यासी दुसरा जो रणमे सन्मुख युद्ध करिके मरता है सो; जबकि मनुष्य शरीरसे छुटिके दिव्यागतीको प्राप्तहुआ तबउस कर्ममेपापनहीं पुण्यही है जैसेकिसीकी फटीकमली उतारिली औ दुसाला ओढ़ या तब वह कार्य श्रेष्ठ है वा नीच है सोविचारिके युद्ध करौ ॥ ३१ ॥

मूलम्.

यदृच्छयाचोपपन्नंस्वर्गद्वारमपावृतम् ॥

सुखिनःक्षत्रियाःपार्थलभंतेयुद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ यदृच्छया उपपन्नं च अपावृतं स्वर्गद्वारं ईदृशं-
युद्धं सुखिनः क्षत्रियाः लभंते ॥ ३२ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र आपहीसे यत्नविना प्राप्त भया औ खुला भया स्वर्गका द्वार रूप ऐसा युद्ध सुखी अर्थात् पुण्यवान् क्षत्रिय पावते हैं ॥ ३२

मूलम्.

अथचेत्वमिमंधर्म्यसंग्रामंनकरिष्यसि ॥ ततः

स्वधर्मकीर्तिंचहित्वापापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अकीर्तिंचापिभूतानिकथयिष्यंतितेऽव्ययाम् ॥

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

अन्वयः

अथ चेत् त्वं इमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ततः स्वधर्मं च कीर्तिं हित्वा पापं अवाप्स्यसि च भूतानि ते अव्ययां अकीर्तिं कथयिष्यन्ति च संभावितस्य अकीर्तिः मरणात् अतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

टीका.

जो कदाचित् तुम यह धर्म युद्ध न करोगे तो स्वधर्म अर्थात् कीर्ति का भी नाश करिके पाप को प्राप्त होउगे और लोक भी तुम्हारी अखंड अकीर्ति वर्णन करेगे, सो अकीर्ति श्रेष्ठ औ यशवाले पुरुष को मरण से भी अधिक है ॥ ३४ ॥

मूलम्.

भयाद्रणादुपरतमं स्यंते त्वां महारथाः ॥ येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥ अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ॥ निदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः

येषां त्वं बहुमतः भूत्वा तेषां लाघवं यास्यसि ते च महारथाः त्वां भयात् रणात् उपरतमं स्यंते अतः तव अहिताः तव सामर्थ्यं निदंतः संतः बहून् अवाच्यवादान् वदिष्यन्ति ततः किं नु दुःखतरं अस्ति ॥ ३६ ॥

टीका.

अहो जो मैं बंधुजनों के स्नेह औ करुणा से युद्ध न करौंगा तो मेरी अकीर्ति कैसे होयगी ऐसा अर्जुन का अभिप्राय समुझिके श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि, जिन कर्ण दुर्योधनादिक

महारथियोंके इस कालसे प्रथम शूर वीरि ऐसे बहु मान्यथे तिन हीके अब युद्ध न करनेसे अपमान योग्य होउगे वेही महारथी तु मको भयसे युद्ध न किया ऐसे मानेंगे इसी कारणसे ये जो दु-र्योधनादिक तुझारे शत्रु तुझारी समर्थताको निंदते भये न बो-लनेके वाक्य बोलेंगे अर्थात् कहेंगे कि अर्जुनकी सामर्थ्य कुछ सूर वीरोंके सन्मुख नहीं है केवल शोभाके वास्ते शस्त्र धारण करता है जैसे स्त्रियोंके आभूषणमें सिंह औ सर्पादिक चित्रित होते हैं औ वै पहिरती हैं परंतु साक्षात् सिंह सर्पादिक देखने-सेही प्राण त्यागेंगी ऐसैही अर्जुनके धनुष्यादिक शस्त्र हैं जब ऐसे वे बोलेंगे तब इससे अधिक दुःख कौनसा है अर्थात् इ-स दुःखसे मरणाही श्रेष्ठ मानौंगे ॥ ३६ ॥

मूलम्.

हतोवाप्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं ॥

तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समेकत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥

ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय हतः वा स्वर्गं प्राप्स्यसि जित्वा वा महीं भो

क्ष्यसे तस्मात् युद्धाय कृतनिश्चयः सन् उत्तिष्ठ ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समेकत्वा लाभालाभौ जयाजयौ समौकत्वा

ततः युद्धाय युज्यस्व एवं पापं न अवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

टीका.

उस निंदाके दुःखसे शूरवीरको युद्धमें अन्यसे मारना अथवा औरको मारना यही श्रेष्ठ है ऐसा श्रीकृष्ण कहते हैं कि धर्मयु-द्धमें जो दुसरोंके मारनेसे मरौंगे तौ मोक्ष मिलैगा औ जो दु-

सरे शत्रुनको मारौगे तौ पृथ्वीका अकंटक राज्य भोगौगे तिस
वास्ते हे कुंतीपुत्र तुम युद्धका निश्चय करिके उठौ और सुखदुःख
लाभ अलाभ जय अजय इनको समान मानिके फिरि युद्धका
उद्योग करौ इस प्रकारसे पाप न होयगा जो फलानुसंधान रहि
तयुद्धरूपस्वधर्म करौगे तौ मोक्षही होयगा स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः
सिद्धिर्विदंतिमानवः इस प्रमाणसे मोक्षही होयगा ॥ ३८ ॥

सूत्रम्.

एषातेऽभिहितासांख्येबुद्धिर्योगेत्विमांशृणु ॥

बुद्धयायुक्तोयथापार्थकर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे पार्थ एषा बुद्धिः ते सांख्ये अभिहिता योगेतु इमां शृणु
यथा बुद्धयायुक्तः त्वं कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

टीका.

ऐसे आत्मस्वरूप उपदेश करिके अब उस आत्मस्वरूपज्ञा-
न पूर्वक मोक्ष साधन भूत कर्मयोग कहनेको प्रारंभ करते हैं हे
पृथापुत्र यह बुद्धि मैंने तुमको सांख्याविषयमे कही अर्थात् आ-
त्म अनात्म विवेक विषयमे कही अब इसी बुद्धिको तुम यो-
ग अर्थात् कर्म योग विषयमे सुनौ जिस बुद्धि करिके तुम क-
र्म बंध अर्थात् संसार दुःखको छोडौगे ॥ ३९ ॥

सूत्रम्.

नेहाभिक्रमनाशोस्तिप्रत्यवायोनविद्यते ॥

स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात् ॥ ४० ॥

अन्वयः

इह अभिक्रमनाशः न अस्ति प्रत्यवायः न विद्यते अस्य
धर्मस्य स्वल्पं अपि महतः भयात् त्रायते ॥ ४० ॥

टीका.

कहेंगे जो बुद्धियुक्त कर्मयोग तिसकामाहात्म्य कहते हैं इस बुद्धियुक्त कर्मयोगमें अर्थात् निष्काम कर्मयोगमें प्रारंभका भी नाश नहीं है अर्थात् प्रारंभ करिके जो समाप्त नहोई तौभी वह निष्फल नहीं है औ न्यून अधिकताकाभी दोष नहीं है इस धर्मका थोड़ा आरंभ भी सांसारिक बड़े भयसे रक्षण करता है पार्थ नैवेहनामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ऐसे अगाड़ी कहेंगे ॥ ४० ॥

मूलम्.

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकह कुरुनंदन ॥

बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हे कुरुनंदन व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका च अव्यवसायिनां बुद्धयः बहुशाखाः च हि अनन्ताः संति ॥ ४१ ॥

टीका.

काम्य कर्म विषयिक बुद्धिसे मोक्ष साधन भूत बुद्धिको पृथक् देखाते हैं इस शास्त्रीय स्वर्ग कर्ममें निश्चयात्मक बुद्धि एकही है मुमुक्षुके करने योग्य कर्ममें जो बुद्धि है उसको व्यवसायात्मिका कहते हैं अर्थात् निश्चयात्मिका सो एकही है इसमें आत्मस्वरूप निश्चय होता है औ काम्य कर्म विषयिक बुद्धि अव्यवसायात्मिका तहां कामाधिकारमें देहसे पृथक् आत्मस्वरूपका अस्तित्व मात्र है परंतु आत्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय नहीं इस निश्चयात्मक बुद्धिमें एक मोक्ष साधनही निमित्त सर्वकर्म हैं इसवास्ते एक है औ काम्य कर्म विषयिकमें स्वर्ग पुत्र पशु अन धन इत्यादिक अनेक कामना हैं इसवास्ते उन काम्य कर्मवालों की बुद्धि अनेक हैं तहां भी एक कामना निमित्त कर्म करिके अनेक

फलौंकी इच्छा करते हैं जैसे कि पुत्र कामनासे यज्ञ करिके आयुष्य इत्यादि कि भी इच्छा करते हैं इसवास्ते बहुशाखा अर्थात् उन बुद्धियौंमे भी शाखें हैं इसवास्ते मोक्षसाधन भूतही कर्मश्रेष्ठ है यह अभिप्राय ॥ ४१ ॥

मूलम्.

यामिमांबुष्पितांवाचंप्रवदंत्यविपश्चितः ॥ वेद
वादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥ ४२ ॥ का
मात्मनःस्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदां ॥ क्रियावि
शेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ ४३ ॥ भोगैश्वर्य
प्रसक्तानांतयापहृतचेतसां ॥ व्यवसायात्मिका
बुद्धिःसमाधौनविधीयते ॥ ४४ ॥

अन्वयः

हेपादर्थ ये यां इमांपुष्पितां वाचं प्रवदन्ति तेषां समाधौ
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःनविधीयतेकिंभूतास्तेअविपश्चितः
वेदवादरताः अन्यतनअस्ति इतिवादिनः कामात्मानः
स्वर्गपराः किंभूतां वाचं जन्मकर्मफलप्रदां भोगैश्वर्यगतिं
प्रतिक्रियाविशेषबहुलां कथंभूतानां तेषां भोगैश्वर्यप्रस-
क्तानां तयापहृतचेतसां ॥ ४३ ॥ इतिखंडान्वयः ॥ अथ
दंडान्वयः॥ ये अविपश्चिताःवेदवादरताःअन्यतनअस्ति
इतिवादिनःकामात्मानःस्वर्गपराः एवंभूताःयां पुष्पितां
जन्मकर्मफलप्रदां भोगैश्वर्यगतिं प्रतिक्रियाविशेषबहुलां
महा वाचंवदन्ति भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसां
तेषां समाधौ व्यवसायात्मिकाबुद्धिः नविधीयते ॥ ४४ ॥

टीका.

जे अज्ञानी केवल वेद वाद करनेवाले अर्थात् वेदमे स्वर्गा-

दिक फल ग्रहण करनेवाले स्वर्ग प्राप्तिके समान दुसरा पदार्थ नहीं ऐसे कहनेवाले कामनामे है चित्तजिनका औ आपभी स्वर्ग ही को श्रेष्ठ माननेवाला ऐसे जो पुष्पमात्र रमणीय औ जन्म कर्मरूप फलदायक तथा भोग औ ऐश्वर्य निमित्त क्रिया हैं बहुत जिसमे ऐसी इसवाणीको कहते हैं ऐसे भोगऔ ऐश्वर्यमे आसक्त औ उसी वाणी करिके हरे गये हैं चित्त जिनके तिनके मनमें निश्चयात्मीक बुद्धि नहीं विधान होती है ॥ ४४ ॥

मूलम.

त्रैगुण्याविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥ निर्द्वंद्वो
नित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥ ४५ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन वेदा त्रैगुण्यविषयाः त्वं निस्त्रैगुण्यः निर्द्वंद्वः
नित्यसत्त्वस्थः निर्योगक्षेमः आत्मवान् भव ॥ ४५ ॥

टीका

हजार हों माता पितासेभी अधिक पालन करनेवाले वेद सौ वै ऐसे अत्यल्प फलदायक औ पुनः जन्मप्रद कर्मोंको क्यों कहते हैं औ वेदोदित कर्मका त्याग करना कैसे कहते हैं इस पर भगवान् कहते हैं कि तीनिहू गुणजिनमे होय उनको त्रैगुण्य कहते हैं अर्थात् इसजगमे पुरुष बहुत्व है उनपुरुषनमे केतनेक सत्त्वगुणी केतनेक रजोगुणी औ केतनेक तमोगुणी हैं उन सबोंके विषयनके बतानेवाले वेदही हैं तहां तुम निस्त्रैगुण्य हो अर्थात् रजोगुण तमोगुणोंको त्यागिके सात्त्विक होउ औ निर्द्वंद्व याने सांसारिकसुख दुःखादिसे रहित होउ अर्थात् इनका सहन करौ औ नित्य सत्त्व गुणमे स्थित होउ अर्थात् निष्कामकर्म करौ औ निर्योग क्षेम याने अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिको योग्य कहते

हैं औ प्राप्तकी रक्षाको क्षेम कहते हैं तुम उन दोनोंकी इच्छा न करौं औ आत्मस्वरूपके देखनेका उद्योग करौ दूसरा अर्थ वेदाः त्रैगुण्यविषयाः वेदतीनौ गुणोंके प्रवर्त्त करनेवाले हैं इसवास्ते हे अर्जुन तुम निस्त्रैगुण्य होउ याने निश्चैवैदिक कर्म करौ निस्त्रैगुण्य शब्दके आदिमे जो निर अव्यय है उसका निश्चयार्थभी होता है निर्निश्चय निषेधयोः ऐसे अमरकोषका प्रमाण है तहां अर्जुन के शंका आई कि वैदिक कर्म तौ अनेक हैं मै कौनसे कर्म करौ तिसपर भगवान् बोले कि निर्द्वंद्व व्हैके नित्य सात्त्विक कर्म करौ निर्द्वंद्व अर्थात् सुख दुःख लाभ अलाभ जय पराजय पाप पुण्य इत्यादिक समान मानिके सहन करते भये नित्य सत्त्वस्थ याने निष्काम कर्म करौ औ नियोग क्षेमः याने योग कहते हैं सिद्धि औ असिद्धिकी समताको उसका निश्चयही रक्षण करौ सिध्य सिध्योः समत्वं योगः ऐसा अगाडी कहेंगे आत्मवान् याने आत्मा क्या वस्तु है उसको जानौ अथवा आत्मा जो मन है इसको वश करौ ॥ ४५ ॥

मूलम्.

यावानर्थउदपानेसर्वतःसंस्तुतोदके ॥ तावान्सर्वे
षुवेदेषुब्राह्मणस्यविजानतः ॥ ४६ ॥

अन्वयः

सर्वतः संस्तुतोदके उदपाने यावान् अर्थः स्यात् विजानतः
ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु तावान् अर्थः भवति ॥ ४६ ॥

टीका.

प्रथम जो कहा कि वेदमे त्रिगुणात्मक कर्म कहे हैं तहां तुम सात्त्विक कर्म करौ इसका खुलासा करते है समय वेदोक्त कर्म सर्वके ग्रहण करने योग्य नहीं है क्यों की जैसे कुवा बावडी त

लाव इत्यादिक जलाशयोंमें सर्वत्र पानीभरा है तहांसे मनुष्यको जेतना चाहिये बतनाही लेता है ऐसेही ब्राह्मण जो ब्रह्मपरमात्माका उपासक उसको सर्व बेदोंसे सात्विक ग्रहण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

मूलम्.

कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचन ॥ माकर्म फलहेतुभूर्मातेसंगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

अन्वयः

ते तव कर्मणि एव अधिकारः अस्ति फलेषु कदाचन मा त्वं कर्मफलहेतुः मा भूः ते अकर्मणि संगः मा अस्तु ॥ ४७ ॥

टीका.

अब सत्त्वगुणमें स्थित जो मुमुक्षू तिसको यतनाही गृहण करना चाहिये सो कहते हैं नित्य नैमित्त्य औ काम्य इनमें कोईभी फल करिके युक्त जो सुननेमें आवै कर्म उसमें केवल कर्महीमें तुमको अधिकार है फल बंधनकारक है इसवास्ते फलमें कोई कालमेंभी नहीं औरजो कर्म करौ उसकाकर्तृत्वभीतु ह्यारे विषे न होउ औ फलकेभी भोक्तृत्वमें तुम कारण न होउ औ अकर्म जो कर्मका न करना जैसे कि तुमने कहा कि मै युद्ध न करौंगा ऐसे अकर्ममेंभी तुह्यारी निष्ठा न होय तात्पर्य कि कर्म करनायोग्य है कारण कि अगाडी लिखेंगे नकर्मणाम नारंभो त्रैष्कर्म्यपुरुषो श्रुते इसलिये कर्म करना फलकी इच्छा न करना निष्काम कर्मसे मोक्ष होती है ॥ ४७ ॥

मूलम्.

योगस्थः कुरु कर्माणि संगंत्य त्काधनं जय ॥

सिध्यसिध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

अन्वयः

हे धनंजय सिध्यसिध्योः समः भूत्वा योगस्थः सन् संगं
त्यक्त्वा कर्माणिकुरु सिध्यसिध्योः यत् समत्वं तत् योगः
उच्यते ॥ ४८ ॥

टीका.

पूर्वश्लोकहीको स्पष्ट करने हैं हे अर्जुन सिद्धि औ असिद्धि
के विषे सम व्हाके योगमेस्थित भये राजवंधु इत्यादिकोंके विषे
जो आसक्तीहै उसको अथवा फलासक्तीको त्यागिके कर्म क-
रौ जो सिद्धि औ असिद्धिमेसमत्व है उसीको योग कहते है
अर्थात् चित्तके समाधानको योग कहते है तात्पर्य चित्त स्थिर
करिके कर्म करौ ॥ ४८ ॥

मूलम्.

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥ बुद्धौ शरण
मन्विच्छन्कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

अन्वयः

हे धनंजय बुद्धियोगात् अन्यत् कर्म तत् हि दूरेण अ-
वरं अतः बुद्धौ शरणं अन्विच्छ फलहेतवः कृपणाः ॥ ४९ ॥

टीका.

जो कहैगे कि तुमएसे वारंवार क्यों कहते हो इसवास्ते क-
हैं हैं हे धनंजय जो बुद्धियोगसे और कर्म है सो अत्यंत नीच है
कारण बुद्धियोग सांसारिक दुःखका नाशक औ मोक्ष दायक है
इसके सेवाय जो कर्म सो बंधनकारक है इसवास्ते बुद्धि ही मे प्रवर्त्त
होउ क्यों कि फल कि इच्छा करनेवाले कृपण हैं अब बुद्धियोग
क्या है सो कहते हैं जो यह कहि आये प्रधान फलका त्याग
विषय तथा अवांतर फलोंकी सिद्धि औ असिद्धिमे जो समत्व

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

४९

विषय इसको बुद्धियोग कहते हैं यही व्यवसायात्मिका बुद्धि है ॥ ५९ ॥

मूलम्.

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

अन्वयः

बुद्धियुक्तः इह उभे सुकृतदुष्कृते जहाति तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं अस्ति ॥ ५० ॥

टीका.

बुद्धियोगयुक्त कर्म करता भया पुरुष यही लोकमें अनादि काल संचित जो सुकृत दुष्कृत तिनका त्याग करता है तिसते तुम योग याने बुद्धियोग इसके वास्ते युक्त होउ यह बुद्धियोग क्रियमाण कर्मोंमें कुशलकारक है ॥ ५० ॥

मूलम्.

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥

जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः

बुद्धियुक्ताः मनीषिणः हि कर्मजं फलं त्यक्त्वा जन्मबंध-विनिर्मुक्ताः अनामयं पदं गच्छन्ति ॥ ५१ ॥

टीका.

बुद्धि योगयुक्त ज्ञानवान् पुरुष कर्मजन्य फलको त्यागिके जन्मबंधनसे मुक्तहुये सर्वोपद्रवरहित जो विष्णुलोक तहां प्राप्त होय हैं ॥ ५१ ॥

मूलम्.

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

तदागंतासिनिर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

अन्वयः

यदा ते बुद्धिः मोहकलिलं न्यतितरिष्यति तदा श्रोत-
व्यस्य च श्रुतस्य च निर्वेदं गंतासि ॥ ५२ ॥

टीका.

कहे भये प्रकार करिके कर्ममे प्रवर्त्त औ उसी वृत्तिकरिके
नष्ट भये हैं पाप जिसके ऐसे जोतुम सो तुह्यारी बुद्धि मोहरूप
पापको छोडिके अतिशुद्ध होइगि तब जो मेरेसे इस कालसे प्र
थम जो त्यागनेको सुना औ जो अब इस कालसे अगाडी फ
लादिक सुनौगे उसके वैराग्यको आपही प्राप्त होउगे ॥ ५२ ॥

मूलम्.

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

अन्वयः

ते बुद्धिः श्रुतिविप्रतिपन्ना अचला यदा समाधौ निश्चला
स्थास्यति तदा योगं अवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

टीका.

योगमे इसको सुनौ इत्यादिक करिके कहा हुआ जो आ
त्मयाथात्म्य ज्ञानपूर्वक बुद्धिविशेष तिस करिके संस्कार कि
या हुआ जो कर्मानुष्ठान तिसका लक्षणभूत योगसंज्ञक फल
कहते हैं श्रुतिजो श्रवण सो मेरेसे सुनिके विशेष करिके सूक्ष्म
तत्त्व विषयिक स्वयं अचल एकरूप एसी जो तुह्यारी बुद्धि सो
जब कर्मानुष्ठान करिके निर्मल किये भये मनमे निश्चल स्थित
होयगी तब योग याने आत्मदर्शन पावौगे ॥ ५३ ॥

मूलम्.

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य काभाषा समाधि
स्थस्य केशव ॥ स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासी
तत्र जेत किम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच ॥ हे केशव स्थितप्रज्ञस्य समाधिस्थस्य का-
भाषा स्थितधीः किं प्रभाषेत किं आसीत किं व्रजेत ॥ ५४ ॥

टीका.

जब भगवानने पृथाके पुत्र अर्जुनको ऐसे उपदेश किया तब
वह अर्जुन निःसंग कर्मानुष्ठानरूप कर्मयोग साध्य जो योगसा-
धनभूत स्थितप्रज्ञता तिसका स्वरूप औ स्थितबुद्धिपुरुषका अ-
नुष्ठानप्रकार पूछते भये हे केशव समाधिस्थ स्थित प्रज्ञ पुरुषका
स्वरूप कैसा है औ स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धिवाला पुरुष कै
से बोलता है कैसे बैठता है औ कैसे चलता है सो कहौ ॥ ५४ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ प्रजहाति यदा कामान् सर्वा
न्पार्थ मनोगतान् ॥ ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित
प्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान उवाच हे पार्थ यदा आत्मनि एव अत्मना
तुष्टः सन् मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति तदा
स्थितप्रज्ञः उच्यते ॥ ५५ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्णभगवान् स्थिरबुद्धिवालेका स्वरूप कहते हैं तब
ऐसा है कि जब किसीका चाल चलन कहा तब उसका स्वरूप
कहि चुके, इसवास्ते स्थिरबुद्धिकी वृत्ति अर्थात् चाल यानेरहनी

कहते हैं हे अर्जुन जब आपके स्वरूपही मे आपके मत करिके संतुष्ट हुआ भया मनमे प्राप्तहुये सर्व कामनाओंका त्याग करै है तब वह स्थितप्रज्ञ कहता है ॥ ५५ ॥

मूलम्.

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥ वितरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

अन्वयः

यः दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः दुःखेषु वितगस्पृहः वितरागभयक्रोधः मुनिः स्थितधीः उच्यते ॥ ५६ ॥

टीका.

दुःखमे जिसके मनमे उद्वेग न होय औ सुखमे इच्छा न-
राखै औ व्यतीत भये होय स्नेह भय औ क्रोध जिसके ऐसे
मुनियान मननशीलको स्थितधी कहते हैं ॥ ५६ ॥

मूलम्.

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाऽशुभम् ॥
नाभिनन्दति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५७ ॥

अन्वयः

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः सन् तत् तत् शुभाशुभं प्राप्य न-
अभिनन्दति न द्वेष्टि तदा सः स्थितप्रज्ञः उच्यते ॥ ५७ ॥

टीका.

जो सर्वमित्र वर्गोंमे भी उदासीन रहा भया प्रिय वस्तुका
संयोग वियोगादिक प्राप्त वहैके न आनंद होय औ न विषाद
करै तब वह स्थितप्रज्ञ कहिये ॥ ५७ ॥

मूलम्.

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥

इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

अन्वयः

अयं यदा कूर्मः इव सर्वशः अंगानि इंद्रियार्थेभ्यः इंद्रियाणि संहरते तदा तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

टीका.

यह पुरुष जब कूर्म जैसे सर्व अंगोंको एकदम समेटि लेता है तैसे सर्व इंद्रियोंके विषयोंसे इंद्रियोंको खींचि लेवै तब तिसकी बुद्धि स्थिर है अर्थात् यह भी स्थितप्रज्ञ है ॥ ५८ ॥

मूलम्.

विषयाविनिवर्तते निराहारस्य देहिनः ॥

रसवर्ज्यं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

अन्वयः

निराहारस्य देहिनः रसवर्ज्यं विषयाः विनिवर्तते अस्य रसः अपि परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

टीका.

इंद्रियोंके आहार विषयसो विषय न करनेसे विषयप्रीतिविना विषय निवर्त होतेहैं औ इसकी विषयप्रीति भी जब पर्याने विषयोंसे परे जो आत्मस्वरूप उसको देखनेसे निवर्त होतीहै ॥ ५९ ॥

मूलम्.

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥

इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

अन्वयः

हे कौंतेय हिविपश्चितः पुरुषस्य यततः अपि प्रमाथीनि इंद्रियाणि प्रसभं मनः हरन्ति ॥ ६० ॥

टीका.

हे कुंतीपुत्र आत्मदर्शन विना विषयानुराग निवर्त्त होतान ही औ विषयानुसार निवर्त्त होने विना ज्ञानी पुरुष यत्न करता है तौ भी उसकी बलवान् इंद्रिय हठिके मनको हरण करती हैं अर्थात् मनको क्षोभायमान करतीं ॥ ६० ॥

मूलम्.

तानिसर्वाणिसंयम्ययुक्तआसीतमत्परः ॥

वशेहियस्येन्द्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

अन्वयः

युक्तः योगयुक्तः पुरुषः तानि सर्वाणि संयम्य मत्परः आसीत इंद्रियाणि यस्य वशे संति तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

टीका.

योगी पुरुष उनसब इंद्रियोंका संयम करिके मेरेही स्वाधीन वहै रहै ये इंद्रिय जिसके वशहैं उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है इस करिके जो अर्जुनने पूछाथा कि स्थितप्रज्ञ कैसे रहे उस का उत्तरभी भया ॥ ६१ ॥

मूलम्.

ध्यायतोविषयान्पुंसःसंगस्तेषूपजायते ॥ संग्मा

त्संजायतेकामःकामाक्रोधोभिजायते ॥ ६२ ॥

क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृ

तिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

अन्वयः

विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु संगः उपजायते संग्मात् कामः संजायते कामात् क्रोधः अभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधात् संमोहः भवति संमोहात् स्मृतिविभ्रमः भवति स्मृतिभ्रंशात् बुद्धि नाशः भवति बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

टीका.

बाह्य इंद्रियोंकी प्रबलता औ उनका संमय न करनेका दोष कहा अब मनका कहते हैं विषयोंको जो मनमे रखता हैं उस के बाह्य इंद्रिय संमय करतेभी विषयासक्ति उत्पन्न होती है, उसते कामना उत्पन्न हो, कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मोह मोहसे स्मृतिमे भ्रम होता है स्मृति भ्रष्ट होने से बुद्धिका नाश होता है, बुद्धिनाशसे आप नष्ट होता है याने संसारदुःखमे पडता है ॥ ६३ ॥

मूलम्.

रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन् ॥ आत्म
वश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥ प्रसा
देसर्वदुःखानांहानिरस्योपजाते ॥ प्रसन्नचेत
सोऽह्याशुबुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

अन्वयः

विधेयात्मा पुरुषः रागद्वेष वियुक्तैः तु आत्मवश्यैः इंद्रियैः
विषयान् चरन् सन् प्रसादं अधिगच्छति ॥ ६४ ॥ प्रसा
दे सति अस्य सर्वदुःखानांहानिः उपजायते हि प्रसन्नचेतः
सः बुद्धिः आशु पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

टीका.

इसीवास्ते मन वशकरना औ मन है वश जिसका ऐसा पुरुष राग द्वेष करिके रहित याने न विषयोंपर प्रीति औ न वैर ऐसे- आत्मवशी भूत इंद्रियों करिके विषय सेवन करता हुवा पुरुष प्रसन्नताको प्राप्त होता है याने स्थिर औ निमैल चित्त होता है ॥ ६४ ॥ मनके प्रसन्न होनेसे इसके सर्व दुःखोंका नाश होता है यहीसे प्रसन्न चित्त पुरुषकी बुद्धि मेरेमे लगती है इसीसे प्रतिष्ठित होती है ॥ ६५ ॥

मूलम्.

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना ॥ न
चाभावयतःशांतिरशांतस्यकुतःसुखम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः

अयुक्तस्य बुद्धिः नास्ति च अयुक्तस्य भावनापि नास्ति
अभावयतः शांतिः नास्ति अशांतस्य सुखंकुतः ॥ ६६ ॥

टीका.

प्रथम जो कह समत्वरूप योग तिस योगयुक्तविना पुरुषके
बुद्धि नही ओ भावनाभी ओ अभावनावालेके शांति नही
ओ क्षांतिविना सुख कहांसे मिलैगा ॥ ६६ ॥

मूलम्.

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनो नुविधीयते ॥ तदस्य
हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥ तस्माद्य
स्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥ इंद्रियाणींद्रि
यार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

अन्वयः

हि यस्मात् चरतां इंद्रियाणां यत् मनः अनुविधीयते
तत् मनः अंभसि नावं वायुः इव अस्य प्रज्ञां हरते ॥ ६७ ॥
हे महाबाहो तस्मात् यस्य इंद्रियाणि इंद्रियार्थेभ्यः सर्व
शः निगृहीतानि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

टीका.

जिसवास्तेकि विषयोंमे प्रवर्त्त होरही हैं जो इंद्रियां तिनके
पीछे जिसका मन लगता है सो मन जलमे नावको वायुकीत-
रहइसपुरुषकी बुद्धिको हरता है हे महाबाहो तिसीसे जिसकीइं

द्रिय विषयोंसे सर्व प्रकारसे रुकी भयी हैं तिसीकी बुद्धि प्र-
तिष्ठित है यानें स्थिरबुद्धि है ॥ ६८ ॥

मूलम्.

यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्तिसंयमी ॥ य
स्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः ॥ ६९ ॥

अन्वयः

सर्व भूतानां या निशा तस्यां संयमी जागर्ती यस्यां भू-
तानि जाग्रति पश्यतः मुनेः सा निशा ॥ ६९ ॥

टीका.

ऐसे जितेंद्रिय औ प्रसन्नमनवालेकी सिद्धि कहते हैं सर्व
भूत प्राणीमात्रकी जो रात्री अर्थात् रात्रिसदृश अप्रकाशक
जो आत्मविषयाबुद्धि तिसमे इंद्रियसंयमी औ प्रसन्न मनवा-
ला जगता है अर्थात् आत्माको देखता भया रहता है औ जो
शब्दादि विषया बुद्धि तिसमे सर्वभूत प्राणीमात्र जागते हैं या
ने प्रबुद्ध होते हैं सो शब्दादि विषयिक बुद्धि आत्माके देखने
वाले की रात्री है अर्थात् रात्रीतुल्य अप्रकाशक है ॥ ६९ ॥

मूलम्.

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंतिय
द्वत् ॥ तद्वत्कामायं प्रविशंतिसर्वे स शांतिमाप्नोति
न कामकामी ॥ ७० ॥

अन्वयः

यद्वत् आपूर्यमाणं अचलप्रतिष्ठं समुद्रं आपः प्रविशन्ति तद्व-
त् यं सर्वे कामाः प्रविशन्ति सः शांतिमाप्नोतिकामकामी न ७०

टीका.

जैसा आपही पूर्ण औ अचलप्रतिष्ठ यानें एकरूप समुद्रमे

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

नदियौंका पानी प्रवेश करता है तैसेही जिसको सर्व कामना प्राप्त होती हैं सो शांतीको पावता है औ कामनामकी इच्छा करनेवाला शांतीको पावता नहीं ॥ ७० ॥

मूलम्.

विहायकामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

अन्वयः

यः पुमान् सर्वान् कामान् विहाय निःस्पृहः सन् चरति
सः निर्ममः निरहंकारः शांतिं अधिगच्छती ॥ ७१ ॥

टीका.

जो पुरुष सर्व कामनाको छोड़िके औ निस्पृह विचरता है सो निर्मम औ निरहंकार शांति पावता है ॥ ७१ ॥

मूलम्.

एषा ब्राह्मीस्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥ स्थित्वाऽस्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ एषा ब्राह्मीस्थितिः एनां प्राप्य नरः न विमुह्यति
अस्यां अंतकाले अपि स्थित्वा ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति ॥ ७२ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र यह जो ब्रह्मप्राप्ती करनेवाली निष्काम कर्मरूप स्थितिसो मैने कही इसको प्राप्तव्हेके फिरि मनुष्य संसाररूप मोहको प्राप्त नहीं होता है जो इस स्थितिमे अंतिम अवस्था-मे भी स्थित होय तौ भी मोक्षको प्राप्त होय औ जो बाल्य अवस्थासे लैके मरण पर्यंत ऐसेही कर्म करै वह ब्रह्मानंदको प्राप्त होय इस मे तौ कहनाहीक्या है ॥ ७२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वि
तीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृत
यां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्या
यः ॥ २ ॥

सूत्रम्.

अर्जुन उवाच ॥ ज्यायसी चेत्कर्मणस्तैमता बुद्धि
र्जनार्दन ॥ तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि के
शव ॥ १ ॥ व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसी
व मे ॥ तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयां ॥ २ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन चेत् कर्मणः बुद्धिः ते ज्यायसीमता तत् हे
केशव घोरे कर्मणि मां किं नियोजयसि ॥ १ ॥ व्यामि
श्रेण वाक्येन मे बुद्धिं मोहयसि इव तत् एकं निश्चित्य
वद येन अहं श्रेयः अवाप्नुयां ॥ २ ॥

टीका.

अर्जुनने विचार किया कि भगवानने मेरेको प्रथम अशो
क्यानन्वशोचस्त्वं इत्यादि वाक्यों करिके ज्ञानयोग उपदेश
किया फिर बुद्धिर्योगेतिमांशृणु इत्यादिक वाक्यों करिके कर्म
योग कहा उसमेभी श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला
इत्यादि करिके आत्मज्ञानकी प्राप्ति निष्कामकर्मसेकही इसवा
स्तेनिश्चय होता हैकि कर्मयोगसे आत्मज्ञानही श्रेष्ठ होयगा ए
सा विचारिके अर्जुन भगवानसे बोले किहे जनार्दन जो कि क-
र्म योगसे आत्मज्ञान आपने श्रेष्ठमाना होय तोहेकेशव इसहिं-

सात्मक घोर कर्म मेरेको किसवास्ते युक्त करतेहौ ॥ १ ॥ आप-
से मिश्रितवाक्योंकरिकेमेरीबुद्धिको मोहतेसेहौ इसवास्तेसोई
एक निश्चय करिके कहोकि जिसकरिके मैकल्याणकोप्राप्तहोउं २

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ लोकेऽस्मिन् द्विविधानिष्ठापु
राप्रोक्तामयाऽनघ ॥ ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्म
योगेन योगिनां ॥ ३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हे अनघ अस्मिन् लोके मयापुरा
द्विविधा निष्ठा प्रोक्ता सांख्यानां ज्ञान योगेन योगिनां क
र्मयोगेन ॥ ३ ॥

टीका.

ऐसे अर्जुनके वाक्य सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोलते भये हे
अनघ अर्थात् हे पापरहित अर्जुन जो मैने पूर्व अध्यायमे कहा
सो तुम अच्छीतरह समझे नही विचित्र अधिकारियों करिकेप-
रिपूरित ऐसे इस लोकमे प्रथमभी यथाधिकारी प्रतिदोप्रकारकी
निष्ठा कही तहां आत्मज्ञानियोंको ज्ञानयोग निष्ठा औ कर्म-
योग वालोंको कर्मनिष्ठा कही कारणकि जगतमे सर्वही लोग
मोक्षकी इच्छा करनेवाले नही हैं जब मोक्षइच्छा करे तबही ज्ञा-
नयोगका अधिकारी होता है सो जब प्रथम ईश्वराराधन रूप
निष्काम कर्म करिके निर्मलांतःकरण होता है तब सर्व इंद्रिय
उसकी स्थिर होती हैं ऐसा पुरुषज्ञाननिष्ठाका अधिकारी होता
है सो अगाड़ी कहेंगे ॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततः ॥ स्वक
र्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ अनेकजन्मसंसिद्धस्त
तो याति परांगतिं इत्यादि ॥ ३ ॥

मूलम्.

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥ न च
संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः

कर्मणां अनारंभात् पुरुष नैष्कर्म्यं न अश्नुते च संन्यस
नात् एव सिद्धिं न समधिगच्छति ॥ ४ ॥

टीका.

सर्व कोई भी मनुष्योंको मोक्षकी इच्छा होय तौभी ज्ञान ए-
काएकी दुष्कर है ऐसा कहते हैं शास्त्रोक्तकर्मके आरंभ कियेविना
पुरुष निष्कर्मताको प्राप्त नहीं होता है अर्थात् सर्व इंद्रियव्यापा
ररूप कर्मकी निवृत्ति पूर्वक ज्ञाननिष्ठाको प्राप्त नहीं होता है औ
कर्मके न करनेसे भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता क्योंकि निष्काम
कर्मकी सिद्धि परमेश्वराराधनही है इसवास्ते उस शास्त्रीय कर्म
विना उस परम पुरुषाराधन रूप सिद्धिको भी नहीं पाता है ॥ ४

मूलम्.

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥ कार्यं
ते ह्यवशः कर्मसर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

अन्वयः

हि कश्चित् अपि जातु अकर्मकृत् क्षणं न तिष्ठति सर्वैः
प्रकृतिजैः गुणैः अवशः सन् कर्म कार्यते ॥ ५ ॥

टीका.

प्रथम कहे वाक्यहीको स्पष्ट देखाते है प्रसिद्ध है कि इस-
लोकमे कोई भी पुरुष कोईभी कालमे कर्म कियेविना क्षणमात्र
भी नहीं रहि सकता है क्योंकि प्रकृतिके जे सत्त्वादिक सौ भा-
विक गुणहैं तिनों करिके परवश हुआ कर्म करताही है अर्थात्

जो ऐसा भी नेम करै किमै कर्म न करौंगा तौभीवै सौभाविक
गुण कर्म कराय लेतेहैं ॥ ५ ॥

मूलम्.

कर्मेन्द्रियाणिसंयम्यय आस्ते मनसा स्मरन् ॥ इन्द्रियाथान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

अन्वयः.

यः कर्मेन्द्रियाणिसंयम्य इन्द्रियाथान् मनसा स्मरन् सन्
आस्ते सः विमूढात्मा मिथ्याचारः उच्यते ॥ ६ ॥

टीका.

जो कोई ज्ञानयोगार्थ प्रवर्त्त होनेके वास्ते कर्मइन्द्रियोंका
केवल संयम करै औ विषयोंका मनमे स्मरण करता हुआ रहै
अर्थात् विषय वासना निवर्त्त भये विनाहठसे कर्मेन्द्रियोंकोरो
के सो मूर्ख मिथ्या आचरन् करनेवाला है ऐसे श्रेष्ठजन कह
ते है ॥ ६ ॥

मूलम्.

यस्त्विन्द्रियाणि मनसानियम्यारभतेर्जुन ॥
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः.

हे अर्जुन यः मनसा इन्द्रियाणि नियम्य तु कर्मेन्द्रियैः क.
र्मयोगं आरभते सः असक्तः सन् विशिष्यते ॥ ७ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो कोई मनसे इन्द्रियोंको नियमित करिके औ
कर्मेन्द्रियोंसे कर्मयोगका आरंभ करता है सो प्रथम कहे भये
ज्ञान प्राप्तिकीयत्न करनेवालेसे श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

मूलम्.

नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः ॥

शरीयात्रापिचतेनप्रसिद्धयेदकर्मणः ॥ ८ ॥

अन्वयः

त्वं नियतं कर्म कुरु हि अकर्मणः कर्म ज्यायः च अ-
कर्मणः ते शरीरयात्रा अपि न प्रसिद्धयेत् ॥ ८ ॥

टीका.

हे अर्जुन तुम नियतकर्मकरौ नियत उसकर्मको कहते है कि
जो जिसको निश्चय अधिकार है उस कर्मको कर्म करना उस
देह धारीको निश्चय अधिकार है इसवास्ते कर्मकरौ क्यों कि
कर्म किये विना केवल ज्ञानी वहैके बैठनेसे कर्म करना श्रेष्ठ है
औ जो तुम सर्व कर्म त्यागोके तो ज्ञानके उपयोगी जो यह
शरीर इसका भी रहना न होयगा ॥ ८ ॥

मूलम्.

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबंधनः ॥

तदर्थंकर्मकौंतेयमुक्तसंगःसमाचर ॥ ९ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय यज्ञार्थात् कर्मणः अन्यत्र अयं लोकः कर्मबंध
नः भवति त्वं मुक्तसंगः सन् तदर्थं कर्म समाचर ॥ ९ ॥

टीका.

हेकुंतीपुत्र जो शंका करौंगे कि कर्मसे बंधन होता है तौ उत्तर
सुनौ जो कर्म यज्ञके निमित्त है उस कर्मसे जो अन्य कर्म उसी
के करनेसे मनुष्य वंदनको प्राप्त होता है इसवास्ते तुम फला
संग छोडिके यज्ञार्थ कर्म करौ ॥ ९ ॥

मूलम्.

सहयज्ञाःप्रजाःसृष्ट्वापुरोवाचप्रजापतिः ॥ अने

नप्रसविष्यध्वमेषवोस्त्वष्टकामधुक् ॥ १० ॥ दे-
वान्भावयतानेनतेदेवाभावयंतुवः ॥ परस्परंभा-
वयंतःश्रेयःपरमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

अन्वयः

प्रजापतिः पुरासहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा उवाच यूयं अनेन
प्रसविष्यध्वं एषः वः इष्टकामधुक् अस्ति ॥ १० ॥ अ-
नेन यूयं देवान् भावयत ते देवाः वः भावयंतु एवं पर-
स्परं भावयंतः संतः परं श्रेयः अवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

टीका.

प्रजापति जो जगत्कारण भगवान् सो पुरा याने पूर्वसृष्टिके
उत्पत्ति समयमे यज्ञसंयुक्त प्रजाको उत्पन्न करिके प्रजासे बोले
कि इस यज्ञ करिके तुम वृद्धिके प्राप्त होउ यह तुमको सर्व का-
मना देनेवाला है ॥ १० ॥ इसी यज्ञ करिके तुम देवताँका आ-
राधन करिके उनकी वृद्धि करौ वै देव तुम्हारा मनोर्थ पूरण कर
ते भये तुम्हारी वृद्धि करैंगे ऐसे ही परस्पर बढ़ाते भये तुम औ
देवता सर्व बडे कल्याणको प्राप्त होउगे ॥ ११ ॥

मूलम्.

इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यंतेयज्ञभाविताः
तैर्दत्तानप्रदायैभ्योयोभुंक्तेस्तेनएवसः ॥ १२ ॥

अन्वयः

यज्ञभाविताः देवाः वः इष्टान् भोगान् दास्यंति तैः दत्ता
न् एभ्यः अप्रदाय यः भुंक्ते सः स्तेनएव ॥ १२ ॥

टीका.

यज्ञ करिके पूजे भये देवता तुमको इच्छित भोग देइंगे उन
देवताँने दिये पदार्थौ करिके उनका आराधन किये विनाजोस्व-

गीतावाक्यार्थ बोधिनी भाषाटीका.

६५

ये भोग भोगता है सोई चोर है चोरका लक्षण यही है कि दुस्सरे की वस्तु पर उसके दिये बिना आप सट्टहा करै ॥ १२ ॥

सूलम्.

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

अन्वयः

यज्ञशिष्टाशिनः संतः सर्वकिल्बिषैः मुच्यन्ते तु ये आत्मकारणात् पचन्ति ते पापाः अघं भुंजते ॥ १३ ॥

टीका.

यज्ञ अर्थात् नित्य यज्ञ देवाद्याराधनरूप यज्ञकाशेष भोगनेवाले पुरुष सर्व पापोंसे छुटते हैं औ जो केवल आपके वास्ते पाप करिके भोजन करते हैं वे पापरूप ही भोजन करते हैं अर्थात् पाप ही के वास्ते उनके भोजन हैं ॥ १३ ॥

सूलम्.

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥ यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥ अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

अन्वयः

अन्नात् भूतानि भवन्ति पर्जन्यात् अन्नसंभवः अस्ति सः पर्जन्यः यज्ञात् भवति सः यज्ञः कर्मसमुद्भवः अस्ति ॥ १४ ॥ तत्कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि तत् ब्रह्म अक्षरसमुद्भवं विद्धि तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म यज्ञे नित्यं प्रतिष्ठितं अस्ति ॥ १५ ॥

एवं इह प्रवर्तितं चक्रं यः न अनुवर्त्तयति हे पार्थ सः इंद्रि
यारामः अधायुः मोघं जीवति ॥ १६ ॥

टीका.

फिरिभी लोकदृष्टि करिके औ शास्त्रदृष्टि करिकेभीसर्वका मूल यज्ञही है ऐसा देखायके यज्ञकी नित्य कर्तव्यता औ न करने का दोष देखाते हैं अन्नात् इन श्लोकों करिके अन्नसे सर्व भूत प्राणीमात्र होतेहैं औ उस अन्नकी उत्पत्ति पर्जन्य याने वर्षासे है यह लोकप्रसिद्ध है सो पर्जन्य यज्ञसे होता है यह शास्त्रसे जाना जाता है सो प्रमाण जैसे ॥ श्लोक ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः संम्यगादित्य सुपतिष्ठते ॥ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नंततः प्रजाः ॥ १ ॥ सो यज्ञ द्रव्यार्जनादिक कर्त्ताके व्यापाररूप कर्मसे होता है ॥ १४ ॥ सो कर्म ब्रह्मसे होता है इहां ब्रह्मशब्दकरिके प्रकृति परिणामरूप शरीर जानना ॥ तदेव ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥ ऐसे वेदमे ब्रह्मशब्द करिके प्रकृति कही है ममयोनिर्महद्ब्रह्म ऐसे इहांभी कहेंगे इसवास्ते कर्मब्रह्मोद्भवं इस वाक्यका अर्थ यही है कि प्रकृतिपरिणाम रूप जो शरीर उससे कर्मकी उत्पत्ती है औ शरीररूप ब्रह्म याने प्रकृतिविकार सो अक्षर जो जीवात्मा सो उसमे है अर्थात् अन्नपानादि करिके तृप्त औ अक्षर जो जीव तिस करिके अधिष्ठित जो शरीर सो कर्ममे समर्थ होता है याने कर्म साधन भूत शरीर जीवसमुद्भव है इसवास्ते सर्व गतयाने सर्वाधिकार योग्य शरीर नित्यही यज्ञमे प्रतिष्ठित है अर्थात् यज्ञ मूल है ॥ १५ ॥ ऐसे परम पुरुष करिके प्रवर्त्त किया गया यह चक्र जैसे कि अन्नसे भूत भूत याने सजीव शरीर पर्जन्यसे अन्न यज्ञसे पर्जन्य सो यज्ञकर्मसे कर्म सजीव शरीरमे फिरिवह सजीव शरीर अन्नसे अन्न पर्जन्यसे इसप्रकारसे परस्पर कारण कार्य भाव करिके चक्रवत् प्रवर्त्तमान है इसको

जो कर्माधिकारी अथवा ज्ञान कर्माधिकारी प्रवर्त्त नहीं करता है औ यज्ञ कियेविना शरीर पोषण करता है सो केवल इंद्रियाराम पुरुष अथायु अर्थात् उसकी आयुः पापहीके वास्ते है हे अर्जुन वह वृथा जीवता है याने उसका जीवन वृथा है तात्पर्य जो यज्ञ शेषविना देह पोषण करता है वह रजोगुण तमोगुणरूपषाधी पुरुष आत्म दर्शन बिमुख है यहीसे केवल विषयभोगी होता है इसवास्ते ज्ञान योगादिकमे प्रवर्त्त है तौ भी उसका जीवना वृथा है ॥ १६ ॥

मूलम्.

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥ आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥ नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनैह कश्चन ॥ न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥ तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥ असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

अन्वयः

यः मानवः आत्मरतिः एव स्यात् च आत्मतृप्तः एव स्यात् च आत्मनि एव संतुष्टः स्यात् तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥ इह कृतेन च अकृतेन तस्य कश्चन अर्थः न एव सर्वभूतेषु कश्चित् अर्थव्यपाश्रयः न विद्यते ॥ १८ ॥ तस्मात् असक्तः सन् सततं कार्यं कर्म समाचर ह्यसक्तः कर्म आचरन् सन् पूरुषः परं आप्नोति ॥ १९ ॥

टीका.

अब महा यज्ञादिक कर्म किसको न करना चाहिये सो क-

हते हैं जिसकी आत्माहीमे प्रीति होय औ आत्माहीसे तृप्त आत्म व्यतिरिक्त अन्नादिकसे प्रयोजन नहीं औ आत्माही मे संतुष्ट दुसरे वाग महल माला चंदन इत्यादिकों काभी काम नहीं तिसको कुछभी कर्त्तव्यता नहीं ॥ १७ ॥ इसवास्ते जो कुछ आत्म दर्शनार्थ करै अथवा नकरै तौ भी उसके कुछ प्रयोजन नहीं औ सर्व भूतोंमे भी इसका कोई भी प्रयोजना धार नहीं ऐसे मनुष्यको कर्त्तव्यता नहीं अर्थात् मुक्तको नहीं ॥ १८ ॥ इसवास्ते कर्ममे आसक्त न भये हुये निरंतर करने योग्यकार्य करौ क्योंकि जो कर्ममे आसक्त नहीं है औ कर्म करता है तौ वह पुरुष कर्म करते करते परत्माको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

मूलम्.

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥ लोके
संग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

अन्वयः

हि जनकादयः कर्मणा एव संसिद्धिं आस्थिता लोक
संग्रहं अपि संपश्यन् कर्म कर्तुं एव अर्हसि ॥ २० ॥

टीका.

जिसवास्ते किज्ञान योगाधिकारीको भी कर्मयोगही श्रेष्ठहै इसवास्ते ज्ञानी जनौमे अग्रगण्य जनकादिकभी कर्मही करिके आत्मदर्शन पावते भये ऐसे प्रथम मुमुक्षूको ज्ञानयोगमे अधिकार नहीं इसलिये कर्मयोगिको कर्मयोग करना कहाफिरज्ञानी कोभी कर्मही करना श्रेष्ठहै ऐसे कारणासहितकहा अबदोनौको भी कर्मही करना श्रेष्ठहै ऐसाकहतेहैं किलोक संग्रहकोभी देखते भये कर्म करनेकोही योग्यहो इस संग्रहका कारण अगाडीके श्लोकमेकहते हैं ॥ २० ॥

मूलम्.

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥ स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

अन्वयः

श्रेष्ठः यत् यत् आचरति तत् तत् एव इतरः जनः आचरति स श्रेष्ठः यत् प्रमाणं कुरुते लोकः तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

टीका.

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करते हैं सोई सोई आचरण दूसरे लोग भी करते हैं औ सो श्रेष्ठ पुरुष जो प्रमाण करता है दूसरा भी वहीके अनुसार चलता है ॥ २१ ॥

मूलम्.

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥ नान्वाप्तमवाप्तव्यं वर्त्तएव च कर्मणि ॥ २२ ॥ यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ॥ मम वर्त्मानुवर्त्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥ उत्सीदेयुरिमे लोकान कुर्यां कर्मचेदहं ॥ संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ त्रिषु लोकेषु मे किंचन कर्तव्यं न अस्ति एवं अनवाप्तं च अवाप्तव्यं न अस्ति तथापि अहं कर्मणि एव वर्त्ते ॥ २२ ॥ हे पार्थ यदि अहं अतन्द्रितः सन् जातु कर्मणि न वर्त्तेयं तदि हि सर्वशः मनुष्यः मम वर्त्मानुवर्त्तते ॥ २३ ॥ चेत् अहं कर्म न कुर्यां तदि इमे लोकाः उत्सीदेयुः तेन संकरस्य कर्ता अहं स्यां च अतएव इमाः प्रजाः उपहन्यां ॥ २४ ॥

हेअर्जुन देखौ मै सर्वेश्वर अवाप्त सर्व काम सर्वज्ञ सत्यसंक
ल्प हौं इसवास्ते तीनहुं लोकमे देवमनुष्यादिक अवतारोंमे मे
रेको कुछभी कर्तव्यता नहीं है ऐसेही कोईभी पदार्थ अप्राप्त
नहीं है औ कर्म करिके कुछ पदार्थकी प्राप्तिकी इच्छाभी नहीं
है तौभी मै कर्मही करता हौं ॥ २२ ॥ हे अर्जुनजो मै निरालस्य
वहै केकदाचित् कर्म न करौं तौ निश्चय यह है कि सर्व मनुष्य
मेरेको कर्म नकरते देखिके कर्मन करैंगे कारण कि ऐसा विचारै
गे कि साक्षात् वसुदेव नंदन श्रीकृष्ण कर्म नहीं करते हैंतो हम
किसवास्ते करै जो कर्म करनेमे कुछ तत्व होता तौ श्रीकृष्णजी
क्यौं न करते ॥ २३ ॥ इसवास्ते जो मै कर्म न करौं तौमेरा आ-
चरन देखिके कर्म न करनेसे ये सर्व लोग नष्टआचार भ्रष्ट हो-
यंगे औ इसीसे वर्णसंकर होयंगे तौ उस वर्णसंकरताका कर-
नेवालाभी मै होउंगा औ इसी वास्ते इस प्रजाको मारनेवा
ला मै ही होउंगा तात्पर्य श्रीकृष्ण अर्जुनसे यह जनातेहैं कि
तुमहूं पांडुपुत्र श्रेष्ठ जनौमे उत्तम हौ जो केवल ज्ञानयोगाश्र
य करिके कर्म न करौंगे तौ तुमको देखिकेदूसरे अज्ञानीभी
कर्म छोडि देइंगे तबउनके कर्म छोडनेका पाप तुमकोहोय
गा इसवास्ते स्वधर्म युद्धरूप कर्म करौ ॥ २४ ॥

मूलम्.

सक्तःकर्मण्यविद्वांसोयथाकुर्वतिभारत ॥ कुर्या
द्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहं ॥ २५ ॥ नबु
द्धिभेदंजनयेदज्ञानांकर्मसंगिनां ॥ जोषयेत्सर्व
कर्माणिविद्वान्युक्तःसमाचरन् ॥ २६ ॥

अन्वयः

हे भारत यथा आविद्वांसः कर्मणि सक्ताः संतः कर्म कुर्वन्ति
तथा चिकीर्षुः विद्वान् असक्तः सन् लोकसंग्रहं यथास्या-
त्तथा कर्मकुर्यात् ॥ २५ ॥ युक्तः विद्वान् समाचरन् सन्
कर्मसंगिनां अज्ञानां बुद्धिभेदं न जनयेत् किंतु सर्वक-
र्माणि जोषयेत् ॥ २६ ॥

टीका.

हे अर्जुन जैसे अविद्वान् लोग कर्ममें आसक्त भये हुये क-
र्म करेहैं तैसेही कर्मके जाननेकी इच्छा करनेवाला कर्मफला-
संग रहित भया हुआ लोकोंको याने मनुष्योंको कर्मसंग्रह
जैसे होय तैसे कर्म करै ॥ २५ ॥ ऐसे ज्ञानयोगयुक्त विद्वान्
पुरुष सम्यक् प्रकार कर्मकर्ता हुआ कर्मासक्त अज्ञानी ज-
नोंको बुद्धिभेद न करै अर्थात् कर्मविना आत्मदर्शनका और-
भी उपाय है ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि सर्व कर्मकरना
योग है ऐसाही उपदेश देना ॥ २६ ॥

मूलम्.

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ अहं
कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥ त
त्त्ववित्तुमहाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥ गुणागु-
णेषु वर्तते इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो सर्वशः कर्माणि प्रकृतेः गुणैः क्रियमाणानि
सन्ति तथापि अहंकार विमूढात्मा पुरुषः अहं कर्ता इति
मन्यते ॥ २७ ॥ तु गुणकर्म विभागयोः तत्त्ववित् पुरुषः गु-
णाः गुणेषु वर्तते इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

टीका.

हे अर्जुन सबही कर्म प्रकृतिके सत्त्वादिगुणोने किये हैं अथवा गुणो करिके होते हैं तौभी अहंकार करिके मूढ भया है आत्मस्वरूप जिसका ऐसा पुरुष आपको कर्ता मानता है ॥ २७ ॥ औ सत्त्वादिकगुण तथा तिनके कर्मोंके विभाग जाननेवाला पुरुष ऐसा जानता है किसत्त्वादिकगुण आप आप के कार्योंमे वर्तमान हैं ऐसा मानिके मैं कर्ता हौं ऐसे आसक्त नहीं होता है ॥ २८ ॥

मूलम्.

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ॥ तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्नविचालयेत् ॥ २९ ॥

अन्वयः

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः गुणकर्मसु सज्जन्ते तान् अकृत्स्नविदः मंदान् कृत्स्नवित् न विचालयेत् ॥ २९ ॥

टीका.

प्रकृतिके जे सत्त्वादिकगुणतिनौ करिके सम्यक् मूढ ऐसे जे पुरुष तेही सत्त्वादिक गुणोंके कर्मोंमे याने कर्म फलों मे आसक्त होते हैं तिन असर्वज्ञ मंदमतिन्हको सर्वज्ञ पुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करै ॥ २९ ॥

मूलम्.

मयि सर्वाणिकर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥ निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

अन्वयः

अध्यात्मचेतसा मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य निराशीः निर्ममः भूत्वा विगतज्वरः सन् युद्धयस्व ॥ ३० ॥

अब श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन अज्ञानीकर्मा-
सक्त होते हैं तुम ज्ञानी हों इसवास्ते कर्म फलको मेरेको अर्प-
ण करिके युद्ध करौ जो कहोगे कैसे करौ तौ सुनौ अध्यात्मचे
तसा याने क्षत्रिय स्वभावमे चित्त राखिके अध्यात्म कहते हैं
स्वभावको सो अष्टम अध्यायमे कहेंगे स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते
तौ क्षत्रियके सौभाविक कर्म अठारहे अध्यायमे कहेंगे शौर्य-
तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनं ॥ दानमीश्वरभावश्चक्षात्रं कर्म
स्वभावजं द्रुपदवास्ते इसवाक्यसे इहां भगवान् यही कहते हैं कि
शूरत्व प्रताप धैर्य चातुर्य युद्धमे संमुख लडना दान औ सबको
आपनेका लुमे करना इत्यादि क्षात्र स्वभावमे चित्त राखिके वै
सव कर्म मेरे अर्पण करिके इनकेफलकी आशा न करौ औ मै
करता हौं ऐसाभी न समझौ ऐसे व्हैके विगतज्वर अर्थात् क-
र्मबंधन भयरूपज्वर छुटे भये युद्ध करौ जो भगवानने युद्धादिक
अर्पण करनेको कहा इसका कारण अठार हे अध्यायमे कहेंगे
कि जैसे स्वेस्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥ स्वकर्म
निरतः सिद्धिं यथाविंदति सच्छृणु ॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमि-
दं ततः ॥ स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ इत्यादि ॥ ३०

मूलम्.

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ॥ श्रद्धावं-
तो न स्यूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥ यत्वेतद-
भ्यस्यूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतं ॥ सर्वज्ञानविमूढांस्तान्-
न्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

अन्वयः

इदं मे मतं मानवाः नित्यं अनुतिष्ठन्ति ये श्रद्धावंतः ये
अनुस्यूयन्तः ते अपि कर्मभिः मुच्यन्ते ॥ ३१ ॥ तु पुनः ये

एतत् मे मतं अभ्यसूयंतः संतः न अनुतिष्ठन्ति तान् सर्व
ज्ञानविमूढान् अचेतसः नष्टान् विद्धि ॥ ३१ ॥

टीका.

यह मेरा मत जे मनुष्य ग्रहण करेंगे औ जे केवल ग्रहण क-
रनेकी श्रद्धाही रखेंगे औ जिनोंने न ग्रहणकिया औ न श्रद्धावा
न है परंतु निंदाभात्र नहीं करते हैं यह मत श्रेष्ठ है इतना कहते
ही हैं वै भी कर्मकृत परमपुण्यसे रहित होय हैं ॥ ३१ ॥ और जे
मनुष्य इसमेरे मतकी निंदा करते हुये इसको ग्रहण नहीं करते
हैं तिनको सर्वत्र ज्ञान विषयमे मूढ अचेत औ नष्ट जाणौ ॥ ३२ ॥

मूलम्.

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥

प्रकृतियांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

अन्वयः

ज्ञानवान् अपि पुरुषः स्वस्याः प्रकृतेः सदृशं चेष्टते अतः
भूतानि प्रकृतियांति एवं सति निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

टीका.

जो कहा कि कर्मस्वभावके स्वाधीन है उसीको स्पष्ट करते
हैं कि ज्ञानवान् पुरुष भी आपके स्वभावके सदृश चेष्टा करता
है तौ आज्ञानको कहनाही क्या है इसीवास्ते भूतप्राणी मात्र
आप आपकी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं जब ऐसा नेम है तो नि
ग्रह कैसे करै ॥ ३३ ॥

मूलम्.

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

अन्वयः

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्य अर्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ स्तः तयोः
वशं न आगच्छेत हि तौ अस्य परिपंथिनौ भवतः ॥ ३४ ॥

टीका.

जब कर्म स्वभाव हीसे है ओ उसका निग्रह नहीं तब उपाय
क्या सो कहते हैं कर्मेन्द्रिय औ ज्ञानेन्द्रिय इनके निमित्त राग औ
द्वेष ये स्थित हैं अर्थात् इन्द्रिय सुखमे प्रीति औ उनके सुखनमि-
लनेमे द्वेष होता है तौ इनके वश न होना क्यों कि ये राग औ
द्वेष दोनों इस ज्ञानीके पूर्ण शत्रु हैं ॥ ३४ ॥

मूलम्.

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

अन्वयः

स्वनुष्ठितात् परधर्मात् स्वधर्मः विगुणः श्रेयान् स्वधर्मः
निधनं श्रेयः परधर्मः भयावहः ॥ ३५ ॥

टीका.

अब जो रागद्वेषसे स्वधर्मका त्याग औ परधर्मका ग्रहण भी
होता है उसको निवारण करते हैं जैसे कि नेत्रादि इन्द्रियोंकी प्री-
तिसे अर्जुन स्वधर्म त्यागने लगे कि इस स्वजनौको देखिके मेरे
को दया आती है इसवास्ते मैं युद्ध न करौंगा भीख मागौंगा सो
निवारण करते हैं अन्यका धर्म अच्छा भी देखै तौ भी उस श्रेष्ठ
परधर्मसे न्यून भी आपका ही धर्म कल्याणकारक है जो आपके
धर्ममे मृत्यु होय तौ भी कल्याण होयगा औ दूसरेका धर्म सदा ही
भयकारक है इसवास्ते जो पराये धर्ममे इस लोकका सुख भी
मिलै तौ भी अपना धर्म छोड़िके दूसरा ग्रहण न करना अर्थात्
आपके वर्णधर्ममे दृढ़ रहना यही कल्याणकारक है इहां कोई

धर्मशब्दसे शैव शाक्त वैष्णव इत्यादिक न समुझनायै तौ उपासनाहैं इनमे तो जिस उपासनामे चमत्कार अपनेको देखै याने देवता सिद्धिप्राप्ति होय सोई ग्रहण करना सो देवता सिद्धिकराना गुरुके स्वाधीनहै इसवास्ते प्रथम गुरुको देखाना कि इनके देवसिद्धी है यानही जो न होइ तौ दूसराही गुरु करना जो गुरुहीके देवसिद्धि न होयगी तौ शिष्यको कहाँसे मिलैगी ॥ ३५ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥ अनिच्छन्नपि वाष्ण्येयवलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच हे वाष्ण्येय अथ अयं पुरुषः अनिच्छन् अपि वलात् नियोजितः इव केन प्रयुक्तः पापं चरति ॥ ३६ ॥

टीका.

जब भगवानने कहा कि स्वधर्मही श्रेष्ठ है औ दूसरेका धर्म भयकारक है सो सुनिके अर्जुन पूछते भये कि हे वाष्ण्येय याने हे कृष्ण जिसको यह निश्चय है कि स्वधर्म श्रेष्ठ है औ वह स्वधर्म पूर्वक ज्ञानयोगमे प्रवर्तहुआ भया विषयोंको त्याग किया है तौ भी यह पुरुष विषयोंकी इच्छा नहीं करते भी जैसे कोई जोवरी करावै ऐसे तिसका प्रेरण कियाहुआ पाप आचरण करता है ॥ ३६ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ काम एषः क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥ महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच यः, एषः कामः सः एषः रजोगुणसमु-

इवः महाशनः महापाप्मा क्रोधः एनं हह वैरिणंविद्धि॥३७॥

टीका.

श्रीकृष्ण भगवान् उत्तरदेते हैं कि जो यह काम है सोई यहर जोगुणजन्यकाम अति विषय सेवन करता हुआ बड़ा पापी क्रोधरूप होता है इसको इस ज्ञानविषयमें शत्रु जानौ ॥ ३७ ॥

मूलम्.

धूमेनाव्रियतेवन्हिर्यथादर्शोमलेनच ॥

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः

यथा वन्हिः धूमेन आव्रियते च यथा आदर्शः मलेन आव्रियते यथा गर्भः उल्बेन आवृतः तथा तेन इदं आवृतं ॥ ३८ ॥

टीका.

जैसे अग्नि धुआंकरिके आछादित होता है जैसे दर्पण मैल करिके आछादित होता है औ जैसे गर्भ जरायु करिके आछादित होता है तैसे ही यह जंतुनका ज्ञान उस काम करिके आछादित है ॥ ३८ ॥

मूलम्.

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥ कामरूपेण कौंतेय दुःपूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥ एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनं ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥ पाप्मानं प्रजहि ह्येन ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हेकौंतेयज्ञानिनः नित्यवैरिणा च दुःपूरेण च अनलेन कामरूपेण एतेन कामेन ज्ञानं आवृतं ॥ ३९ ॥ इंद्रियाणि मनः बुद्धिः अस्याः अधिष्ठानं उच्यते एषः एतैः ज्ञानं आवृत्य देहि नं विमोहयति ॥ ४० ॥ तस्मात् त्वं आदौ इंद्रियाणि नियम्य हे भरतर्षभ एनं ज्ञानविज्ञाननाशनं पाप्मानं हि प्रजहि ॥ ४१ ॥

टीका.

जो पूर्वश्लोकमें कहा कि इदं आवृतं याने यह आच्छादित है सो अब स्पष्ट देखाते हैं हे कुंतीपुत्र ज्ञानीकानित्यवैरि औ बड़े दुःखसे भी पुरनेमें न आवै ऐसे अपरिपूर्ण ऐसा इच्छारूप जो यह काम इस करिके ज्ञान आच्छादित है ज्ञानीकानित्यवैरि कहने में मुखका प्रथम मित्रवत् है औ परिणाममें शत्रु है औ ज्ञानी उस के परिणामको जानता है इस वास्ते आदि औ अंतमें भी शत्रु है इस वास्ते ज्ञानीकानित्यवैरि है ॥ ३९ ॥ अब इसके रहनेके स्थान कहते हैं कारण कि शत्रुका स्थान वगैरे जानेविना वह जी तनेमें आता नहीं उस वास्ते स्थान भी देखाते हैं सो यह कि सर्व इंद्रिय औ मन तथा बुद्धि ये इसके रहनेकी जय हैं इस वास्ते यह काम इन इंद्रिय औ मन बुद्धिसे ज्ञानको आच्छादित करिके देहधारीको मोहि लेता है ॥ ४० ॥ इसी वास्ते तुम प्रथम इंद्रियों को वश करिके फिरि हे अर्जुन यह जो ज्ञान जो आत्मज्ञान औ विज्ञान जो परमात्मज्ञान भक्ति इनका नाश करनेवाला औ पापी याने पाप करनेवाला ऐसे कामको जीतौ ॥ ४१ ॥

मूलम्.

इंद्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥ मन

सस्तुपराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तुसः ॥ ४२ ॥ एवंबु
द्धेः परंबुध्वासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ जहिशत्रुंम
हावाहांकामरूपंदुरासदम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः

इंद्रियाणि पराणि इति पंडिताः आहुः इंद्रियेभ्यः परं मनः
मनसः परा बुद्धि तु यः बुद्धेः परतः सः एव सः कामः ॥ ४२ ॥
हे महाबाहो एवं बुद्धेः परं कामरूपं दुरासदं शत्रुं बुध्वा आ
त्मानं आत्मना संस्तभ्य एनं जहि ॥ ४३ ॥

टीका.

अब ज्ञानके विरोधियोंमे प्रधान कहते हैं ज्ञानविरोधियोंमे
इंद्रिय प्रबल हैं ऐसा पंडितजन कहते हैं इंद्रियोंसे मन प्रबल
है क्यों कि इंद्रियोंका निग्रह किया औ मनको वश न किया
तौ वह मन इंद्रियोंको चलायमान जरूर करेगा औ मनसे बुद्धि
प्रबल है कारण कि मनकोभी बुद्धि चलायमान करती है औ इस
बुद्धिसेभी जो प्रबल है सो काम है कारणकी कामना बुद्धिको-
भी चलायमान करे है ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन ऐसे बुद्धिसे प्रबल इस
कामरूप अति दुःसह शत्रुको जानिके फिर मनको बुद्धि करिके
रोकिके इस कामरूप शत्रुको जीतौ ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृती-
योऽध्यायः ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान्
हमव्ययं ॥ विवस्वान्मनवे प्राहमनुरिक्ष्वाकवे
ऽब्रवीत् ॥ १ ॥ एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो
विदुः ॥ सकालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥ भक्तो
ऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमं ॥ ३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच अहं इमं अव्ययं योगं विवस्वते प्रोक्त
वान् विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत् ॥ १ ॥
एवं परंपराप्राप्तं इमं राजर्षयः विदुः हे परंतप स योगः इह
महता कालेन नष्टः ॥ २ ॥ स एव अयं पुरातनः योगः म
या ते अद्य प्रोक्तः यतः त्वं मे भक्तः असि च सखा असि
इति हियस्मात् एतत् उत्तमं रहस्यं अस्ति ॥ ३ ॥

टीका.

तिसरे अध्यायमे प्रकृती संसर्गिकमुमुक्षुको यकवारगीताज्ञान
योगमे अधिकार नहीं हो सकता इसवास्ते उसको कर्मही कर
ना कहा औ ज्ञानयोगीको भी कर्तृत्व त्याग पूर्वक कर्मही श्रेष्ठ
कहा औ शिष्टाचारके वास्ते भी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा अब च-
तुर्थ अध्यायमे इसी कर्म योगकी कर्तव्यता समस्त जगत उ-
द्धारके वास्ते मन्वंतरके आदिमे कहीथी सो दृढ करते हैं औ
इसीके अंतर्गत ज्ञानयोग है इसवास्ते इसकी ज्ञानयोगाकारता
देखायके कर्मयोगका स्वरूप औ उसके भेद औ कर्मयोगमे
ज्ञानहीके अंशकी प्राधान्यता कहते हैं औ इसी प्रसंगसे भग-
वान्के अवतारके निश्चयको भी कहते हैं ॥ श्रीभगवान् कह

तेहैं कि मैंने यह योग तुझारेसे कहा सो केवल इसी काल मे युद्धके उत्साहके बढानेको कहा ऐसा नसमुझौ क्योंकि मन्वंतर के आदिमे इसी मोक्ष साधन अखंडित योगको मैंने विवस्वान् याने सूर्यको उपदेश किया था सो सूर्य राजा श्राद्धदेव मनुको कहते भये औ मनुने इक्ष्वाकुसे कहा ऐसे परंपरासे प्राप्त है इसको इसी तरह राजर्षी जानते भये हे परंतप अर्जुन सो योग इसलो कमे श्रोताजनौकी बुद्धिमंदतासे बहुत काल करिके नष्ट भया था ॥ २ ॥ सोई यह पुरातन योग मैंने तुझारेको आज कहा क्यों कि तुम मेरे भक्त हो औ सखा भी हो इसवास्ते कहा नहीं तो यह उत्तम वेदांतोदित रहस्य याने ज्ञान है अर्थात् दूसरेको कहना न चाहिये अपना होय उसीको कहना ॥ ३ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥ कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच भवतः जन्म अपरं विवस्वतः जन्म परं त्वं आदौ विवस्वते प्रोक्तवान् इति एतत् अहं कथं विजानीयां ॥ ४ ॥

टीका.

अब इस प्रसंगमे भगवान् के अवतारका यथार्थ निश्चय जाननेको अर्जुन बोले कि तुझारा जन्म इस कालमे भया है औ सूर्यका जन्म अष्टादश चतुर्युगीके आदिमे भया था जो तुम कहते हो कि मैंने मन्वंतरकी आदिमे सूर्यसे कहा है यह ऐसे हम कैसे जानें ॥ ३ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ बहूनिमेव्यतीतानिजन्मानि
तवचार्जुन ॥ तान्यहंवेद्विसर्वाणिनत्वंवेत्थपरं
तप ॥ ५ ॥ अजोऽपिसन्नव्ययात्माभूतानामीश्व
रोऽपिसन् ॥ प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्म
मायया ॥ ६ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे अर्जुन हेपरंतप मे जन्मानिच त
व जन्मानि बहूनि व्यतीतानितानि सर्वाणि अहंवेद्वि
त्वं न वेत्थ ॥ ५ ॥ अस्यकारणमाह अजोपीति निश्चये
अजः सन् अव्ययात्मासन् भूतानां अपिईश्वरः सन्
स्वांप्रकृतिं अधिष्ठाय आत्ममायया संभवामि ॥ ६ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् अब इसी उत्तरमे आपके अवतारका प्र-
कार औ देहका निश्चय औ जन्मका कारण भी कहते हैं जैसेकि
श्रीकृष्णभगवान् बोलते भये हेअर्जुन मेरे जन्म औ तुम्हारेजन्म
बहुत व्यतीत भये हैं तिन सबनको मैं जानता हों औ तुम नहीं
जानते हो ॥ ५ ॥ इसका कारण कहते हैं कि निश्चय मैं अजन्मा-
हुआभया औ एकरसहुआ भया भूत प्राणिमात्रका ईश्वर हु-
आ भया अर्थात् अजन्मत्व अव्ययत्व औ ईश्वरत्वको न छोड-
ता भया आपहीकी प्रकृतिका आश्रय करिके याने आपहीके
स्वभावको आश्रित करिकेआपको जानता भया स्वरूप ग्रहण
करता हों आपको भूलजाना यह जीवका धर्म है इहां मायाश-
ब्द ज्ञातवाचक हे अर्थात् आपके ज्ञानसंयुक्त अवतार लेताहों
मेरेको ज्ञान नित्य है जीवनको अनित्य है सो श्रुति प्रसिद्ध है

परास्यशक्तिर्विविधैवभूयतेस्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाचेति ॥ ६

सूत्रम्.

यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत ॥ अभ्यु-
त्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

अन्वयः

हे भारत यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः अधर्मस्य अभ्यु-
त्थानं भवति तदा अहं आत्मानं सृजामि ॥ ७ ॥

टीका.

अब अवतार प्रयोजन कहते हैं जब जब वेदोक्त वर्णा-
श्रम धर्मकी मलीनता औ अधर्मकी वृद्धि होती है तब तब
मैं कहे भये प्रकारसे देह धारण करता हों कुछ कालकाभी
नियम नहीं है ॥ ७ ॥

सूत्रम्.

परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थायसंभवामियुगेयुगे ॥ ८ ॥

अन्वयः

साधूनां परित्राणाय च दुष्कृतां विनाशाय च धर्मसंस्था-
पनार्थाय युगे युगे अहं संभवामि ॥ ८ ॥

टीका.

जो अगाडी कहेंगे अनन्याश्रितयंतोमां ॥ अपिचेत्सदुरा-
चारो भजते मामनन्यभाक् ॥ साधुरेव समंतव्यः सम्यग्व्यवसितो
हिसः ॥ इत्यादि वाक्योंके प्रमाणसे जे मेरे अनन्य भक्त साधू
उनकी रक्षाकेवास्ते औ दुष्टोंके विनाश करनेके वास्ते ऐसेही
वेदोक्त धर्म स्थापन करनेके वास्ते मैं देव मनुष्यादिक रूपोंसे
युग युगमें अवतार लेताहूँ ॥ ८ ॥

मूलम्.

जन्मकर्मचमेदिव्यमेवंयोवेत्तितत्त्वतः ॥ त्यक्त्वा
देहंपुनर्जन्मनैतिमामेतिसोर्जुन ॥ ९ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन मैं दिव्यं जन्म च दिव्यं कर्म एवं यः तत्त्वतः वे-
त्ति सः देहं त्यक्त्वा पुनः जन्म न एति किंतु मां एति ॥ ९ ॥

टीका.

हे अर्जुन मेरे दिव्य याने अप्राकृत अलौकिक जन्म औ
साधु रक्षण रूप दिव्यकर्म इनको जो ऐसे निश्चय करिके
जानता है सो इस देहको त्यागिके फिरी जन्म नहीं लेता है
क्योंकि मेरेहीको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

मूलम्.

वीतरागभयक्रोधामन्मयामासुपाश्रिताः ॥ बह
वोज्ञानतपसापूतामद्भावागताः ॥ १० ॥

अन्वयः

वीतरागभयक्रोधाः मन्मयाः मां उपाश्रिताः एवं भूताः
बहवः ज्ञानतपसा पूताः मद्भावं आगताः ॥ १० ॥

टीका.

व्यतीत भये हैं संसारिके अनुराग भय औ क्रोध जिनके औ
मेरेमे हैं चित्त जिनके तथा मेरेही आश्रित ऐसे पुरुष बहुतसे इ-
समेरे स्वरूप ज्ञानरूप तपसे पवित्र हुये मेरेको प्राप्त भये हैं ॥ १० ॥

मूलम्.

येयथामांप्रपद्यंतेतांस्तथैवभजाम्यहं ॥
ममवर्त्मानुवर्ततेमनुष्याःपार्थसर्वशः ॥ ११ ॥

अन्वयः

हे पार्थ ये मां यथा प्रपद्यन्ते अहं तान् तथा एव भजामि
यतः सर्वशः मनुष्याः सम वर्त्मानु वर्तन्ते ॥ ११ ॥

टीका.

हे पृथाकेपुत्र अर्जुन जे मनुष्य मेरेको जैसे भजते हैं उनको
मैभी वैसाही भजता हौं जैसे कि सकाम वहै के इंद्र अग्नि इ-
त्यादिक मेरे स्वरूपोंको भजते हैं तौ मै उनको उसी रूपसे का-
मना देता हौं क्योंकि सर्व यज्ञका भोक्ता इंद्रादिरूपसे मही हौं
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥ इत्यादि प्रमाणोंसे औ जो
निष्काम वहैके सर्वेश्वर जानिके मेरेही को भजता है याने जो
कुछ करता है सो सब मेरेही अर्पण करता है उसको मैभी सर्वो-
त्कृष्ट मोक्ष देता हौं कारण वेदमे जो मार्ग है वै मेरेही कहे भये हैं
तौ जो जो मनुष्य सकाम अथवा निष्काम कर्म करते हैं वै मे-
रेही कहे प्रमाण चलते हैं इसवास्ते उनके भजनानुकूल मैभी
उनको भजता हौं याने वैसाही फल देता हौं ॥ ११ ॥

सूलम.

काक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

अन्वयः

कर्मणां सिद्धिं काक्षंतः संतः जनाः इह मानुषे लोके देव
ताः यजन्ते हियस्मात् कर्मजा सिद्धिः क्षिप्रं भवति ॥ १२ ॥

टीका.

कर्म सिद्धिकी इच्छा करते हु ए मनुष्य इस मनुष्यलोकमे इंद्रा-
दिक देवतोंका यज्ञ करते हैं औ मेरेको स्वतंत्रतासे नहीं पूजते हैं
क्योंकि उनके कर्मकी सिद्धितत्काल होती है औ निष्काम कर्मसे

तत्काल सिद्धि दीखती नहीं केवल अंतमे मोक्षप्राप्त होती है ॥ १२ ॥

मूलम.

चातुर्वर्ण्यमया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥

तस्य कर्तारमपि मां विद्वद्य कर्तारमव्ययं ॥ १३ ॥

अन्वयः

गुणकर्मविभागशः मया चातुर्वर्ण्यं सृष्टं तस्य कर्तारं
अपि मां अकर्तारं अव्ययं विद्धि ॥ १३ ॥

टीका.

गुण औ कर्मों के विभाग करिके चारौ वर्ण संयुक्त इस संसार-
को मैंने उत्पन्न किया है जैसे कि सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मण उनके
शम दमादिक कर्म सत्त्वरज प्रधान क्षत्रिय उनके शूरत्व बुद्धादि
क कर्म रज तम प्रधान वैश्य उनके कृषिवाणिजादिक कर्म तमो
गुण प्रधान शूद्र उनका तीनौ वर्ण की परिचर्यारूप कर्म ऐसे गुण औ
कर्म के विभाग करिके जो चातुर्वर्ण्य मैंने उत्पन्न किया है उसका
कर्ता जो मैं तिसको अव्यय जानिके अकर्ता समुझौ ॥ १३ ॥

मूलम.

न मां कर्माणि लिप्यन्ति मे कर्मफले स्पृहा ॥ इति

मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न बध्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः

मां कर्माणि न लिप्यन्ति मे कर्मफले स्पृहा न अस्ति इति
यः मां अभिजानाति सः कर्मभिः न बध्यते ॥ १४ ॥

टीका.

जो प्रथम कहा की मेरेको अकर्ता जानौ उसका कारण कहते
हैं कि मेरेको कर्म लिप्त नहीं होते हैं क्योंकि मेरेको कर्म फल की
वृष्णा नहीं इस वास्ते मेरेको कर्म बंधन नहीं ऐसे जो मेरेको जानता

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

है सो भी कर्मबंधनको प्राप्त नहीं होता है अर्थात् जो कर्मबंधन रहित जानिके मेरा भजन करता है सो मुक्त होता है ॥ १४ ॥

मूलम्.

एवंज्ञात्वाकृतंकर्मपूर्वरपिमुमुक्षुभिः ॥ कुरुकर्मेव
तस्मात्त्वंपूर्वःपूर्वतरंकृतं ॥ १५ ॥

अन्वयः

पूर्वःमुमुक्षुभिःअपि एवंज्ञात्वा कर्म कृतं तस्मात् त्वं
अपि पूर्वःकृतंपूर्वतरं कर्म एव कुरु ॥ १५ ॥

टीका.

पूर्वकालके मन्वादिक मुमुक्षुजनौनैभी ऐसा जानिके कर्म किया इसीवास्ते तुमभी पूर्व मुमुक्षुनका किया प्राचीन कहा हुआकर्मही करौ ॥ १५ ॥

मूलम्.

किंकर्मकिमकर्मेतिकवयोऽप्यत्रमोहिताः ॥
तत्तेकर्मप्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽभयात् ॥ १६ ॥

अन्वयः

कर्मकिं अकर्मकिं इति अत्र कवयःअपि मोहिताःतत्
कर्म अहं ते प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे ॥ १६ ॥

टीका.

कर्म क्याहै औ अकर्म क्या है इस विषयमे कवी जे सारा सार विवेकी वै भी मोहको प्राप्त होते है याने विश्वय करिके नहीं जानते हैं सो कर्म मै तुमसे कहौंगा जिसको जानिके संसारसे मुक्त होउगे ॥ १६ ॥

मूलम्.

कर्मणोह्यपिबोद्धव्यंबोद्धव्यंचविकर्मणः ॥

अकर्मणश्चबोद्धव्यंगहनाकर्मणोगतिः ॥ १७ ॥

अन्वयः

हि यस्मात् कर्मणः स्वरूपं बोद्धव्यं च विकर्मणः स्वरूपं बोद्धव्यं च अकर्मणः स्वरूपं बोद्धव्यं तस्मात् कर्मणः गतिः गहना ॥ १७ ॥

टीका.

जिसवास्ते कि कर्म जो करने योग कर्म उसका स्वरूप जानना चाहिये औ विकर्म जिस एक कर्ममे विविध प्रकार हैं उसका भी स्वरूपजानना चाहिये औ अकर्म जो व्यवसायात्मिका बुद्धिकरिके एक ईश्वराराधनार्थ निष्काम कर्म है उसका भी स्वरूप जानना चाहिये इसवास्ते कर्मकी गति दुर्गम है ॥ १७ ॥

मूलम्.

कर्मण्यकर्मयः पश्येदकर्मणिचकर्मयः ॥

सबुद्धिमान्मनुष्येषुसयुक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

अन्वयः

यः कर्मणि अकर्म पश्येत् च अकर्मणि यः कर्म पश्येत् सः मनुष्येषु बुद्धिमान् सः युक्तः सः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

टीका.

अब कर्म औ अकर्मका स्वरूप ज्ञातृत्व कहते हैं जो मनुष्य क्रियमाण कर्ममे अकर्म याने आत्मज्ञान देखै औ अकर्म जो आत्मज्ञान तिसमे कर्म देखै जैसे कि निष्काम कर्मसे आत्मज्ञान होता है औ आत्मज्ञान उस कर्मविना होतानहीं इसवास्ते जो कर्मको ज्ञानाकार औ ज्ञानको कर्माकार समुझै सो मनुष्य सर्व मनुष्योमे बुद्धिमान् औ सोई योगी औ सोई सर्व कर्मका करनेवाला है ॥ १८ ॥

मूलम्.

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

अन्वयः

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः स्युः ज्ञानाग्नि
दग्धकर्माणं तं बुधाः पण्डितं आहुः ॥ १९ ॥

टीका.

प्रत्यक्ष क्रियमाण कर्म उसकी ज्ञानाकारता कैसे होय सो
कहते हैं जिसके समग्र लौकिक वैदिक आरंभ कामना संकल्प
से रहित होय तब ज्ञानरूप अग्नि करिके दग्ध भये है बंधनकार-
क कर्म जिसके उसको विद्वान लोग पण्डित कहते हैं ॥ १९ ॥

मूलम्.

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥ २० ॥

अन्वयः

यः कर्मफलासंगं त्यक्त्वा नित्यतृप्तः निराश्रयः कर्मणि अ
भिप्रवृत्तः अपि सः किंचित् एव न करोति ॥ २० ॥

टीका.

जो कर्मकी फलासक्तिको त्यागिके नित्य आत्मामे तृप्त औ
अस्थिर प्रकृतिमे आश्रय बुद्धि रहित व्हाँके कर्म करता है तौभी
सो कुछभी कर्म नहीं करता है क्योंकि कर्मके मिससे ज्ञानही-
का अभ्यास करता है ॥ २० ॥

मूलम्.

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषं ॥ २१ ॥

अन्वयः

यः निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः सः केवलं
शरीरं कर्म कुर्मन् सन् किल्बिषं न आप्नोति ॥ २१ ॥

टीका.

जो मुमुक्षु कर्मफलकी इच्छा रहित औ चित्त तथा मनको
स्वार्थीन किये होय औ केवल आत्माहीकी प्रयोजनता करिके
प्रकृति संबंधी वस्तुनमेममता रहित होय सो केवल शरीर संबं
धी कर्म करता हुआ कर्म बंधनको नहीं प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

मूलम्.

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ॥ समः
सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

अन्वयः

यदृच्छालाभसंतुष्टः द्वंद्वातीतः विमत्सरः सिद्धौ च असिद्धौ
समः एवंभूतः पुमान् कर्म कृत्वा अपि न निबध्यते ॥ २२ ॥

टीका.

आपहीसेप्राप्त भये पदार्थसे संतुष्ट सुखदुःख लाभ अलाभ
हर्ष शोक इत्यादिक द्वंद्वौ करिके रहित औ ईर्ष्यारहित तथासि
द्धिऔ अस्तिद्धि समबुद्धिमे ऐसा पुरुष कर्म करिकेभी बंधनमे
आता नहीं ॥ २२ ॥

मूलम्.

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥ यज्ञा
याचरतः कर्मसमग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

अन्वयः

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः यज्ञाय कर्मत्रा
चरतः जनस्य समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

टीका.

त्यागे हैं आत्म व्यतिरिक्त संग जिसने औ छोड़ी हैं संसार वासना जिसने औ आत्मज्ञानमें स्थिर है चित्त जिसका ऐसा मुमुक्षू जो यज्ञ निमित्त कर्म करता है तौ उसी कर्मकारिके उस के बंधन कारक प्राचीन कर्म नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

मूलम्.

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं ॥ ब्रह्मै
व तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ॥ २४ ॥

अन्वयः

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं तेन ब्रह्म कर्म समाधिना ब्रह्म एव गंतव्यं ॥ २४ ॥

टीका.

प्रकृतिसे भिन्न आत्मस्वरूपके अनुसंधान योग करिके कर्मका ज्ञानाकारत्व कहा अब परब्रह्मके अनुसंधानके योग करिके ज्ञानाकारत्व उसी कर्मयोगका कहते हैं जिसकारिके अर्पण करते हैं वह स्त्रुवा इत्यादिक वस्तु ब्रह्म हैं अर्थात् ब्रह्मका कार्य औ हव्य है वह भी ब्रह्म अग्नि भी ब्रह्म हवन करनेवाला भी ब्रह्म उसीने हवन किया ऐसे सर्वब्रह्मात्मक है इसवास्ते उसी ब्रह्म कर्मकी धारणासे ब्रह्म ही प्राप्त होने योग्य है ॥ २४ ॥

मूलम्.

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥ ब्रह्माग्नाव
परे यज्ञं यज्ञैर्नैवोपजुव्हति ॥ २५ ॥

अन्वयः

अपरे योगिना दैवं एव यज्ञं पर्युपासते अपरे ब्रह्माग्नौ यज्ञेन यज्ञं एव उपजुव्हति ॥ २५ ॥

टीका.

ऐसे कर्मकी ज्ञानाकरता कहिके अब कर्मयोगके भेद कहते हैं और केतनेक कर्मयोगी देवाराधनरूप यज्ञ अर्थान् देव प्रतिमादिक पूजन रूपही यज्ञ करते हैं और केतने ब्रह्ममय अग्नी मे यज्ञसाधन सामग्री करिके हवन रूप ज्ञय करते हैं ॥ २५ ॥

मूलम्.

श्रोत्रादीर्नाद्रियाण्यन्येसंयमाग्निषु जुव्हति ॥
शब्दादीन्विषयानन्येन्द्रियाग्निषु जुव्हति ॥ २६ ॥

अन्वयः

अन्ये श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणिसंयमाग्निषु जुव्हति अन्ये
शब्दादीन् विषयान् इन्द्रियाग्निषु जुव्हति ॥ २६ ॥

टीका.

और केतनेक योगी श्रवण इत्यादिक इन्द्रियोको संयमरूप अग्निमे हवन करते हैं अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोंको शुभकर्मही मे लगाते हैं और केतनेक योगी शब्दादिविषयों को इन्द्रियरूप अग्निमे हवन करते हैं याने मितभाषणादिक करते हैं ॥ २६ ॥

मूलम्.

सर्वाणिन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुव्हति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अन्वयः

अपरे सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि च प्राणकर्माणि ज्ञानदी-
पिते आत्मसंयमयोगाग्नौ जुव्हति ॥ २७ ॥

टीका.

और केतनेक योगी सर्व इन्द्रियोंके कर्मोंको औप्राणोंके क-
र्मोंको ज्ञान करिके प्रदीप्त जोमनके संयमरूप अग्नि तिसमे हो-

मते हैं अर्थात् मन करिके इंद्रिय औ प्राणोंके कर्मोंकी प्रवृत्ति-
को निवारण करनेमे यत्न करते हैं ॥ २७ ॥

मूलम.

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञायोगयज्ञास्तथापरे ॥

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्रयतयःसंशितव्रताः ॥ २८ ॥

अन्वयः

अपरे योगिनः द्रव्ययज्ञाः अपरे तपोयज्ञाः अपरे योग
यज्ञाः अपरे संशितव्रताः यतयः स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः
संति ॥ २८ ॥

टीका.

और केतनेक योगी द्रव्य करिके दान देवप्रतिष्ठार्चनादिकरूप
यज्ञ करनेवाले हैं केतने कलूचांद्रायणादिक तपरूपयज्ञ करने
वाले हैं केतनेक पुण्यक्षेत्रादिक योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं और
केतनेक दृढव्रति यत्नशील वेदाध्ययन औ वेदार्थ विचाररूप
यज्ञ करनेवाले हैं ॥ २८ ॥

मूलम.

अपानेजुव्हतिप्राणंप्राणेषुपानंतथापरे ॥ प्राणा

पानगतीरुध्वाप्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥ अ

परेनियताहाराःप्राणान्प्राणेषुजुव्हति ॥ सर्वेऽ

प्येतेयज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥ यज्ञ

शिष्टाऽमृतभुजोयांतिब्रह्मसनातनं ॥ नायंलो

कोऽस्ययज्ञस्यकुतोऽन्यःकुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

अन्वयः

अपरे नियताहाराः प्राणायामपरायणाः अपाने प्राणं

जुव्हति तथा अपरे एवंभूताः अपानं जुव्हति तथा अ
परे एवंविधाः प्राणापानगतीरुध्वा प्राणान् प्राणेषुजुव्ह
ति एते सर्वे अपि यज्ञविदः यज्ञक्षपितकल्मषाः यज्ञशि-
ष्टाऽमृत भुजः सनातनं ब्रह्म यांति हे कुरुसन्तम अयज्ञ
स्थ अयं लोकः अपि न अस्ति तर्हि अन्यः कुतः ॥ ३१ ॥

टीका.

और केतनेक कर्मयोगी प्राणायाममे निष्ठा करते हैं वै पूरक
रेचक कुंभक भेद करिके तीन प्रकारके हैं वै ऐसेकि नियत याने
प्रमाण है आहार जिसका जैसेकि पेटके दो भाग अन्नसे भरना
तीसरा जलसे भरना चौथा वायुके संचारकेवास्ते खाली रख
ना ऐसे प्रमाणसे आहार करनेवाले औ प्राणायाम कर्ममे तत्पर
जे कर्मयोगी वै केतनेक तौ अपानवायुमे प्राणवायुकोहोमतेहैं
याने पूरक करते हैं तैसेही केतनेक योगी प्राणवायुमे अपानयुक्त
करते हैं याने रेचक करते हैं तैसेही और प्राण औ अपान इन
दोनोंकी गतिको रोकिके प्राणोंको प्राणनहीमे युक्त करते हैं
याने कुंभक करते हैं ये सबही यज्ञके जाननेवाले जो हैं उनको
उन्हीं यज्ञों करिके पाषनष्ट भये हैं औ यज्ञका शेष अमृतरूप
पदार्थ सेवन करते हैं वै सनातन ब्रह्मको प्राप्त होयंगे हे अर्जुन
जो यतनी यज्ञमैसे कोईसीभी यज्ञ नहीं करता है उसको य-
ही लोक सुखकारक नहीं है तौ परलोक तौ कहाँसे होयगा ॥ ३१ ॥

मूलम्.

एवंबहुविधायज्ञावितताब्रह्मणोमुखे ॥ कर्मजान्
विद्वितान्सर्वानेवंज्ञात्वाविमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

अन्वयः

एवं बहुविधाः यज्ञाः ब्रह्मणः मुखे वितताः तान् सर्वान्

कर्मजान् विद्धि एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

टीका.

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमे विस्तारसहित कहे हैं वै सब कर्मसे होती हैं ऐसे जानौ ऐसे जानिके कर्मानुष्ठान करिके संसारसे मुक्त होउगे ॥ ३२ ॥

मूलम.

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥ सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥ तद्विद्विप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥ उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥ यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ॥ येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

अन्वयः

हे परंतप द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः श्रेयान् हे पार्थ सर्वं अखिलं कर्म ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥ तत् ज्ञानं तत्त्वदर्शिनः ज्ञानिनः तत्त्वां उपदेक्ष्यंति त्वं तेषां सेवया प्रणिपातेन परिप्रश्नेन विद्धि ॥ ३४ ॥ हे पांडव यत् ज्ञानं ज्ञात्वा पुनः एवं मोहं न यास्यसि येन अशेषेण भूतानि आत्मनि द्रक्ष्यसि अथो मयि द्रक्ष्यसि ॥ ३५ ॥

टीका.

हे अर्जुन द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि सर्व फलसहित कर्मका अंत ज्ञानहीमे समाप्त होता है अर्थात् कर्म-भी ज्ञानहीके प्राप्ति निमित्त है ॥ ३३ ॥ सो ज्ञान तत्त्वके जाननेवाले ज्ञानी तुमको उपदेश देइंगे आत्मविषयिक ज्ञान

तुमको प्रथममैने कहा अविनाशितुतद्विद्धि इहांसे लैके एपातै
 भिहितासांख्ये इहांतक सोईज्ञान तुम उन ज्ञानी जनौकी सेवा
 करिके औ नम्र व्हेके प्रश्न करो तब वै कहेंगे इहां श्रीकृष्णने यह
 वाक्य केवल जानी जनौकी प्रशंसा निमित्त कहा है क्योंकि उ
 पदेश किया है औ फिरि कहते है कि ज्ञानी उपदेश करेंगे ॥३४॥
 हे पांडुपुत्र जो ज्ञान तुम जानिके फिरि ऐसे मोहको न प्राप्त हो
 उगे जिस करिके आपके आत्मस्वरूपमे सर्वभूत प्राणिमात्रको
 देखौंगे अर्थात् ज्ञानकारतासे प्रकृति भिन्न आत्मा सर्वसमान
 हैं इसपीछे सर्वको मेरेमे देखौंगे जैसेकि प्रवृत्तिसे न्यारे होनेसे
 मेरि समताको प्राप्त होते हैं सो अगाडिकहौंगा ॥ इदंज्ञानमुदा
 श्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥ सूत्रभी कहै है भोगमात्रसाम्यलिं
 गाच्च ॥ श्रुनिभीप्रमाण है तथा विधान्पुण्य पापे विधूयनिरंजनः
 परमंसाम्य मुपैति ॥ इत्यादि प्रमाणोंसे नाम औ रूप करिके
 रहित आत्माकी औ परमात्माके स्वरूपकी समता निश्चय
 होतीहै इसवास्ते प्रकृती करिके रहित सर्व आत्मवस्तु परस्पर
 समान हैं औ परमेश्वरके भीसमान हैं ॥ ३५ ॥

मूलम्.

अपिचेदसिपापेभ्यःसर्वेभ्यःपापकृत्तमः ॥

सर्वज्ञानप्लवेनैववृजिनंसंतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अपि चेत् सर्वेभ्यः पापेभ्यः पापकृत्तमः असि तथापि
 ज्ञानप्लवेन एतत्सर्वं वृजिनं संतरिष्यसि एव ॥ ३६ ॥

टीका.

जो कदाचित् सर्व पापकरनेवालोंसे भी तुम बडे पापकारक

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

१७

होउगे तौभी ज्ञानरूपी नौका करिके समस्त पापसमुद्र-
को तरौगे यह निश्चय जानौ ॥ ३६ ॥

मूलम्.

यथैधांसिसमिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेतथा ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन यथा समिद्धः अग्निः एधांसि भस्मसात् कुरुते
तथा ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते ॥ ३७ ॥

टीका.

हेअर्जुन जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधनको समग्र भस्म करताहै
तैसेही ज्ञानरूप अग्नि सर्व कर्मोंको समग्र भस्म करताहै ॥ ३७ ॥

मूलम्.

नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमिहविद्यते ॥ तत्स्व
यंयोगसंसिद्धःकालेनात्मनिर्विंदति ॥ ३८ ॥

अन्वयः

इह जगति ज्ञानेनसदृशं पवित्रं हि अन्यत् न विद्यते तत्
ज्ञानं कालेन योगसंसिद्धः अत्मनि स्वयंविंदति ॥ ३८ ॥

टीका.

इस जगत्में ज्ञानके सदृश पवित्र करनेवाला और नहींहै
सो ज्ञान कुछ काल करिके निष्काम कर्म करते करते कर्मसि-
द्धिको प्राप्त भया पुरुष आत्मामे आपही प्राप्त होताहै याने
आपहीमे आप पावताहै ॥ ३८ ॥

मूलम्.

श्रद्धावांलुभतेज्ञानंतत्परःसंयतेंद्रियः ॥ ज्ञानंल
ब्ध्वापरांशांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका-

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्चसंशयात्माविनश्यति ॥ ना
यंलोकोऽस्तिनपरोनसुखंसंशयात्मनः ॥ ४० ॥

अन्वयः

तत्परः संयतेंद्रियः श्रद्धावान् ज्ञानं लभते ज्ञानं लब्ध्वा अ-
चिरेण परां शांतिं अधिगच्छति ॥ ३९ ॥ च अज्ञः च अ-
श्रद्धधानः संशयात्मा नरः विनश्यति संशयात्मनः अयं
लोकः न अस्ति न परः लोकः अस्ति न सुखं अस्ति ॥ ४० ॥

टीका.

ज्ञानप्राप्तिमे है मन जिसका औ संयम कियाहै इंद्रियोंका
जिसने ऐसा श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होताहै औज्ञान प्राप्त
वहैके थोड़ेही कालमे परम शांतिको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्ष
प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ औ जो अज्ञानहै औ श्रद्धा रहित है औ
जिसके मनमे संशय है सोविनाशको प्राप्तहोताहै याने संसार-
में भ्रमताहैजिसके मनमे संशय है उसको यहलोक औ पर
लोक औ सुख इनमेसे एकभी प्राप्त नहीं होताहै ॥ ४० ॥

सूत्रम्.

योगसंन्यस्तकर्माणंज्ञानसंछिन्नसंशयं ॥ आत्म-
वंतंनकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥ ४१ ॥ तस्मा
दज्ञानसंभूतंहृत्स्थंज्ञानासिनात्मनः ॥ छित्वैनंसं-
शयंयोगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ॥ ४२ ॥

अन्वयः

हेधनंजय योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयं आत्म-
वंतं कर्माणि न निबध्नन्ति ॥ ४१ ॥ हेभारत तस्मात् अज्ञा-
नसंभूतं हृत्स्थं एनं आत्मनः संशयं ज्ञानासिना छित्वा
योगं आतिष्ठ तदर्थं च उत्तिष्ठ ॥ ४२ ॥

हे धनंजय योग जो परमेश्वराराधनरूप निष्काम कर्म तिसर करिके परमात्माके अर्पण कियेहैं कर्म जिसने औ आत्मज्ञान करिके छेदन कियेहैं संशय जिसने ऐसे स्थिर मनवाले पुरुषको कर्मबंधन नहीं करिसकतेहैं ॥ ४१ ॥ हे भारत इसीवास्ते अज्ञानसे उत्पन्न औ हृदयमे स्थिर ऐसा जो यह मनका संशय तिसको आत्मज्ञानरूप खड्गसे छेदन करिकै कर्मयोगमे स्थित होउ औ उस कर्मयोगकेवास्ते उठौ अर्थात् क्षत्रियका कर्मयुद्ध है इसवास्ते उठिके युद्ध करौ ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यास

योगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथ प्रसादकृतायां श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी भाषा टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ४ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं
च शंससि ॥ यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनि-
श्चितं ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच ॥ हे कृष्ण कर्मणां संन्यासं च पुनः योगं
शंससि एतयोः यत् एकं श्रेयः तत् सुनिश्चितं मे ब्रूहि ॥ १ ॥

टीका.

चौथे अध्यायमेकर्मयोगका ज्ञानाकारत्व पूर्वक स्वरूप भेद

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

औ ज्ञानांशहीका प्रधानत्व कहा औ तृतीय अध्यायमे ज्ञानयो गाधिकारीकोभी कर्म योगहीके अंतरगत आत्मज्ञान है औ वह कर्मयोग सुगम है इसवास्ते कर्महीका श्रेष्ठत्वकहा अब पाचवे अध्यायमे कर्मयोगको आत्मप्राप्तिका साधनत्व औ ज्ञानयोगको शीघ्र आत्मप्राप्ति कारकत्व औ कर्म योगके अंतर्गत अकर्तृत्वका अनुसंधान प्रतिपादन करिके औ उसका मूलजो ज्ञान उसका निरूपे करते हैं अर्जुन श्रीकृष्णजीको पूछते हैं कि हेकृष्ण कर्मका त्यागजो ज्ञान योगसो कहते हो ओं फिर कर्म योगकी भी प्रशंसा करते हो जैसेकि दूसरे अध्यायमे मुमुक्षुको कहाकि प्रथम कर्म करै फिर कर्म करनेसे अंतःकरण गढ़ भये पीछे ज्ञान योग करिके आत्मदर्शनका उपाय करै औ तीसरे तथा चौथे अध्यायोंमे कहाकि ज्ञान योगाधिकार दशाप्राप्तभये कोभी कर्म निष्ठाही श्रेष्ठ है वही ज्ञाननिष्ठाकी निरपेक्षा करिके आत्मप्राप्ति का साधन है ऐसे कर्म निष्ठाकी प्रशंसा करते हो इसवास्ते जो इन दोनोंमे कल्याणकारक होयसो निश्चय हमारेको कहौ ॥१॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासः कर्मयोगश्चानिःश्रेयसकरावुभौ ॥ तयोस्तु कर्मसंन्यसात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच संन्यासः च कर्मयोगः एतौ उभौ निःश्रेयसकरौ स्तः तु तयोः द्वयोः मध्ये कर्मसंन्यासात् कर्मयोगः विशिष्यते ॥ २ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् उत्तर देते हैं कि संन्यास जो कर्मका त्याग

याने ज्ञान और कर्मयोगजो कर्मकरना ये दोनों कल्याण कारक हैं परंतु तिन्ह दोनोंके मध्यमे ज्ञान योगसे कर्मयोगविशेष है ॥ २ ॥

मूलम्.

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥

निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बंधात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो यः न द्वेष्टि न कांक्षति सः निर्द्वन्द्वः नित्य-
संन्यासी ज्ञेयः सहि सुखं बंधात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका.

जो कर्मयोगी उस कर्मयोगके अंतर्गत जो आत्मानुभव उ-
सी करिके तृप्तहुआ भया न कोई पदार्थसे द्वेष करता है और न
किसी पदार्थकी इच्छा करता है सुखदुःखादि द्वंद्वोंसे रहित है उ-
सीको नित्य संन्यासी जानिये सोई पुरुष कर्म करते करते
सुख पूर्वक कर्म बंधनसे छुटता है ॥ ३ ॥

मूलम्.

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ॥

एकमप्यास्थितः सम्यग्बुभयोर्विदते फलम् ॥ ४ ॥

अन्वयः

ये सांख्ययोगौ पृथक् प्रवदंति ते बालाः पंडिताः न एकं
अपि सम्यक् आस्थितः सन् उभयोः फलं विदते ॥ ४ ॥

टीका.

जो सांख्य और योगको अर्थात् ज्ञान और कर्म योगको
न्यारा कहते हैं वे मूर्ख हैं पंडित नहीं हैं क्योंकि दोनोंका फल
आत्म दर्शन है इसवास्ते जो दोनों मैसे शास्त्रप्रमाणसे एकमेभी
दृढ़ रहै तो दोनोंका फल जो आत्मदर्शन है सो पावै ॥ ४ ॥

मूलम.

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

अन्वयः

यत् स्थानं सांख्यैः प्राप्यते तत् योगैः अपि गम्यते अ-
तः यः सांख्यं च योगं एकं पश्यति स एव पश्यति ॥ ५ ॥

टीका.

जो स्थान अर्थात् आत्मदर्शन ज्ञान निष्ठावालोंको प्राप्त होता है सोई कर्म योग निष्ठावालोंको प्राप्त होता है इसीवा-
स्ते जो पुरुष सांख्य औ योग अर्थात् ज्ञानयोग औ कर्म
योगको एकही फल देनेवाले जानिके दोनौको एकही समु-
झता है वही पंडित है ॥ ५ ॥

मूलम.

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्मन्नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो संन्यासः अयोगतः आप्तुं दुःखं तु योग
युक्तः मुनिः नचिरेण ब्रह्म अधिगच्छति ॥ ६ ॥

टीका.

हे महाबाहो यह संन्यास कर्मयोगविना प्राप्त होनेको बड़ा
दुःख है औ कर्मयोगी जो आत्मा मननशील है सो पुरुष अति
अल्पकालमे परमेश्वरकी साम्यताको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम.

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ॥

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः

यः योगयुक्तः सः विशुद्धात्मा स एव विजितात्मा स
एव जितेंद्रियः सः एव सर्वभूतात्मभूतात्मा अतःकर्म
कुर्वन् अपि कर्मभिः नलिप्यते ॥ ७ ॥

टीका.

जो कर्मयोगयुक्त है उसीका मन शुद्ध है कारण कि परमे
श्वर आराधनरूप शुद्धकर्म करता है इसवास्ते शुद्ध मन है औ
उसी कर्ममे मनकीवृत्ति लगीरहती है जिसते अन्यत्र भ्रमती
नही इसीसे मनकोभी जितिलिया है यौ जिसने मन जीता
वह इंद्रियोंको भीजीतिचुका इसते जितेंद्रियभी है औ सर्व
देवादिक भूत प्राणीमात्रके आत्माको अपनेही आत्मा सदृ-
श देखता है इसवास्ते वह कर्मकर्ता भया भीकर्मफलों करिके
लिप्त नही होताहै अर्थात् बंधनको प्राप्त नही होताहै औ अ-
ल्पही कालमे ब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

मूलम्.

नैवाकिंचित्कारोमीतियुक्तोमन्येततत्त्ववित् ॥

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् भ्रजन् गच्छन् स्वपन् श्व-
सन् ॥ ८ ॥ प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् निमिषन् निमिष-
न्नपि ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्तते इति धारयन् ॥ ९ ॥

अन्वयः

तत्त्ववित् युक्तः पुरुषः पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अ-
श्रन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ ८ ॥ प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्
उन्मिषन् निमिषन् अपि इंद्रियाणि इंद्रियार्थेषु वर्तते इति
धारयन् सन् अहं किंचित एव न करोमि इति मन्येत ॥ ९ ॥

टीका.

तत्त्वका जाननेवाला कर्मयोगी पुरुष देखता हुआ सुनता हुआ स्पर्श करता हुआ सुंघत हुआ खाता हुआ चलता हुआ सोता हुआ श्वास लेता हुआ बोलता हुआ छोड़ता हुआ गृहण करता हुआ नेत्र खोलता हुआ औ बंद करता हुआ भी इंद्रियां आप आपके विषयमे वर्तमान होरही हैं ऐसे धारना करता हुआ मै कुछभी नहीं करता हों ऐसे मानता है ॥ ९ ॥

मूलम्.

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यत्काकरोति यः ॥

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

अन्वयः

यः ब्रह्मणि कर्माणि आधाय संगंत्यत्का करोति सः अंभसा पद्मपत्रं इव पापेन न लिप्यते ॥ १० ॥

टीका.

जो पुरुष इंद्रियोंमे कर्मोंका आरोपण करिके औ फलासंग त्यागिके कर्म करता है सो जैसे कमलका पत्र जल करिके लिप्त नहीं होता है तैसे कर्मकर्तृत्व अहंकाररूप पाप करिके लिप्त नहीं होता है इहां कोई आचार्य ब्रह्म शब्दसे ईश्वरके विषे कर्मधारण करना ऐसा अर्थभी कहते हैं सो नहीं इहां ब्रह्मनामप्रकृतीका है ममयोनिर्मद्वद्ब्रह्म इत्यादि प्रमाणोंसे अर्थात् प्रकृती विकार देह औ देह संबंधी इंद्रियां कर्म करनेवाली हैं ॥ १० ॥

मूलम्.

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥

योगिनः कर्मकुर्वतिसंगंत्यत्कात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

अन्वयः

योगिनः संगंत्यत्का कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैः इंद्रियैः

अपि आत्मशुद्धये कर्म कुर्वति ॥ ११ ॥

टीका.

कर्मयोगी पुरुष स्वर्गादि प्राप्तिरूप फलसंग त्यागिके शरीर मन बुद्धि औ केवल इंद्रियों करिकेभी आत्मशुद्धीकेवास्ते अर्थात् आत्मगतप्राचीन कर्मबंध छूटनेकेवास्ते कर्म करतेहैं ॥ ११ ॥

मूलम.

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीं ॥

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबद्धयते ॥ १२ ॥

अन्वयः

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा नैष्ठिकीं शांतिं आप्नोति अयुक्तः कामकारेण फले सक्तः सन् निबद्धयते ॥ १२ ॥

टीका.

आत्मज्ञान प्राप्तिकेवास्ते कर्म करनेवाला कर्मफलको त्यागिके मनकी स्थिरतारूप शांतिको प्राप्त होताहै अर्थात् आत्मानुभवको प्राप्त होताहै औ जौ आत्मदर्शन विमुख है सो कर्मफलकी कामना करिके फलासक्त हुआ भया बंधनको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

मूलम.

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

अन्वयः

वशी देही नवद्वारे पुरे सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्य न कुर्वन् कारयन् सन् सुखं एव आस्ते ॥ १३ ॥

टीका.

अब देहाकार परिणामको प्राप्तिभई जो प्रकृति उसमे कर्तृ-

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

१०६

त्वका स्थापन कहते हैं जिसने चित्त वश किया है ऐसा देही या-
ने जीवसो नवहैं द्वार जिसके ऐसा यह पुरुष अर्थात् देहसो इस
देहमे सर्वकर्मका मन करिके स्थापन करिके नवह करता औ
नकारवाता भया सुखपूर्वक रहता है अर्थात् कर्म प्राचीन देहसं-
स्कारसे हैं कुछ आत्मस्वरूप संबंधि नहीं हैं इसवास्ते देहसंस्का-
रिक कर्म देहसंबंधी इंद्रियोंके विषे हैं ऐसा मनकरिके जान-
ता है सो अकर्तृत्वसे सुखी है ॥ १३ ॥

मूलम्.

नकर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

अन्वयः

प्रभुः अकर्मवश्यः आत्मा अयं लोकस्य कर्तृत्वं न सृज-
ति न कर्माणि सृजति न कर्मफलसंयोगं सृजति किंतु स्व-
भावः प्रवर्तते ॥ १४ ॥

टीका.

अब साक्षात् आत्माया स्वरूप कहते हैं प्रभु अर्थात् कर्मकी
वश्यतामे नहीं याने स्वाभाविक स्वरूपमे स्थित ऐसा जो यह
आत्मा सो देव पशु मनुष्य स्थावरादिरूप करिके प्रकृतिसंसर्गसे
वर्तमान जो लोक तिसका देवादिक असाधारण कर्तृत्व नहीं
उत्पन्न करता है औ न उन देवादिकोंके असाधारण कर्मों
को उत्पन्न करता है औ न उन कर्मोंसे उत्पन्न देवादिक फलसंयो-
गको उत्पन्न करता है क्यों कि स्वभाव याने प्रकृतिवासना ही प्र-
वर्त होरही है अर्थात् अनादिकालसे प्रवृत्त पूर्व पूर्वकर्म जनित
देवाद्याकार प्रकृति संसर्गकृत उन उन शरीरोंके अभिमानसे उ-
त्पन्न जो वासना उस वासनाका किया हुआ यह कर्तृत्वादि-

कसर्व है कुछ शुद्धचैतन्यरुत नहीं है ॥ इहां कोईएक ऐसा अर्थ करते हैं कि इस जीवके कर्त्तापनको औ कर्मोंको औ कर्मफलसंयोगको परमात्मा नहीं उत्पन्न करता है क्योंकि जीवनका स्वभावही बर्त्तमान है परंतु प्रकरण देखिके जो उचित होइ सो ग्रहण करना ॥ १४ ॥

मूलम्.

नादत्तेकस्यचित्पापंनचैवसुकृतंविभुः ॥ अज्ञानेनावृतंज्ञानंतेनमुह्यंतिजंतवः ॥ १५ ॥

अन्वयः

अयं विभुः कस्यचित् पापं न आदत्ते च सुकृतं एव न आदत्ते अज्ञानेनज्ञानं आवृतं तेन जंतवःमुह्यंति ॥ १५ ॥

टीका.

यह शुद्धचैतन्य विभु याने परिपूर्ण अर्थात् संपूर्ण इच्छारहित है इसवास्ते कोइका पापयाने पापजनित दुःखको लेता नहीं औ किसीकेसुकृतयाने सुकृतजन्यसुखकोभीलेता नहीं अर्थात् किसीकेभी सुखको अथवा दुःखको दूरनही करता है जैसेकिसंबंध हेतु करिके पुत्रादिकोंको अपने जानिके उनके दुःख दूर होने केवास्ते उनका पाप लेता नहीं और प्रतिकूलताके हेतु करिके किसी शत्रुके सुख नाशकरनेकेवास्ते उसका सुकृतभी लेता नहीं इसवास्ते यह आत्मा किसीका संबंधी अथवा प्रतिकूल भी नहीं है क्योंकि यह सर्व वासनाका कियाभया है अहोस्वभावकी ऐसी क्या विपरीत वासना उत्पन्न होती है सो कहें हैं कि अज्ञान करिके ज्ञान आच्छादित होरहाहै इसवास्ते जीव मोहको प्राप्त होते हैं अर्थात् अज्ञान जो ज्ञानके विरोधीपूर्वसंचित कर्म वै कर्म आपके फल प्रकट करनेकेवास्ते इसके ज्ञानको

आछादनकरि लेते हैं याने ज्ञानको संकुचित करते हैं उन्हीं क
 मौं करिके देवादिक देहोंका संयोग होता है औ जो जो देहें प्रा
 प्त होती हैं उन्हीं उन्हीं शरीरोंके अभिमानरूप मोह प्राप्त होता
 है उसीसे देहाभिमान वासना औ उसीकी उचित कर्मवासना
 औ वासनासे विपरीत देहाभिमान औ कर्मका आरंभ होता है ॥ १५ ॥
 इहां दूसरे कोई आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं कि परमात्मा किसी-
 का पाप औ किसीका सुकृत भी नहीं गृहण करता है तौ भक्त
 जन पूजनरूप यज्ञ दान नप होम इत्यादिक सुकृत क्यों अर्प
 ण करते हैं इसपर कहते हैं कि उनका ज्ञान अज्ञान करिके आच्छा
 दित है उसवास्ते वै अज्ञानसे मोहे भये कहते हैं कि यह कर्म ह-
 मने किया औ करवाया सो भगवानके अर्पण होय इस प्रकार-
 के अर्थमे पत्रंपुष्पं फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्यु
 पहतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिद
 दासियत् ॥ यत्पस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणं ॥ इत्यादिक वा
 क्योंसे विरोध आता है इसवास्ते प्रथम जो अर्थ किया सोई
 श्रेष्ठ है ऐसा निश्चय होता है ॥ १५ ॥

मूलम्.

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥ तेषामादि
 त्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं ॥ १६ ॥

अन्वयः

वेषां आत्मनः ज्ञानेन तत् अज्ञानं नाशितं तेषां तत् प
 रं ज्ञानं आदित्यवत् प्रकाशयति

टीका.

जिनका आत्मसंबंधी ज्ञान करिके वासना जनित अज्ञान न
 ष्ट होता है तिनका वह सौभाविक श्रेष्ठ ज्ञान सूर्यतुल्य सर्वप्रकाश
 करता है क्योंकि प्रथम भी कहा है सर्वज्ञान भूवेनैव वृजिनं संतरिष्य

सि ॥ ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥ नहिज्ञानेनस
दृशंपवित्रमिहविद्यते ॥ इत्यादिक इहां तेषां याने तिनौका कह
नेमे भगवानने जीवोंका बहुत्व स्पष्टकहाप्रथम नत्वेवाहं जातु
नासंनत्वंनेमेजनाधिपाःइस कारणमे जो बहुत्व कहाथा उस
में कोई एक शंका करतेथे कि बहुत्व उपाधिकृत है अब इहां मु-
क्तदशामेभी बहुत्व देखाया सो मुक्तदशामेतो उपाधिका गंध-
भी नहीं है जहां उपाधिहै वहां मुक्तत्वका संभव नहीं होता है
इसवास्ते जीव सौभाविक अनेक हैं ऐसा निश्चय भया ॥ १६ ॥

मूलम्.

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥

गच्छंत्यपुनरावृत्तिंज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

अन्वयः

तद्बुद्ध्यः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः ज्ञाननिर्धूत
कल्मषाः अपुनरावृत्तिंगच्छन्ति ॥ १७ ॥

टीका.

जो आत्मज्ञान कहा उसीमे जिनकी बुद्धिहै औ उसीमे म-
न है उसीमे निष्ठा है अर्थात् उसी अभ्यासमे निरत हैं औ
उसीको श्रेष्ठ गृह जानते हैं ऐसे अभ्यास किये भये ज्ञान क-
रिके नष्ट भये हैं पाप जिनके ऐसे पुरुष संसारसे मुक्त व्हाके
फिरि जन्म नहीं लेते हैं ॥ १७ ॥

मूलम्.

विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणेगविहस्तिनि ॥

शुनिचैवश्वपाकेचपंडिताःसमदर्शिनः ॥ १८ ॥

अन्वयः

विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणे च गवि च हस्तिनि च शुनि

च श्वपाके पंडिताः समदर्शिनः संति ॥ १८ ॥

टीका.

विद्या औ विनय करिके संयुक्त जो ब्राह्मण औ गाइ हाथि कुत्ता औ चांडाल इनमे पंडितलोग आत्माकौ समान देखते हैं क्योंकि यह विषमतातौ शरीरौमे है आत्मातौ ज्ञानाकार से सर्व समान हैं ॥ १८ ॥

मूलम्.

इहैवतैर्जितःसर्गोयेषांसाम्येस्थितंमनः ॥

निर्दोषंहिसमंब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः ॥ १९ ॥

अन्वयः

येषां मनः साम्ये स्थितं तैः इह एव सर्गः जितः हि यस्मात् ब्रह्म निर्दोषं समं अस्ति तस्मात् ते ब्रह्मणि स्थिताः ॥ १९ ॥

टीका.

जिनकामन पूर्वोक्त समतामें स्थित है तिनोंने इसी लोकमे रहिके संसार जीता है क्योंकि ब्रह्मप्रकृति संसर्ग रहित सर्वमे समहै इसीवास्ते जिनकामन समतामे है वै ब्रह्मप्राप्ति निमित्त स्थितयाने मुक्त हैं ॥ १९ ॥

मूलम्.

नप्रहृष्येत्प्रियंप्राप्यनोद्विजेत्प्राप्यचाप्रियम् ॥

स्थिरबुद्धिरसंमूढोब्रह्मविद्ब्रह्मणिस्थितः ॥ २० ॥

अन्वयः

प्रियंप्राप्य न प्रहृष्येत् च अप्रियं प्राप्य न उद्विजेत् एवं भूतः स्थिरबुद्धिः असंमूढः ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

टीका.

अब जिसप्रकार कणिके अवस्थित कर्मयोगको समदर्शन रूप ज्ञानका फल होता है सो कहते हैं प्रियवस्तुपायके हर्षित होय औ अप्रिय पाइके घबडाइनही ऐसा कर्मयोगी स्थिर बुद्धि अर्थात् स्थिर जो आत्मा उसमे है बुद्धि जिसकी इसी सेवह मूढनही इसीसे ब्रह्मका ज्ञाता है औ ब्रह्म प्राप्तिकेवास्ते स्थित है ॥ २० ॥

मूलम्.

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्माविंदत्यात्मनियत्सुखं ॥
सब्रह्मयोगयुक्तात्मासुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

अन्वयः

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा आत्मनियत् सुखंतत् विंदति
सःब्रह्मयोगयुक्तात्मा अक्षयं सुखं अश्नुते ॥ २१ ॥

टीका.

बाह्यस्पर्श अर्थात् आत्माके सेवाय जो और इंद्रियोंको विषय है उनमे जिसकामन नही वह आत्मामे जो सुख है सो पावता है सोई ब्रह्मप्राप्तिके अभ्यासमे मन लगायेहुये अक्षय सुख अर्थात् मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥

मूलम्.

येहिसंस्पर्शजाभोगादुःखयोनयएवते ॥
आद्यंतवंतःकौंतेयनतेशुरमतेबुधः ॥ २२ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय ये संस्पर्शजाः भोगाः ते दुःखयोनयः आद्यंत
वंतः एव तेषु बुधः न रमते ॥ २२ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो विषय इंद्रिय स्पर्श जन्य भोग है वै दुःख

११२

गीतावाक्यार्थबोधिनी भषाटीका.

के कारण औ आद्यंतवान् हैं अर्थात् होते जाते रहते हैं याने
अल्प सुखदायक हैं इसीवास्ते तिन भोगों मे ज्ञानीजन प्री-
ति नही करते हैं ॥ २२ ॥

मूलम्.

शक्नोतीहैवयःसोढुंप्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥

कामक्रोधोद्भवंवेगंसयुक्तःससुखीनरः ॥ २३ ॥

अन्वयः

यःशरीरविमोक्षणात् प्राक् कामक्रोधोद्भवं वेगं सोढुंश-
क्नोति सः नरः इह एव युक्तः सन् सुखी स्यात् ॥ २३ ॥

टीका.

जो मनुष्य शरीर त्यागसे प्रथम काम औ क्रोधका वेग
सहनेको समर्थ होता है सोई मनुष्य इसी लोकमे योग-
युक्त भया हुआ सुखी होता है ॥ २३ ॥

मूलम्.

योंऽतःसुखोंतरारामस्तथांतज्योतिरेवयः ॥

सयोगीब्रह्मनिर्वाणंब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

अन्वयः

यः अंतःसुखः अंतरारामः तथा यः अंतज्योतिः सः
एवयोगी ब्रह्मभूतः सन् ब्रह्म निर्वाणं अधिगच्छति ॥ २४ ॥

टीका.

जो आत्माहीमे सुखी औ आत्माहीमे रमिरहा है औ आ-
त्माहीका प्रकाश याने आत्माहिकाज्ञान है जिसको सोईऐसा
योगिब्रह्मप्राप्तिकेउपायमे लगा हुआ मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

मूलम्.

लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयःक्षीणकल्मषाः ॥

छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

अन्वयः

छिन्नद्वैधाः यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः क्षीणकल्मषाः

ऋषयः ब्रह्मनिर्वाणं लभन्ते ॥ २५ ॥

टीका.

शीत उष्ण सुख दुःख लाभ अलाभ इत्यादिक जिनके नष्ट भये हैं औ जिनका मन आत्मविषयमें ही लगा है औ सर्वभूत प्राणीमात्रके हितमें निरत हैं इत्यादिकौं करिके जिनके पाप नष्ट भये हैं ऐसे ऋषी मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

मूलम्.

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥

अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनां ॥ २६ ॥

अन्वयः

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसां विदितात्मनां

ब्रह्मनिर्वाणं अभितः वर्तते ॥ २६ ॥

टीका.

जे पुरुष काम औ क्रोधकरिके रहित हैं औ ब्रह्मप्राप्तिके वा- स्ते यत्न करिरहे हैं औ चित्तको भी अपने वशमें राखते ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषोंको मोक्ष सर्व तरहसे त्वमान ही है ॥ २६ ॥

मूलम्.

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरेभ्रुवोः ॥ प्रा

णापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥

यतेंद्रियमनो बुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥ विगते

च्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

अन्वयः

बाह्यान् स्पर्शान् बहिः कृत्वा च चक्षुः एव भ्रुवोः अंतरे कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ प्राणाऽपानौ समौ कृत्वा यः मुनिः यतेंद्रियमनोबुद्धिः मोक्षपरायणः विगतेच्छाभयक्रोधः सः सदा मुक्तः एव ॥ २८ ॥

टीका.

बाह्य इंद्रियोंके जो विषय तिनको त्यागिके नेत्रोंकी दृष्टि भृकुटीके मध्यभागमें करिके औ नासिकाहीमें संचार करै ऐसे प्राणापान अर्थात् श्वासोच्छ्वासको धीरे धीरे सम चलायकरिके जो मननशील पुरुष इंद्रिय मन बुद्धि इनको वश करै मोक्षहीमें मन लगावै औ इच्छा भय क्रोध इनसे रहित होय सो सर्वकालमें मुक्तही है ॥ २७ ॥ २८ ॥

मूलम्.

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वामांशांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

अन्वयः

यज्ञतपसां भोक्तारं सर्वलोकमहेश्वरं सर्वभूतानां सुहृदं मां ज्ञात्वा शांतिं ऋच्छति ॥ २९ ॥

टीका.

अतिसुगम उपाय कहते हैं. यज्ञ औ तपका भोक्ता सर्व लोकोंके ईश्वरोंकाभी ईश्वर (तमीश्वराणां परममहेश्वरं. अर्थ ईश्वरों काभी ईश्वर होय उसको महेश्वर कहते हैं) औ सर्व भूत प्राणी मात्रनका सुहृद औसा मेरेको जानिके शांतिको प्राप्त होता है २९

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासो

गोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसा
द कृतायां श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी भाषाटी-
कायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥६॥ ॥६॥

मूलम्.

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

अन्वयः

यः कर्मफलं अनाश्रितः कार्यं कर्म करोति सः संन्यासी
स च योगी यः निरग्निः च यः अक्रियः सः संन्यासी न
भवाति च योगी न भवाति ॥ १ ॥

टीका.

कर्मयोगतौ कहा अब ज्ञानकर्मसाध्य आत्मदर्शनरूप यो
गाभ्यस कहते हैं, तहां कर्मयोगकी अपेक्षारहित योगसाधनत्व-
को दृढ करनेको ज्ञानाकार कर्मयोगको योगशिरोमणि कहते हैं.
अनाश्रितः इत्यादि करिके जो पुरुष कर्मके स्वर्गादिप्राप्तिरूप
फलका आश्रय न करिके केवल ईश्वराराधनरूप करनेके योग्य
कर्म अर्थात् वर्णाश्रमयोग्य कर्म करता है सोई संन्यासी औ सो
ई योगी है औ जो अग्निकार्यको त्यागता है औ जो कर्म त्या-
गता है सो संन्यासीभी नहीं औ योगीभी नहीं. इहां एक अभि-
प्राय औरभी दीखता है कि, कलियुगमें संन्यासका निर्वाह होता
नहीं घर छोड़िके मठ बांधते हैं स्त्री विवाहते नहीं तो व्यभिचा-
री होते हैं छोकरींकी जगह शिष्य कारते हैं औरभी सामग्री गृह-
स्थोंसे अधिक राखिके केवल प्रपंचनिरत होते हैं इसवास्ते भ-
गवाने कर्मफल त्यागिके कर्म करनेवालेहीकी संन्यासी कहा

है औ अग्निकर्म तथा क्रियाके त्यागनेको निषिद्ध किया है ॥१॥

मूलम्.

यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपांडव ॥

नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगीभवतिकश्चत ॥ २ ॥

अन्वयः

हे पांडव यं संन्यासं इति प्राहुः त्वं तं योगं विद्धि हिय
स्मात् असंन्यस्तसंकल्पः कश्चन योगी न भवति ॥ २ ॥

टीका.

कहा जो कर्मयोग उसमें ज्ञानभी है ऐसा कहते हैं. हे पां
दुपुत्र अर्जुन जिसको संन्यास कहते हैं अर्थात् ज्ञानयोग याने
आत्मनिश्चयज्ञान कहते हैं तुम उसीको कर्मयोगभी जानौ.
क्योंकि संकल्पका त्याग अर्थात् प्रकृतिजन्यदेहके विषे आत्म
भ्रान्तिका त्याग कियेविना कोईभी योगी नहीं होताहै. तात्पर्य.
कर्म करिके ईश्वरार्पण करना वही संन्यास औ वही योग है
यहीसे संन्यासी औ योगी होता है ॥ २ ॥

मूलम्.

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः

योगं आरुरुक्षोः मुनेः कर्म कारणं उच्यते तस्य एव यो
गारूढस्य शमः कारणं उच्यते ॥ ३ ॥

टीका.

जो योग याने आत्मदर्शन उसकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवा
ला हैं उसको कर्मही कारण है औ वही जब योगारूढ भया या
ने आत्मदर्शनको प्राप्त भया तबतक कर्मही करना योग्य है सो

अगाडी कहेंगे. प्रयाणकालेमनसाचलेनभक्त्यायुक्तोयोगबलेन
चैव इत्यादि ॥ ३ ॥

मूलम्.

यदाहिनेन्द्रियार्थेषुनकर्मस्वनुषज्जते ॥ सर्वसंक
ल्पसंन्यासीयोगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः

यदा इंद्रियार्थेषु च तत्संबंधिकर्मसु न अनुषज्जते तदा
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढः उच्यते ॥ ४ ॥

टीका.

अब योगारूढ कब होयगा सो कहते हैं. जब इंद्रियोंके वि
षय औ उनसंबंधी कर्मोंमें न आसक्त होय तब सर्व संकल्पों
का त्याग किया है जिसने याने वासनारहित योगारूढ होता
है इसवास्ते जो योगारूढ होना चाहता है सो प्रथम जबलौ
विषयवासना है तौलौ कर्मही करना ॥ ४ ॥

मूलम्.

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥ आ
त्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

अन्वयः

आत्मना आत्मानं उद्धरेत् आत्मानं न अवसादयेत् हि
यतः आत्मा एव आत्मनः बंधुः आत्मा एव आमनः रिपुः ५

टीका.

अब यह कहते हैं कि कैसेभी करिके मुक्तिसाधन करना यो-
ग्य है. मनकरिके आपका उद्धार करना औ आपका घात या
ने जिसते अधोगती होय सो न करना क्योंकि यह मनही आ
पना मित्र है औ यही शत्रु है. तात्पर्य कि जब विषयरहित

ईश्वरपरायण भया तब मित्र है औ विषयासक्त शत्रु है ॥५॥

मूलम.

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

अन्वयः

येन आत्मना एव आत्मा जितः तस्य आत्मनः आत्मा
बंधुः तु अनात्मनः आत्मा एव शत्रुवत् शत्रुत्वे वर्तेत ॥ ६ ॥

टीका.

जिसने आपके मनको आपही जीता है वह मन उसका
बंधु है अर्थात् मित्र है औ जो अजितेंद्रिय है उसका वही म
न शत्रुसरीखा शत्रुत्वमें वर्तमान रहता है ॥ ६ ॥

मूलम.

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥ शी

तोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

अन्वयः

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः जितात्मनः
प्रशांतस्य आत्मा परं समाहितः अस्ति ॥ ७ ॥

टीका.

अब योगारंभके योग्य अवस्था कहते हैं शीत उष्ण सुख
दुःख मान औ अपमान इन विषयोंमें मन जीतनेवाले शांत
का आत्मा उत्कृष्ट औ सावधान रहता है ॥ ७ ॥

मूलम.

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ॥ यु

क्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

अन्वयः

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः विजितेंद्रियः समलोष्ठा
इमकांचनः एवं भूतः योगी युक्तः इति उच्यते ॥ ८ ॥

टीका.

आत्मविषयिक ज्ञानको ज्ञान कहते हैं औ उसआत्माको प्र-
कृतिसे विलक्षण जानै उसको विज्ञान कहते हैं इन दोनों ज्ञान
विज्ञानकरिके तृप्त होय मन जिसका औ कूटस्थ याने देवादि-
क शरीरोंमें आत्मा समान है ऐसा जानिके निर्विकार इसीसे
जितेंद्रिय औ जितेंद्रित्वसे निरपेक्ष निरपेक्षत्वसे समान है
ठीकरा पाषाण औ सुवर्ण जिसके ऐसा योग युक्त कहाता है अ-
र्थात् आत्मदर्शनरूप योगाभ्यासके योग्य कहाता है ॥ ८ ॥

मूलम्.

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥ साधु
ष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

अन्वयः

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु च साधुषु च पा-
पेषु अपि यः समबुद्धिः सः विशिष्यते ॥ ९ ॥

टीका.

सुहृद जो स्वभावहीसे वयस् वगैरेभी न देखै औ हित करै
सो सुहृद औ जो समान वयस् देखिके परस्पर प्रीतिसे हित करै
सो मित्र औ प्रीतिवैरसे तथा हितअहितसे रहित होयसो उदा-
सीन औ जो जन्मसे प्रीति वैरहिताहितसे रहितसो मध्यस्थ जो
जन्मसे अहितकारक सो द्वेष्य जो जन्मसे हितकारक सो बंधु
जो धर्मशील सो साधु पाप करनेवाला सो पाप इन सबके विषे
समबुद्धि कारणकि जिसको आत्मव्यतिरिक्त किसीसेभी प्र-

योजन नहीं सो किसीसे वैर औ प्रीति क्यों करैगा वह तौ केवल आत्माहीमें तृप्त है सो यह योगी मुक्तनमेंभी श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

मूलम.

योगीयुंजीतसततमात्मानंरहसिस्थितः ॥ ए
काकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

अन्वयः

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः योगी रहसि
स्थितः सन् सततं आत्मानं युंजीत ॥ १० ॥

टीका.

अकेला औ चित्त तथा मनको वश कियेहुये औ आत्मा
विन औरवस्तुकी आशारहित तैसेही आत्मव्यतिरिक्त वस्तु
विषे ममतारहित ऐसा योगी याने कर्मयोगी एकांतमें बैठा हु-
आ निरंतर नित्यप्रति आत्मस्वरूप चिंनवन कियाकरै ॥ १० ॥

मूलम.

शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यस्थिरमासनमात्मनः ॥ ना ॥
त्युच्छ्रितंनातिनीचंचैलाजिनकुशोत्तरं ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रंमनःकृत्वायतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥ उप
विश्यासनेयुंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

अन्वयः

शुचौ देशे न अति उच्छ्रितं न अति नीचं चैलाजिन-
कुशोत्तरं स्थिरं आत्मनः आसनं प्रतिष्ठाप्य तत्र आसने
उपविश्य एकाग्रं मनः कृत्वौ यतचित्तेन्द्रियक्रियः आत्म
विशुद्धये योगं युंज्यात् ॥ १२ ॥

टीका.

अब योगाभ्यासमें आसन नियम कहते हैं. जैसे कि पवित्र

स्थानमें न अतिउँचा न नीचा औ प्रथम कुशासन तिसपर मृग इत्यादिका चर्म तिसपर वस्त्र ऐसा अचल आपका आसन स्थापित करिके तिसपर बैठिके एयाग्र मन करिके चित्त औ इंद्रियोंकी क्रिया स्ववश कियेहुये आत्माका संसारबंध छुट नेकेवास्ते योगाभ्यास करै ॥ १२ ॥

मूलम्.

समंकायशिरोग्रीवंधारयन्नचलंस्थिरम् ॥ संप्रे

क्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

प्रज्ञांतात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ॥ म

नःसंयम्यमच्चित्तोयुक्तआसीतमत्परः ॥ १४ ॥

अन्वयः

कायशिरोग्रीवं अचलं स्थिरं समं धारयन् सन् स्वं नासिकाग्रं संप्रेक्ष्य च दिशः अनवलोकयन् सन् प्रज्ञांतात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः मच्चित्तः सन् मनः संयम्य युक्तः मत्परः आसीत् ॥ १३ ॥ १४ ॥

टीका.

अब बैठनेका नेम कहते हैं. मध्यशरीर मस्तक औ ग्रीवा इनको अचल स्थिर औ सम धारण कियेभये आपकी नासिका के अग्रभागपर दृष्टिको राखिके कोईभी दूसरी दिशाँको न देखे भये प्रज्ञांतचित्त भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतयुक्त सो ब्रह्मचर्य तीन प्रकारका है १ उपकुर्वाणक जो वेदाभ्यास करनेपर्यंतही स्त्रीका त्याग २ नैष्ठिक जो मरणपर्यंत स्त्रीका त्याग औ ३ एकपत्नी व्रतरूप इनमेंसे अधिकारप्रमाण कोईसैमेंभी स्थित औ चित्त में रेमें लगायेभये मनको संयममें राखिके वह आत्मनिष्ठ पुरुष मेरेहीको चिंतवन करताभया स्थित होय ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्.

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥ शान्तिं
निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

अन्वयः

नियतमानसः योगी सदा एवं आत्मानं युंजन् सन्
निर्वाणपरमां मत्संस्थां शान्तिं अधिगच्छति ॥ १५ ॥

टीका.

मनको नियममें किया है जिसने ऐसा योगी सर्वकाल-
में ऐसे मेरेमें मन लगाता हुआ मोक्षप्रद औ मेरेमें स्थित
ऐसी शान्तिको प्राप्त होयगा ॥ १५ ॥

मूलम्.

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्रतः ॥ न
चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥ युक्तस्व-
प्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अत्यश्रतः योगः न अस्ति च एकांतमनश्रतः यो-
गः न अस्ति च अतिस्वप्नशीलस्य योगः न अस्ति च अ-
ति जाग्रतः योगः न अस्ति किंतु युक्ताहारविहारस्य कर्मसु
युक्तचेष्टस्य युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य दुःखहा योगः भवति ॥ १६ ॥

टीका.

अब योगीके आहारादिकका नियम कहते हैं अति भोजन
करनेवालेका योग सिद्ध नहीं होता है औ केवल भोजन न क-
रनेवालेकाभी योग सिद्ध नहीं होता है औ बहुत जागनेवालेका

तथा बहुत सोवनेवालेकाभी योग सिद्ध नहीं होता है क्योंकि जो युक्तिप्रमाण आहार करता है जैसेकि दो भाग पेटके अन्नसे भरे तिसरा भाग जलसे भरे और चवथा पवनके संचारके वास्ते खाली राखे तौ योगाभ्यास होसकता है ऐसेही विहार याने स्त्री प्रसंग इसकोभी युक्तिसे करे जैसेकि प्रथम कहा कि ब्रह्मचर्यमें रहना तौ (ऋतौ भार्यामुपेयात्) इसवाक्य प्रमाणसे ऋतुकालमें आपहीकी स्त्रीसे प्रसंग करना यह एक प्रकारका ब्रह्मचर्य है जो कोई शंका करेकि योगिको स्त्रीप्रसंग वर्ज्य है इहां विहार शब्दका दूसरा अर्थ करौ तब उत्तर है कि प्रथमभी कहिआए हैं कि (इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ कर्मैन्द्रियाणि मनसानि च मयारभन्तेऽर्जुन ॥ कर्मैन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते) इत्यादि औ अगाडीभी कहेंगे कि (अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमतां) तौ जो स्त्रीप्रसंग योगी न करैगा तौ उसके कुलमें जन्म लेनेका संभव कैसे होयगा इसवास्ते इहां विहार शब्दसे स्त्रीप्रसंगही अर्थ है सो प्रमाणसे करे याते बहुत करनेसे क्षय इत्यादिक रोग होते हैं तौभी योग न होसकैगा औ केवल न करनेसे उसका स्मरण रहैगा तौभी योग न वहैसकैगा इसवास्ते युक्तिकाही करना और कर्मोंमेंभी युक्तिकी चेष्टा करना जो थोड़े परिश्रमसे काम होय तौ बड़ा परिश्रम न करना इसपर भागवतका प्रमाण देते हैं (सिद्धेऽन्यथार्थेन यते तत्र परिश्रमं तत्र समीक्ष्यमाणः) इति द्वितीय स्कंध श्लोक ऐसेही प्रमाणसे सोवना औ जागना ऐसी रीत से चलनेवालेका दुःखनाशक योग होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

मूलम्.

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥ निः

स्पृहः सर्वकामेष्वप्युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

अन्वयः

यदा आत्मनि एव विनियतं चित्तं अवतिष्ठते तदा सर्व-
कामेभ्यः निःस्पृहः सन् युक्तः इति उच्यते ॥ १८ ॥

टीका.

जब आत्महीमें अति निश्चल चित्त जिसका स्थित हो
ता है तब वह मनुष्य सर्व कामनोंसे निस्पृह भयाहुआ युक्त
कहाता है ॥ १८ ॥

मूलम्.

यथादीपोनिवातस्थोर्नेङ्गतेसोपमास्मृता ॥

योगिनोयतचित्तस्ययुञ्जतोयोगमात्मनः ॥ १९ ॥

अन्वयः

यथा निवातस्थः दीपः न इङ्गते तथा यतचित्तस्य यो-
गं युञ्जतः योगिनः आत्मनः सा उपमा स्मृता ॥ १९ ॥

टीका.

जैसे निवातस्थानमें स्थित दीपक हालता डोलता नहीं
तैसे वश है चित्त जिसका ऐसे योग करनेवाले योगीके आ-
त्मत्वरूपकी सोई उपमा कही है ॥ १९ ॥

मूलम्.

यत्रोपरमतेचित्तंनिरुद्धंयोगसेवया ॥ यत्रचैवा
त्मनात्मानंपश्यन्नात्मनितुष्यति ॥ २० ॥ सु
खमात्यंतिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियं ॥ वेत्ति
यत्रनचैवायंस्थितश्चलतितत्त्वतः ॥ २१ ॥ यं
लब्ध्वाचापरंलाभंमन्येतेनाधिकंततः ॥ यस्मिं
स्थितोनदुःखेनगुरुणाऽपिविचाल्यते ॥ २२ ॥
तंविद्याद्दुःखसंयोगवियोगंयोगसंज्ञितं ॥ सनि
श्रयेनयोक्तव्योयोगोनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

अन्वयः

योगसेवया निरुद्धं चित्तं यत्र उपरमते च यत्र आत्म-
ना आत्मानं पश्यन् सन् आत्मनि एव तुष्यति ॥ २० ॥
यत्र यत् अतीन्द्रियं बुद्धिग्राह्यं आत्यंतिकं सुखं तत् वेत्ति
च यत्र स्थितः अयं तत्त्वतः न एव चलति ॥ २१ ॥
यं लब्ध्वा अपरं लाभं ततः अधिकं न मन्यते च यस्मि
न् स्थितः गुरुणा अपि दुःखेन न विचाल्यते ॥ २२ ॥
तं दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितं विद्यात् संयोगः अ
निर्विण्णचेतसा निश्चयेन योक्तव्यः ॥ २३ ॥

टीका.

योग सेवनके कारणसे सर्वत्र मिषयोंसे रोकभया चित्त
जहां याने जिस योगमें विश्रामके प्राप्त होय औ जिसमें बुद्धि
करिके आत्माको देखताहुआ याने निश्चय करता भया आ-
त्माहीमें संतोषको प्राप्त होय ॥ २० ॥ औ जिसमें जो सुख इं-
द्रियोंके न अनुभवमें आवै केवल आत्मबुद्धिहीकरिके गृहण
करनेमें आवै उस सुखको जानै है औ जिसमें स्थित वहैके फिरि
आत्मस्वरूपसे चलायमान न होय ॥ २१ ॥ जिस योगरूप
लाभको प्राप्त वहैके फिरि दूसरे लाभको इसते अधिक न मानै
औ जिस योगमें स्थित वहैके बड़े भारीभी दुःखकरिके चला-
यमान न होय ॥ २२ ॥ उसीको दुःखके संयोगका वियोग का
रक योगसंज्ञिक कहते हैं अर्थात् वही योग दुःखनाशक ज्ञान
रूप है उसको जानै वही योगी निर्विकल्पचित्तकरिके अर्थात्
उत्साहयुक्त निश्चयकरिके अभ्यास करनेयोग्य है ॥ २३ ॥

मूलम्.

संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वासर्वानशेषतः ॥ म

नसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥ शनैः
शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥ आत्मसंस्थं मनः
कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ २५ ॥

अन्वयः

संकल्पप्रभवान् सर्वान् कामान् अशेषतः मनसा एव
त्यक्त्वा इंद्रियग्रामं समंततः विनियम्य ॥ २४ ॥ धृति
गृहीतया बुद्ध्या शनैः शनैः उपरमेत् मनः आत्मसंस्थं
कृत्वा किंचित् अपि न चिंतयेत् ॥ २५ ॥

टीका.

काम दो प्रकारके हैं एक स्पर्शजन्य दूसरे संकल्पजन्य तहां
स्पर्शज शीतउष्णादिक औ संकल्पज पुत्रक्षेत्र इत्यादिक तहां
संस्पर्शज कामोंका स्वरूपसे त्याग कठिण हैं इसवास्ते जो सं
कल्पसे उत्पन्न काम हैं उन सबोंके जड मूलसे मनही करिके
त्यागिके फिरि सर्व इंद्रियोंको विषयोंसे नियमित करिके ॥ २४ ॥
विवेकविषयिक बुद्धि करिके धीरे धीरे उपरामको प्राप्त हो
ना फिरि मनके आत्मामें स्थित करिके उसविना कोई प
दार्थकाभी चिंतवन न करना ॥ २५ ॥

मूलम्.

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरं ॥ ततस्त
तो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥ प्र
शांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमं ॥ उपैति शान्तं
रजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

अन्वयः

चंचलं अस्थिरं मनः यतः यतः निश्चरति ततः ततः एतत्
नियम्य आत्मनि एव वशं नयेत् ॥ २६ ॥ हि प्रशांत मन

सं शांतरजसं अकल्मषं ब्रह्मभूतं एनं योगिनं उत्तमं
सुखं उपैति ॥ २७ ॥

टीका.

इस मनका स्वभाव चंचल है इसवास्ते आत्मा में स्थिर न-
ही रहता है इसीसे यह जिस जिस विषयमें आसक्त होय तहां
तहांसे इसको फिरायके आत्मा हीमें स्थिर करना ॥ २६ ॥ का
रण कि जिसका मन आत्मा में स्थिर हुआ तिसीवास्ते उसका
रजोगुणभी नष्ट भया जब वह निष्पाप भया निष्पाप होनेसे
आपके शुद्धस्वरूपमें स्थित भया ऐसे इस योगीको उत्तम
सुख याने आत्मानुभवरूप उत्तम सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

मूलम्.

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥ सुखे
न ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

अन्वयः

विगतकल्मषः योगी एवं सदा आत्मानं युंजन् सन्
ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखं सुखेन अश्नुते ॥ २८ ॥

टीका.

ऐसा निष्पाप योगी ऐसे कहे भये प्रकारसे मनको आ-
त्मा में युक्त करते करते ब्रह्मानुभवरूप अत्यंत सुखको प्रया-
सविनाहि प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

मूलम्.

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि ॥ ईक्षते
योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥ यो मां प-
श्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥ तस्याहं न प्रण-
श्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

अन्वयः

सर्वत्र समदर्शनः योगयुक्तात्मा आत्मानं सर्वभूतस्थं च
सर्वभूतानि आत्मानि ईक्षते ॥ २९ ॥ एवं यः सर्व
त्र मां पश्यति च सर्वं मयि पश्यति तस्य अहं न
प्रणश्यामि च सः मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

टीका.

इन दो श्लोकों में श्रीकृष्ण भगवान ने (द्वौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ
समानं वृक्षं परिषस्वजाते) इस श्रुतिका अभिप्राय प्रकट किया है
जैसे कि सर्वत्र समदर्शनः जाने सर्वभूतों में समान वृक्षरूप दृष्टि है
जिसकी अथवा (समं सर्वेषु भुतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं ॥ विनश्यत्स्ववि
नश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति) इत्यादि वाक्यप्रमाणों से समवर्ती
आत्मा पर है दृष्टि जिसकी अथवा शत्रु औ मित्र पर समान है
दृष्टि जिसकी ऐसा योगयुक्तात्मा याने योग जो मेरा समत्व क
रिके मिलाप तिसमे युक्त किया है मन जिसने ऐसा योगी
आपके आकाशादिक सर्वभूतों को आपमें स्थित देखता है ॥
॥ २९ ॥ ऐसे जो सर्वत्र मेरे को देखता है औ सर्व मेरे में देखता
है अर्थात् जैसे सूत्र में मणिसमूह तैसे आप में श्री मेरे में सर्व
भूतों को देखता है तात्पर्य कि सर्व भूतसमूहनिर्मित देहों में
आत्मा को औ मेरे को भी देखता है इस वास्ते शत्रु मित्रादि
भाव से रहित समदर्शी हैं तिसके मैं कधी भी अदृश्य नहीं होता
हूँ श्री वह मेरे को अदृश्य नहीं होता है ॥ ३० ॥

मूलम्.

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥ स
वैधावर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

अन्वयः

यः एकत्वं आस्थितः सर्वभूतस्थितं मां भजति अपि नि
श्चयेन सः योगी सर्वथावर्तमानः मयि वर्तते ॥ ३२ ॥

टीका.

जो पुरुष एकत्व याने सर्व भूतप्राणिमात्रके मित्रत्वमें स्थित
एकता नाम मित्रताका है सो श्रीमद्वाल्मीकीय सुंदरकांडमें स्प
ष्ट हनुमानजीनें श्रीजानकीजीसे श्रीराम औ सुग्रीवकी मित्र
ताविषे वाक्य कहा है (रामसुग्रीवयोरैक्यंदेव्येवंसमजायत) ऐसा
ही इहांभी अर्थ करना चाहिये जो स्वरूपसे एकता कहेंगे
तौ भजनेको क्यों कहा इस वास्ते यही अर्थ है कि जो सबकी मित्र
तामें स्थित हुआ सर्वभूतोंमें स्थित मेरेको भजता है सो योगीनि
श्रैकरिके सर्वप्रकार आचरण करता हुआ मेरेही समीप मेरी सा
म्यताको प्राप्त भया वर्तमान है तात्पर्य कि अगाड़ी कहेंगे सर्वस्य
चाहं हृदिसन्नविष्टः ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुनतिष्ठति इत्यादि
कप्रमाणोंसे ईश्वरको सर्वके हृदयमें जानिके सर्वसे मित्रता करता
है वही मेरा भजन है ऐसे मेरेको भजनेवाला सदा मेरे हृदयमें व
सता है क्योंकि अगाड़ी बारहें अध्यायमें वाक्य है अद्वेष्टा सर्व
भूतानां इहांसे लैकैयोमद्भक्तः समेप्रियः ॥ ३१ ॥

मूलम्.

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योर्जुन ॥

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन यः सुखं यदि वा दुःखं आत्मौपम्येन सर्वत्र
समं पश्यति सः योगी परमः मतः ॥ ३२ ॥

टीका.

जो पूर्व उनन्तीसवें श्लोकमें सर्वत्र समदर्शन कहाथा उस शब्दको इहांभी स्पष्ट करते हैं उसीके स्पष्टीकरणमें योगी की सर्वोत्तम दशा कहते हैं. हे अर्जुन जो मनुष्य सुखको अथवा दुःखको आपहीका सरीखा सर्वत्र सम देखता है याने जैसेसुख औ दुःख मेरेको होता है तैसा सर्वको होता है ऐसा जाननेवाला योगी सर्वसे उत्तम है अर्थात् ऐसे जाननेवाला सर्वसे एकता याने मित्रता करता है औ मित्रता करनेसे मेरेको प्रिय होता है ॥ ३२ ॥

मूलम्.

अर्जुनउवाच ॥ योऽयंयोगस्त्वयाप्रोक्तःसाम्ये
नमधुसूदन ॥ एतस्याहंनपश्यामिचंचलत्वा
स्थितिस्थिराम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः

अर्जुनःउवाच॥हेमधुसूदन यःअयं योगः साम्येन त्वया
प्रोक्तः मनसः चंचलत्वात् अहं एतस्य स्थिरां स्थितिं
न पश्यामि ॥ ३३ ॥

टीका.

अर्जुन भगवानके मुखारविंदसे योगीकी महिमा सुनिके बोला कि हेमधुसूदन जो यह योग समता करिके आपने कहासो मनकी चंचलतासे मैं इसयोगकी स्थिर स्थिति नहीं देखता हूँ

मूलम्.

चंचलंहिमनःकृष्णप्रमाथिबलवद्दृढम् ॥
तस्याऽहंनिग्रहंमन्येवायोरिवसुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः

हेकृष्ण हियस्मात् इदं मनः चंचलं प्रमाथि बलवत् दृढं

तस्मात् अहं तस्य निग्रहं वायोः इव सुदुष्करं मन्ये ॥ ३४ ॥

टीका.

हे कृष्ण जिसवास्ते कि यह मन चंचल औ इंद्रियोंका धो भ करनेवाला बली तथा दृढ है इसीवास्ते मैं उसका रोकना पवनका रोकना जैसा कठिण मानता हौं ॥ ३४ ॥

मूलम.

श्रीभगवानुवाच ॥ असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं ॥ अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच ॥ हे महाबाहो मनः दुर्निग्रहं चलं इति असंशयं हे कौंतेय इदं अभ्यासेन तु वैराग्येण गृह्यते ॥ ३५ ॥

टीका.

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनका प्रश्न सुनिके उत्तर देते हैं कि हे-महाबाहो मन बड़े दुःखसे रोकनेमें आवै है क्योंकि यह चंचल है ऐसा तुमने कहा उसमें संशय नहीं परंतु हे कुंतीपुत्र यह मन अभ्यास औ विषयवैराग्यकरिके वश करनेमें आता है ॥ ३५ ॥

मूलम.

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥

वश्यात्मना यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अयं योगः असंयतात्मना दुष्प्रापः इति मे मतिः तु वश्यात्मना यतता उपायतः अवाप्तुं शक्यः ॥ ३६ ॥

टीका.

यह योग जिसने मन वश नहीं किया तिसको प्राप्त होना

कठिण है क्यों कि जिसने मन जीता है सो जो यत्न करि-
के उपाय करै तौ प्राप्त होय ॥ ३६ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलि-
तमानसः ॥ अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण ग-
च्छति ॥ ३७ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच ॥ हे कृष्ण यः श्रद्धया उपेतः आयतिः चेत् यो-
गात् चलितमानसः योगसंसिद्धिं अप्राप्य कां गतिं गच्छति ॥ ३७

टीका.

अर्जुन ने प्रथम (नेहाभिक्रमनाशोस्तिप्रत्यवायोनविद्यते)
इत्यादिकरि के योगमाहात्म्य सुनाया तौ भी विशेष जानने के
वास्ते फिरि प्रश्न करते हैं. हे कृष्ण जो मनुष्य योगश्रद्धावान्
है याने दंभी नहीं श्रद्धासंयुक्त योगाभ्यास करने लगा औ
कदापि उसके यत्न न होनेसे योग सिद्धि को प्राप्त न भया तौ
वह किस गती को प्राप्त होयगा सो कहौ ॥ ३७ ॥

मूलम्.

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥ अ-
प्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥
एतन्मे संशयं कृष्णच्छेतुमर्हस्य शेषतः ॥ त्वद-
न्यः संशयस्यास्यच्छेतानह्यपपद्यते ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो ब्रह्मणः पथि विमूढः अप्रतिष्ठः अयं उभयवि-
भ्रष्टः कच्चित् छिन्नाभ्रं इव न नश्यति ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ए-

तत् मे संशयं अशेषतः छेतुं अर्हसि हि यतः अस्य संशयस्य छेत्ता त्वदन्यः न उपपद्यते ॥ ३९ ॥

टीका.

हेमहाबाहो वेदमार्गमें मोहको प्राप्त भयायाने स्वर्गादि प्राप्तिनिमित्तकर्म त्यागिके निष्कामकर्मरूप योगकोभी प्राप्त न भया इसवास्ते अप्रतिष्ठित औ उभयभ्रष्ट याने स्वर्गादि प्राप्तिकर्मको भी न प्राप्त भया न योगको प्राप्त भया इसवास्ते कदाचित्जैसे एक बडेमेघमैसे छुटा छोटा मेघका टुकड़ा औ दूसरे मेघकोभी न प्राप्त व्हेके बीचहींमें नष्ट होय है ऐसे नष्ट न व्हे जाय ॥ ३८ ॥ हेकृष्ण मेरे इससंशयको आप समूलछेदन करनेयोग्य हौ क्यों कि इससंशयका छेदनेवाला आपविना दूसरा नहीं है ॥ ३९ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थनैवेहनामुत्रविनाशस्तस्यविद्यते ॥ नहिकल्याणकृत्कश्चिदुर्गतिंतातगच्छति ॥ ४० ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच॥हेपार्थ तस्य इह एव विनाशः न विद्यते न अमुत्र विनाशः विद्यते हियस्मात् हे तातकश्चिदपि कल्याणकृत् दुर्गतिं न गच्छति ॥ ४० ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् कहते भये कि हे पृथापुत्र इस योगाभ्यास करनेवालेकी इस लोकमेंभी दुर्गति नहीं है औ परलोक मेंभी नहीं है क्योंकि हे तात कोईभी शुभकर्म करनेवाला दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

मूलम्.

प्राप्यपुण्यकृतान् लोकानुषित्वाशाश्वतीः समाः ॥
 शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥
 अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥ एत
 द्बिदुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥ तत्र
 तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकं ॥ यतते च त
 तो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥ पूर्वाभ्यासेन
 तेनैव हि यते ह्यवशोऽपि सः ॥ जिज्ञासुरपि योग
 स्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४ ॥

अन्वयः

योगभ्रष्टः पुण्यकृतान् लोकान् प्राप्य तत्र शाश्वतीः समाः
 उषित्वा शुचीनां श्रीमतां गेहे अभिजायते ॥ ४१ ॥ अथ
 वा धीमतां योगिनां कुले एव भवति यत् ईदृशं जन्म त-
 त् एतत् लोके हि दुर्लभतरं ॥ ४२ ॥ हे कुरुनन्दन तत्र तं पौर्व-
 दैहिकं बुद्धिसंयोगं लभते च ततः भूयः संसिद्धौ यतते
 ॥ ४३ ॥ अदशः अपि सः तेन पूर्वाभ्यासेन हि यते ह्य-
 स्मात् योगस्य जिज्ञासुः अपि शब्दब्रह्म अति वर्तते ॥ ४४ ॥

टीका.

कदाचित् योग पुरान भया औ मृत्युको प्राप्त भया तौ स्वर्गादि
 लोकौको प्राप्त व्हेके औ वहां बहुत वर्ष भोग भोगिके फिरि प
 वित्र औ द्रव्यवालोंके घरमें जन्म लेता है ॥ ४१ ॥ अथवा बुद्धि-
 मान् योगीजनौके कुलहीमें जन्मता है जो यह ऐसा जन्मसो
 यह इसलोकमें निश्चयकरिके अतिदुर्लभ है ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन
 तहां वही पूर्वदेहसंबंधी बुद्धियोगको प्राप्त होता है तब फिरि
 भी उसकी सिद्धीमें यत्नकरता है ॥ ४३ ॥ क्योंकि न करनेचा

है तौभी वह पूर्वाभ्यास हठिके उसीमें लगाता है कारण कि जो योगके जाननेकीभी इच्छाकरै तौभी शब्दब्रह्म आर्थात् देवमनुष्य पृथ्वी अंतरिक्ष स्वर्ग इत्यादि शब्दसे उच्चारण योग्य जो ब्रह्मयाने प्रकृति उसको उलंघन करता है याने प्रकृतिसंबंधसे मुक्तहुआ देव मनुष्यादि शब्दोंसे रहित आत्मस्वरूपको प्राप्तहोता है शब्दब्रह्मातिवर्तते इसवाक्यका अर्थ कोई ऐसाभी करते हैं कि वेदोक्त कर्मानुष्ठान फलको उलंघन करता है ॥ ४४ ॥

मूलम्.

प्रयत्नाद्यतमानस्तुयोगीसंशुद्धकिल्बिषः ॥

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् ॥४५॥

अन्वयः

प्रयत्नात् यतमानः संशुद्धकिल्बिषः योगी अनेकजन्म संसिद्धः ततः परां गतिं याति ॥ ४५ ॥ ॥

टीका.

इसी पूर्वोक्त प्रकारकी युक्तीसे प्रयत्न करता करता पाप रहित हुआभया योगी अनेक जन्मोंकरिके सिद्धीको प्राप्त होता है औ फिरिभी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

मूलम्.

तपस्विभ्योऽधिकोयोगीज्ञानिभ्योऽपिमतोऽ

धिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगीतस्माद्योगीभ

वार्जुन ॥ ४६ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन योगी तपस्विभ्यः अधिकः मतः ज्ञानिभ्यः अपि अधिकः च कर्मिभ्यः अपि योगी अधिकः तस्मात् त्वं योगी भव ॥ ४६ ॥

टीका.

हे अर्जुन केवल तपस्विनसे योगी याने भगवत्प्राप्तिकी इच्छाकरिके भगवदाराधनरूप कर्म करनेवाला अधिक है औ केवल ज्ञानी जनौसेभी अधिक है औकेवल यज्ञादिकं सका-मकर्म करनेवालेसेभी अधिक है इसवास्ते तुम योगी होउ याने आपके स्वधर्मस्वरूप कर्मसे ईश्वराराधन करिके ईश्वरप्राप्तिकी इच्छाकरौ ॥ ४६ ॥

मूलम.

योगिनामपिसर्वेषां मद्भक्तेनांतरात्मना ॥

श्रद्धावान्भजते यो मां समयुक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

अन्वयः

यः श्रद्धावान् मद्भक्तेन अंतरात्मना मां भजते सः सर्वेषां योगिनां अपि युक्ततमः मे मतः ॥ ४७ ॥

टीका.

जो श्रद्धायुक्त मेरेमें निरंतर चित्त लगायके मेरी ही उपासना करता है सो योगी सब योगिनमें श्रेष्ठ है ऐसा मैंने माना ॥ ४७ ॥

मूलम.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अध्यायः ॥ ६ ॥

सयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसाद कृतायां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थ बोधिनी भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ६ ॥

इति प्रथमषट्कं समाप्तं

अथ द्वितीयपट्कं

प्रारभ्यते

प्रथमके षट्क याने प्रथमके छ अध्यायोंमें ईश्वरप्राप्तिका उपाय भूतभक्ति याने ईश्वरउपासना उस उपासनाका अंग-भूत आत्मस्वरूपज्ञान सो आत्मज्ञान ज्ञानयोग कर्मयोग निष्ठाकरिके प्राप्त होता है ऐसा कहा औ अब मध्यषट्क याने मध्यके छ अध्यायोंमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ ज्ञान औ उसके साहात्म्य ज्ञानपूर्वक उनकी उपासना जिसीको भक्ति कहते हैं सो भक्तियोग प्रतिपादन करते हैं सोई अगाडी कहेंगे (यतःप्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततं ॥ स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः) इहांसे लैके (विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ब्रह्मभूतो प्रसन्नात्मानो च तिनकांक्षति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां) इहांपर्यंत कहेंगे औरभी भक्तिनिरूपणका कारण कहेंगे ग्यारहे अध्यायमें नाहं वेदैर्न तपसा इत्यादि वाक्यों करिके अब सातवें अध्यायमें परमात्माका रूपनिश्चै औ प्रकृतिकरिके उसका आच्छादन औ उसकी मित्रुतिके वास्ते भगवत्शरणागतिही उपासक ज्ञानीको श्रेष्ठ कहते हैं अथवा छठे अध्यायके अंतमें कहा कि जो मेरेमें चित्त लगायके भजता है सो योगी श्रेष्ठ है सो सुनिके अर्जुनके मनमें आया कि आपका स्वरूप कैसा है ऐसा अर्जुनका अभिप्राय जानिके भगवान् बोलते भये ॥ मय्यासक्त इत्यादिकरिके ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युजन्मदाश्रयः ॥ असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हे पार्थ मय्यासक्तमनाः मदाश्रयः
त्वं योगं युंजन् सन् यथा असंशयं समग्रं मां ज्ञास्यसि
तच्छृणु ॥ १ ॥

टीका.

हे अर्जुन मेरेमें मनको आसक्त कियेहुये औ मेरेही आ-
श्रित भयेहुये तुम योग करते करते जैसे संदेहरहित संपूर्ण
अर्थात् विभूति बल ऐश्वर्यसहित मेरेको जानौगे सो सुनौ ॥ १ ॥

मूलम्.

ज्ञानं ते हं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥ यज्ज्ञा-
त्वानेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

अन्वयः

अहं ते इदं सविज्ञानं ज्ञानं अशेषतः वक्ष्यामि यत् ज्ञा-
त्वा इह भूयः अन्यत् ज्ञातव्यं न अवशिष्यते ॥ २ ॥

टीका.

हे अर्जुन मैं तुमको यह विज्ञानकरिके सहित ज्ञान समग्र
कहता हौं. ज्ञान जो मेरा स्वरूपज्ञान विज्ञानजो मेरेको सर्वसे
विलक्षण जानना. अथवा ज्ञान शास्त्रजन्य विज्ञान अनुभवज-
न्य जिसज्ञानको जानिके इसलोकमें फिरि जाननेयोग्य कु-
छभी नहीं रहता है ॥ २ ॥

मूलम्.

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये ॥ यत-
तामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

अन्वयः

मनुष्याणां सहस्रेषु सिद्धये कश्चित् यतति यततां अपि
सिद्धानां कश्चित् मां तत्त्वतः वेत्ति ॥ ३ ॥

टीका.

कहेंगे जो ज्ञान तिसकी दुर्लभता कहते हैं. हजारों सुज्ञमनुष्योंमें कोई एक पुरुष आत्मज्ञानरूप सिद्धिके वास्ते यत्न करता है वैसे हजारोंमें कोई एक आत्मज्ञानरूप सिद्धिको प्राप्त होता है औ वैसे हजारोंमें कोईही एक मेरे स्वरूपनिश्चयको जानता है अर्थात् कोईभी नहीं जानता है (समहात्मासुदुर्लभः, मांतु वेदमकश्चन) इत्यादि कहेंगे सोई ऐसा दुर्लभ परम ज्ञान मैं तुम से कहौंगा यह अभिप्राय ॥ ३ ॥

मूलम.

भूमिरापोऽनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच ॥ अहंकार
इतीयंमेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥ अपरेयमि
तस्त्वन्यांप्रकृतिंविद्धिमेपरां ॥ जीवभूतांमहा
बाहोययेदंधार्यतेजगत् ॥ ५ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो भूमिः आपः अनलः वायुः खं मनः बुद्धिः
च अहंकारः एव इति या इयं अष्टधा भिन्ना प्रकृतिः सा
इयं मे प्रकृतिः अपरा तु यया इदं जगत् धार्यते तां इतः
अन्यां जीवभूतां मे प्रकृतिं परां विद्धि ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥

टीका.

पृथिव जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि औ अहंकार ऐसे
जो यह आठप्रकारके भेदको प्राप्त भई प्रकृति सो यह मेरी अप-
रा प्रकृति है याने अचेतन है औ जिस चेतनप्रकृतिकरि
यह अचेतन जगत् धारण होरहा है तिसको इस अपरासे
दूसरी जीवभूत मेरी प्रकृतिको तुम परा जानौ ॥ ५ ॥

मूलम्.

एतद्योनीनिभूतानिसर्वाणीत्युपधारय ॥ अहं
कृत्स्नस्यजगतःप्रभवःप्रलयस्तथा ॥ ६ ॥ म
त्तःपरतरंकिंचिन्नान्यदस्तिधनंजय ॥ मयिस
र्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥ ७ ॥

अन्वयः

हे धनंजय सर्वाणि भूतानि एतद्योनीनि इति उपधार-
य अतः अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः तथा प्रलयः ॥ ६ ॥
मत्तः परतरं अन्यत् किंचित् न अस्ति सूत्रे मणिगणाः
इव इदं सर्वं मयि प्रोतं ॥ ७ ॥

टीका.

हे धनंजय याने हे अर्जुन सर्वभूतप्राणीमात्रके येई दोनों
प्रकृति औ पुरुष कारण है ऐसे तुम जानौ औ ये मेरे हैं
याने इनका कारण मैं हौं इसवास्ते मैं इस सर्व जगतका
प्रभव याने कारण हौं औ मैही प्रलय हौं अर्थात् इसजगतकी
उत्पत्ति औ प्रलयरूप मैही हौं ॥ ६ ॥ मेरेसे परे और कुछभी
नहीं है जैसे सूत्रमें मालाके मनिके पोहे होते हैं तैसे यह सर्व
जडचैतन्यसमूह जगत् मेरेमें पोहा है ॥ ७ ॥

मूलम्.

रसोहमप्सुकौंतेयप्रभास्मिशशिसूर्ययोः ॥
प्रणवःसर्ववेदेषुशब्दःखेपौरुषंनृषु ॥ ८ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय अप्सु रसः अहं अस्मि शशिसूर्ययोः प्रभा
अहं अस्मि सर्ववेदेषु प्रणवः अहं अस्मि खे शब्दः
अहं अस्मि नृषु पौरुषं अहमस्मि ॥ ८ ॥

जो सातवे श्लोकमें कहाकी मेरेमें यह जगत जैसे सूत्रमें मणिसमूह पोहाहै सोई विस्तारसे देखाते हैं जैसे जलमें सूत्रस्थानीय रस है यह एक आचार्यकृत अर्थ दूसरेभी अर्थ तौ ऐसाही करते हैं परंतु विशेष यह है कि जैसा जलमें रस है वह मैं हौ अर्थात् मेरा शरीरभूतरस है याने जलका सार जो रस उसकाभी अंतर्ग्रामी मैं हौ इस रीतिसे मेरेमें वह जल पोहा है ऐसे सर्वत्र जानना. भगवान् कहते हैं कि हे कुंतीपुत्र जलमेंरस चंद्रसूर्यमें प्रकाश सर्व वेदोंमें ओंकार आकाशमें शब्द मनुष्योंमें पुरुषार्थ ये सर्व मेरेही श्रेष्ठविभूति हैं ॥ ८ ॥

मूलम्.

पुण्योगंधःपृथिव्यांचतेजश्चास्मि विभावसौ ॥

जीवनंसर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

अन्वयः

पृथिव्यां पुण्यः गंधः च विभावसौ तेजः अहं अस्मि सर्व भूतेषु जीवनं च तपस्विषु तपः अहं अस्मि ॥ ९ ॥

टीका.

पृथ्वीमें जो पबित्र गंध है औ अग्निमें तेज सर्व भूतप्राणीमात्रसे जीवन याने आयुष्य औ वानप्रस्थादिक तपस्विनमें तपरूप मैं हौ ॥ ९ ॥

मूलम्.

बीजं मांसर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनं ॥

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि ते जस्ते जस्विनामहं ॥ १० ॥

अन्वयः

हे पार्थ सर्वभूतानां सनातनं बीजं मां विद्धि बुद्धिमतां

बुद्धिः तेजस्विनां तेजः अहमस्मि ॥ १० ॥

टीका.

हेष्टथापुत्र सर्वभूत प्राणिमात्रका सनातनबीज उत्पत्तिकार-
णमेरी श्रेष्ठ विभूति वा मेरा शरीर जानौ बुद्धिवालोंमें बुद्धि
तेजवालोंमें तेज मेरे शरीरभूत मेरी श्रेष्ठ विभूति हैं ॥ १० ॥

मूलम्.

बलंबलवतांचाहंकामरागविवर्जितं ॥

धर्माऽविरुद्धोभूतेषुकामोऽस्मिभरतर्षभ ॥ ११ ॥

अन्वयः

हेभरतर्षभ बलवतां कामरागविवर्जितं बलं अहं अस्मि
च भूतेषु धर्माऽविरुद्धः कामः अहं अस्मि ॥ ११ ॥

टीका.

जो बलवंत लोग हैं तिनमें अप्राप्तविषयोंकी कामना औ
प्राप्तविषयोंकी प्रीति इन कामरागोंविना बल मैं हों औ भू-
तप्राणीमात्रमें धर्मसे जो अविरुद्ध काम सो मैं हों ॥ ११ ॥

मूलम्.

येचैवसात्विकाभावाराजसास्तामसाश्रये ॥

मत्तएवेतितान्विद्धिनत्वहंतेषुतेमयि ॥ १२ ॥

अन्वयः

येसात्विकाः एव भावाः च ये राजसाः च ये तामसाः तेमत्तः
एव इति तान् विद्धि तु अहं तेषु न ते मयि संति ॥ १२ ॥

टीका.

इस जगतमें जे सात्विक याने शमादिक राजस द्वेषादिकता
मस मोहादिक अथवा सात्विक भोग्यत्वकरिके राजस देहपणा

से तामस इंद्रियत्वकरिके जे भाव हैं वै सब मेरेहीसे उत्पन्न हैं ऐसा जानौ परंतु मै उनके स्वधीन नहीं हों औ वै मेरे स्वाधीन हैं ॥ १२ ॥

मूलम्.

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययं ॥ १३ ॥

अन्वयः

एभिः त्रिभिः गुणमयैः भावैः इदं सर्वं जगत् मोहितं अतः एभ्यः परं अव्ययं मां न जानाति ॥ १३ ॥

टीका.

यै जो तीनौ गुणमय भाव हैं तिनौकरिके यह सर्व जगत् मोहित है इसवास्ते इनसे पर औ अविनाशी जो मै तिसको नहीं जानता हैं ॥ १३ ॥

मूलम्.

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ॥ १४ ॥

अन्वयः

एषा गुणमयी दैवी मम माया ह्यिस्मात् दुरत्यया तस्मात् ये मां एव प्रपद्यन्ते ते एतां मायां तरन्ति ॥ १४ ॥

टीका.

यह तीनौ गुणोंकरिके युक्त दैवी याने देवसंबंधिनी अर्थात् मेरी माया दुरत्यय है याने दुःखसेभी तरनेमें आती नहीं इसवास्ते जे मेरी शरण आते हैं वेही मायाको तरते हैं ॥ १४ ॥

मूलम्.

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते न राधमाः ॥

माययाऽपहतज्ञानाआसुरंभावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

अन्वयः

मायया अपहतज्ञानाः आसुरं भावं आश्रिताः दुष्कृति
नः नराऽधमाः मूढाः मां न प्रपद्यन्ते ॥ १५ ॥

टीका.

मायाकरिके नष्ट भया है ज्ञान जिसका इसीसे असुरपनेको
प्रप्ति हो रहे हैं इसीसे नीचकर्म करते हैं उस नीचकर्मही क-
रनेसे वै मनुष्योंमें अधम हैं औ इन्ही कारणोंसे वै मोहित
हुये मेरी शरण नहीं आते हैं ॥ १५ ॥

मूलम्.

चतुर्विधाभजन्तेमांजनाःसुकृतिनोऽर्जुन ॥ आ
र्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥ तेषां
ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥ प्रियो
हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहंच स च मे प्रियः ॥ १७ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन आर्तः जिज्ञासुः अर्थार्थी च ज्ञानी इति चतुर्विधाः
सुकृतिनः जनाः मां भजन्ते हे भरतर्षभ तेषां ज्ञानी नित्य-
युक्तः सन् एकभक्तिः अतः विशिष्यते हि ज्ञानिनः अ-
हं अत्यर्थं प्रियः च सः मे अत्यर्थं प्रियः ॥ १६ ॥

टीका.

हे अर्जुन एकतौ संसारसे दुःखी दूसरा जाननेकी इच्छा कर-
नेवाला तीसरा धनादिकके चाहनेवाला औ चौथा स्वस्वरूपपर
स्वरूपका जाननेवाला ऐसे चारिप्रकारके सुकृतीजन मेरेको भ-
जते हैं तिनमें ज्ञानी नित्यही योगयुक्त व्हाँके एक मेरेही भक्ति
करता है इसवास्ते वह चारोंमें श्रेष्ठ है औ निश्चैकरिकै जिसवास्ते

कि ज्ञानीको मै आतिशय प्रिय हौं तैसेही ज्ञानी मेरेको अति प्रिय है ॥ १६ ॥

मूलम्.

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतं ॥ आस्थि-
तः सहियुक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिं ॥ १८ ॥

अन्वयः

एते सर्वे आर्तादयः उदाराः एव ज्ञानी तु मम आत्मा
इति मे मतं हियस्मात् सः युक्तात्मा अनुत्तमां गतिं
मां एव आस्थितः ॥ १८ ॥

टीका.

जोये आर्त इत्यादिक चारि प्रकारे भक्त कहे ये यतने
सर्व उदारही हैं परंतु ज्ञानी तौ मेरा आत्मायाने अत्यंत प्रिय
है ऐसा मेरा मत है क्योंकि सो योगयुक्त उत्तमगतिदायक जो
मैं उसी मेरेमेंही आसक्त वहै रहा है. तात्पर्य जैसा वह मेरेकी
अति प्यारसे भजता है वैसे मैं उसकोभी भजता हौं ॥ १८ ॥

मूलम्.

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ॥ वासुदे-
वः सर्वमिति समहात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

अन्वयः

बहूनां जन्मनां अंते वासुदेवः सर्व इति ज्ञानवान् सन्
मां प्रपद्यते सः महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

टीका.

अब ज्ञानी किसको कहते हैं औकैसे होता है सो कहते हैं
बहुत जन्मपर्यंत पुण्यकर्म करते करते उनके अंतमें जब ऐसा
ज्ञानैकि वासुदेव भगवान् ही मेरा मातापिता गति मुक्ति धन कुटुं

बादिक सर्व है इस ज्ञानकरके युक्त अथवा सर्व चराचर जगत् वासुदेवात्मक है ऐसा जानिके सर्व हितकारक औ वैर-रहित होना इस ज्ञानकरके युक्त होइ सो ज्ञानी मेरेको प्राप्त होता है वह सबसे श्रेष्ठ औ अति दुर्लभ है ॥ १९ ॥

मूलम्.

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥ तं
तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

अन्वयः

स्वया प्रकृत्या नियताः तैः तैः कामैः हृतज्ञानाः तं तं
नियमं आस्थाय अन्यदेवताः प्रपद्यन्ते ॥ २० ॥

टीका.

आपकी राजस तामस प्रकृतिकरके नियमित औ पु-त्रादि प्राप्तिरूप तिन तिन कामनाकरके हरा गया है भगव-त्प्राप्तिरूप ज्ञान जिनका औ उसी उसीका मनके अनरूप नियममें स्थितवहैके अन्य देवतोंकी शरण जाते हैं ॥ २० ॥

मूलम्.

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥ त
स्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहं ॥ २१ ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमर्हते ॥ लभ
ते च ततः कामान्मयैव विहितान् हितान् ॥ २२ ॥
अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसां ॥ देवान् देव
यजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २३ ॥

अन्वयः

यः यः भक्तः यां यां तनुं श्रद्धया अर्चितुं इच्छति तस्य

तस्य तां एव अचलां श्रद्धां अहं विदधामि ॥ २१ ॥ सः
तया श्रद्धया युक्तः तस्य आराधनं ईहते च ततः मया
एव विहितान् हि तान् कामान् लभते ॥ २२ ॥ किंतु तेषां
अल्पमेधसां तत्फलं अंतवत् भवति यथा देवयजः दे-
वान् यांति तथा मद्भक्ताः अपि मां यांति ॥ २३ ॥

टीका.

जो अन्यदेवतोंकरिके कहे हैं वैभी. मेरेही शरीर हैं (यस्य
दित्यः शरीरं) इत्यादि श्रुतिवाक्योंका जो अर्थ है सो इहांभी
भगवान् प्रगट करते हैं कि जो जो भक्त इंद्रादि देवरूप मेरे जि-
स जिस तनु याने शरीरकी श्रद्धासे अर्चन करनेकी इच्छा करें
हैं उस उस भक्तको वही अचल श्रद्धा मैं देता हों ॥ २१ ॥ सो
भक्त उसी श्रद्धाकरिके युक्त भया उसी इंद्रादिक देवका आरा-
धन करता है औ उसी देवसे मेरेही विधान कियेहुये मनोर-
थोंको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ परंतु तिन बुद्धिवालोंका सोफल
नाशवान् होता है जैसे अन्यदेवतोंके आराधन अन्य देवतोंको
प्राप्त होते हैं औ मेरे भक्त मेरेहीको प्राप्त होते हैं तहां जे अन्य
देवतोंको प्राप्त होते हैं वे फिरिभी जन्मते मरते हैं औ मेरेको
प्राप्त व्हेके मुक्तहुये फिरि जन्मते नहीं सो अष्टमके शोर हैं
श्लोकमें लिखेंगे आब्रह्ममूवनाँक्लोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन ॥ मामु
पेत्यतु कौंतेय पुनर्जन्मन विद्यते इति ॥ २३ ॥

मूलम्.

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ॥

परं भावमजानंतो ममाऽव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

अन्वयः

मम अव्ययं अनुत्तमं परं भावं अजानंतः अबुद्धयः अ

व्यक्तं मां व्यक्तिं आपन्नं मन्यन्ते यदा व्यक्तिं आपन्नं
मां अव्यक्तं मन्यन्ते ॥ २४ ॥

टीका.

मेरा जो एक रस सर्वोत्तम पर स्वरूप तिसको न जाननेवा
ले अज्ञानी जन मैं सर्वोत्तरीामी जिसको वसुदेव पुत्रकरिके
मनुष्यरूप मानते हैं अथवा सर्वस्यचाहं हृदिसन्निविष्टः॥ ईश्वरः
सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति॥इन वाक्यों करिके सर्वके हृदय-
में जो मैं मूर्तिमान हों तिसको अरूप मानते हैं इसवास्ते मेरेको
दुष्प्राप्त मानिके दुसरे देवतोंको भजते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्.

नाहंप्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

अन्वयः

अहं योगमायासमावृतः सन् सर्वस्य प्रकाशः न अतः
अयं मूढः लोकः अजं अव्ययं मां न अभिजानाति ॥ २५ ॥

टीका.

किसवास्ते वै लोग आपके स्वरूपको नहीं जानते हैं इस सं-
का पर कहते हैं कि मैं योगमाया करिके आच्छादित हुआ भ-
या सर्वको प्रसिद्ध नहीं हों इसी कारण जो अजन्मा औ एक-
रस मैं हों इसको ये मूढ लोग नहीं जानते हैं ॥ २५ ॥

मूलम्.

वेदाऽहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अहं समतीतानि च वर्तमानानि च भविष्या

णि भूतानि वेद तु मां कश्चन न वेद ॥ २६ ॥

टीका.

हे अर्जुन मै जो पूर्व भये हैं औ जो अब वर्तमान हैं तथा जो आगे होयेंगे इन सबोंको जानता हौं परंतु मेरेको कोइभी नहीं जानता है ॥ २६ ॥

मूलम्.

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥ सर्वभूता
निसंमोहं सर्गेयांति परंतप ॥ २७ ॥ येषां त्वंत
गतं पापं जनानां पुण्यकर्मणां ॥ ते द्वंद्वमोहनिर्मु
क्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे भारत हे परंतप इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन सर्वभूता
निसर्गे संमोहं यांति ॥ २७ ॥ तु येषां पुण्यकर्मणां जना
नां पापं अंतगतं ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः दृढव्रताः संतः मां भ
जंते ॥ २८ ॥

टीका.

हे अर्जुन इच्छा औ द्वेषकरिके उत्पन्न भया जो सुखदुः
खादिरूप मोह उस मोहकरिके सर्वभूतप्राणीमात्र जन्मका-
लमें मोहको प्राप्त होते हैं जिन पुण्यकर्म करनेवाले मनु-
ष्योंका पाप नष्ट भया है वै सुखदुःखादिरूप मोहसे छुठे हैं
इसीसे दृढ नियम भये मेरेको भजते हैं याने मेरेविना दू-
सरेको नहीं भजते है यही जिनका व्रत दृढ है ॥ २८ ॥

मूलम्.

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंतिये ॥

ते ब्रह्मतद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्मचाखिलं ॥ २९ ॥

अन्वयः

ये मां आश्रित्य जरामरणमोक्षाय यतन्ति ते तत् ब्रह्म वि-
दुः च कृत्स्नं अध्यात्मं विदुः च अखिलं कर्मविदुः ॥ २९ ॥

टीका.

जे मेरे आश्रित वहीके जरामरणसे मुक्त होनेकेवास्ते अथात्
प्रकृतिसंबंधरहित आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके वास्ते यत्न करते हैं
वै उस ब्रह्मको जानते हैं औ संपूर्ण अध्यात्मको जानते हैं औ
समस्त कर्मकोभी जानते हैं इन ब्रह्म इत्यादिक शब्दोंका अर्थ
आठवे अध्यायमें कहेंगे इसवास्ते इहां खुलासा नहीं किया २९

मूलम्.

साधिभूताऽधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

अन्वयः

ये मां साधिभूताधिदैवं च साधियज्ञं विदुः ते च युक्त
चेतसः प्रयाणकाले अपि मां विदुः ॥ ३० ॥

टीका.

जे पुरुष मेरेको अधिभूत करिके सहित औ अधिदैव करि-
के सहित औ अधियज्ञकरिकेभी सहित जानते हैं तेई पुरुष
योगयुक्तचित्तवाले मरणकालमेंभी मेरेको जानते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगोना
म सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां

श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ७

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ किं तद्ब्रह्म किं मध्यात्मं किं कर्म पु-
रुषोत्तम ॥ अधिभूतं च किं प्रोक्तं मधिदैवं किं मु-
च्यते ॥ १ ॥ अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् मधु-
सूदन ॥ प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्म-
भिः ॥ २ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच, हे पुरुषोत्तम तत् ब्रह्म किं अध्यात्मं किं क-
र्म किं च अधिभूतं किं प्रोक्तं च अधिदैवं किं उच्यते ॥ १ ॥
हे मधुसूदन अत्र देहे अधियज्ञः कथं कः च अस्मिन्
लोके प्रयाणकाले नियतात्मभिः कथं ज्ञेयः असि ॥ २ ॥

टीका.

सातयें अध्यायमें जो ब्रह्म इत्यादिको जानना कहा था
उनको पूछनेको अर्जुन बोलता भया कि हे पुरुषोत्तम जो आप-
ने ब्रह्म कहा सो क्या है औ अध्यात्म क्या है औ कर्म क्या है
औ अधिभूत किसको कहते हैं औ अधिदैव किसको कहते हैं
॥ १ ॥ हे मधुसूदन इस देहमें अधियज्ञ कैसे कौन है औ इस
लोकमें मरणकालसे स्थिरचित्त मनुष्योंकरिके कैसे ध्यान
करनेयोग्य हौ सो कहौ ॥ २ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्या-
त्ममुच्यते ॥ भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञि-
तः ॥ अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतः ॥

अधियज्ञोहमेवात्रदेहेदेहभृतांवर ॥ ४ ॥ अंत
कालेचमामेवस्मरन्मुक्ताकलेवरं ॥ यःप्रयाति
समद्भावंयातिनास्त्यत्रसंशयः ॥ ५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे अर्जुन परमं अक्षरं ब्रह्म उच्यते स्व
भावः अध्यात्मं उच्यते यः भूतभावोद्भवकरः विसर्गः सः
कर्मसंज्ञितः अस्ति ॥ ३ ॥ क्षरोभावः अधिभूतं च पुरुषः
अधिदैवतं हे देहभृतांवर अत्र देहे अधियज्ञः अहं एव
॥ ४ ॥ यः अंतकाले मां एव स्मरन् सन् कलेवरं मुक्ता
प्रयाति सः मद्भावं याति अत्र संशयः न अस्ति ॥ ५ ॥

टीका.

जो प्रभौं अर्जुनने करी उन सबनका उत्तर श्रीकृष्णभगवान्
देतेभये हे अर्जुन परम अक्षर जो शुद्ध आत्मस्वरूपक्षेत्रज्ञ सो
ब्रह्म कहिये औ कोई आचार्य परमअक्षर परमात्माको कहते हैं
तहाँ प्रथम अर्थ करनेवाले कहते हैं कि यह अर्थ श्रुति विरुद्ध है
तथाच श्रुतिः (अव्यक्तमक्षरेलीयते अक्षरं तमसिलीयते) इत्या-
दिकाः इसवास्ते अक्षर आत्मा क्षेत्रज्ञ औ परमशब्दसे प्रकृति-
सेमुक्त शुद्धस्वरूप आत्माही इहां ब्रह्म कहाहै औ स्वभावको अ-
ध्यात्म कहते हैं औ जो सब भूतप्राणीमात्रकी उत्पत्तिकारकवि-
सर्ग उसको कर्म कहते विसर्गका अर्थ कोई कहते हैं कि यज्ञ
में जो देवताके अर्थ पुरोडासादिक स्वद्रव्यके त्यागको नाम है
औ एक कहते हैं कि पंचम्याभाहुता आपः पुरुषवचसो भवति इस
श्रुति करिके सिद्ध स्त्रीसंबंधसे जो विसर्ग है उसको कर्म कहते हैं
इन दोनोंकेभी अर्थमे विरुद्ध नहीं विसर्ग नाम सृष्टिका है सो
उसका जो यज्ञसे लेई तौभी यज्ञसे वर्षावर्षासे अन्न अन्नसे वीर्य

औ विर्यका स्त्री संगसे विसर्ग याने त्याग हुवा तो सृष्टि फिर
सृष्टिमें देहभया जब उसी देहसे यज्ञयज्ञसे वर्णाइसीतरहसे यह
चक्र प्रथमही कहाहै ॥ ३ ॥ जो क्षरभाव याने देहादिक नाशवा-
न वस्तुमात्र उसको अधिभूत कहते हैं पुरुष जो सर्व इंद्रादिक
देवतिनकेभी उपरवर्त्तमान सब देवतोंका अधिपति और मेराही
अंश वैराज सूर्यमंडलवर्ती वह अधिदेवत है और हे देहधारीनमें
श्रेष्ठ देहमात्रमें अधियज्ञ मैहीहों याने जीवकाभी अंतर्धामीउ-
सीके संग देहमें मैही रहता हों उसी मेरेको अधियज्ञ कहते
हैं और श्रुतीभी कहै है (द्वांसुपर्णौ सयुजौ सखायौ समानं
तृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचा
कशीति ॥) देहधारियोंमें श्रेष्ठकहनेसे यह देखाया कि तुझारे
भी देहमें मै तुझारा अंतर्धामी हों इसवास्तेतुमभीस्वाधीन न-
ही है ॥ ४ ॥ जो पुरुष अंतकालमें मेराही स्मरण करता भया
देह त्यागिके जाता है सो मेरी समताको प्राप्त होता है इस-
में संशय नहीं ॥ ५ ॥

सूत्रम्.

यंयंवाऽपिस्मरन् भावंत्यजत्यंतकलेवरं ॥ तंत
मेवैतिकौंतेयसदातद्भावभावितः ॥ ६ ॥ तस्मा
त्सर्वेषुकालेषुमामनुस्मरयुद्यच्च ॥ मय्यर्पित
मनोबुद्धिर्मा मेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥ अभ्यास
योगयुक्तेनचेतसानान्यगामिना ॥ परमंपुरुषं
दिव्यंयातिपार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

अन्वयः

यं यं भावं वा स्मरन् सन् सदा तद्भावभावितः यः कः

अपि अंतं कलेवरं त्यजति हे कौंतेय सः तं तं एव एति
 ॥ ६ ॥ तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां अनुस्मर च युद्धय ततः
 मय्यर्पितमनोबुद्धिः त्वं मां एव एष्यसि इति असंशयः
 ॥ ७ ॥ अत्र कारणमाह हे पार्थ अभ्यासयोगयुक्तेन ना-
 न्यगामिना चेतसा परमं पुरुषं दिव्यं मां अनुचितयन्
 सन् मां एव याति ॥ ८ ॥

टीका.

प्रथम कहा कि अंतकालमें मरनेके समयमें जो मेरा स्मरण
 करता करता देहत्यागै सो मेरेहीको प्राप्त होई याने मेरे समान
 स्वरूप भोगादिक पावै ऐसेही मेरेको अथवा और जो जो भावों
 को याने जिसका जिसका स्मरण करता भया सदा उसीकी भा-
 वनामें चित्त लगाये भये जो कोईभी अंतमें देहको त्यागता है
 हे अर्जुन सो उसी उसीको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ तिसीवास्ते
 सर्वकालमें मेरेही स्मरण करौ औ स्ववर्णधर्मरूप युद्धादिकक-
 र्म करौ तौ उसी कर्म करिके मेरेविषे मन औ बुद्धि लगाये भ-
 ये तुम मेरेहीको प्राप्त होउगे इसमें संशय नहीं ॥ ७ ॥ इहां
 सदा स्मरण करनेका कारण कहतेहैं हे पृथापुत्र अर्जुन जो अ-
 भ्यासरूप योगमें युक्त औ दूसरेमें न जाय ऐसे चित्त करिके
 परमपुरुष दिव्य जो मैं तिसका पुनः पुनः चिंतवन करता
 भया मेरेहीको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

मूलम्.

कविंपुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्म
 रेद्यः ॥ सर्वस्यधातारमर्चित्यरूपमादित्यवर्णं
 तमसःपरस्तात् ॥ ९ ॥ प्रयाणकालेमनसाचले
 नभक्त्यायुक्तोयोगबलेनचैव ॥ भ्रुवोर्मध्येप्रा

णमावेश्यसम्यक्सतंपरंपुरुषमुपैतिदिव्यं ॥ १० ॥

अन्वयः

यःपुरुषः भक्त्यायुक्तः सन् प्रयाणकाले अचलेन मनसा
च योगबलेन ध्रुवोः मध्ये एवसम्यक् प्राणं आवेश्य ततः
कविं पुराणं अनुशासितारं आणोः अणीयांसं सर्वस्य
धातारं अचिंत्यरूपं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् एवंभू-
तं पुरुषं अनुस्मरेत् सः तं परं दिव्यं पुरुषं उपैति ॥ १० ॥

टीका.

जो पुरुष भक्तिकरियेयुक्त हुआभयामरणसमयमें स्थिर मन
करिके फिरि योगके बलसे दोनों भृगुटिनके मध्यमें सुषुम्नाना-
डिद्वारा सम्यक् प्रकारसे प्राणवायुको प्रवेश करिके अर्थात् कुंभ-
क करिके तिस पीछे कवि याने सर्वज्ञ पुराण याने पुरातन
अनुशासितारं याने सर्वका शिक्षक अणोः आणीयांसं याने
सूक्ष्मसे सूक्ष्म सर्वस्य धातारं याने सर्वका धारण करनेवाला अ-
चिंत्यरूपं याने जिसका रूप चितवनमें न आयसकै आदित्यव-
र्णं याने सदासूर्यवत् प्रकाशमान तमसः परस्तात् याने प्रकृतिसे
परऐसा जो पुरुष याने परमात्मा तिसका स्मरण करै सो परं
याने सर्वोत्तमको दिव्य याने अप्राकृत अर्थात् प्रकृतिसंबंध
रहित ऐसे पुरुषको अर्थात् परमात्माको प्राप्त होय है ॥ १० ॥

मूलम्.

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशंतियद्यतयो वीतरा-
गाः ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहे
ण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

अन्वयः

वेदविदः यत् अक्षरं वदन्ति वीतरागाः यतयः यत् विशं

१५६ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

ति यदिच्छंतः ब्रह्मचर्यं चरन्ति अहं तत् पदं ते संग्रहेण
प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

टीका.

वेदके जाननेवाले जिसकी अक्षर कहते है ओ वीतराग
याने विगत भई है वासना जिसकी ऐसे यती याने ईश्वर
प्राप्तीकेवास्ते यत्न करनेवाले जिस पदको प्राप्त होते हैं औ
जिस पदकी इच्छा करनेवाले उसके जाननेके वास्ते गुरुकुल
में रहिके ब्रह्मचर्य करते भये वेदाभ्यास करते हैं मैं उस पद
को तुझारेको संक्षेपकरिके कहौंगा ॥ ११ ॥

मूलम्.

सर्वद्वाराणिसंयम्यमनोहृदिनिरुद्धच ॥ मू
र्ध्याधायान्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम् ॥
॥ १२ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनु
स्मरन् ॥ यः प्रयातित्यजन्देहं स याति परमां ग
तिम् ॥ १३ ॥

अन्वयः

यः सर्वद्वाराणि संयम्य च मनः हृदिनिरुद्धच च आत्म
नः प्राणं मूर्ध्नि आधाय योगधारणां आस्थितः सन् ॥ १२
ओं इति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् च मां अनुस्मरन् स न यः
देहं त्यजन् प्रयाति सः परमां गतिं याति ॥ १३ ॥

टीका.

अब जो प्रतिज्ञा करी है उस पदके प्राप्तीका उपाय कहते है.
जैसे की सर्व इंद्रियोंको संयममें करिके मनको हृदय स्थित ई
श्वरमें राखिके आपके प्राणवायुको मूर्द्धनीमें चढायके योग

धारणमें स्थित हुआ भया ॥ १२ ॥ औ यह जो एक अक्षररूप ब्रह्मयाने ब्रह्मका प्रतिपादनकारक ओंकार तिसको उच्चारण करता करता औ उसका अधिष्ठाता जो मैं तिसका स्मरण करता करता जो देह त्यागतेभये जाता है सो परमगतीको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

मूलम्.

अनन्यचेताःसततंयोमांस्मरतिनित्यशः ॥

तस्याहंसुलभःपार्थनित्युक्तस्ययोगिनः ॥ १४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ अनन्यचेताः यः मां नित्यशः सततं स्मरति तस्य नित्ययुक्तस्ययोगिनः अहं सुलभः ॥ १४ ॥

टीका.

हे अर्जुन नहीं है दूसरेमें मेरे विना चित्त जिसका ऐसा जो मेरेको नित्य निरंतर स्मरता है उस नित्य योगयुक्तयोगीको मैं सुलभ हौं ॥ १४ ॥

मूलम्.

मामुपेत्यपुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् ॥

नाप्नुवंतिमहात्मानःसंसिद्धिंपरमांगताः ॥ १५ ॥

अन्वयः

परमां संसिद्धिं गताः महात्मानः मां उपेत्य पुनः दुःखालयं अशाश्वतं जन्म न आप्नुवंति ॥ १५ ॥

टीका.

इसके परे याने अगाडी जो अध्यायशेष रहा है उसमें ज्ञानी जो कैवल्यार्थी है उसकी अपुनरावृत्ति याने जन्ममरणका अभाव औ ऐश्वर्यार्थीकी पुनरावृत्ति कहते हैं परम सिद्धिको याने

१५८

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

मेरी उपासनारूप सिद्धिको प्राप्त भये जो महात्मा वै मेरे को प्राप्त व्हाँके फिरि दुःखका स्थान औ अस्थिर ऐसे जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

मूलम्.

आब्रह्मभुवनालोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥ मामुपेत्य कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन आब्रह्मभुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः संति तु हे कौंतेय मां उपेत्य पुनः जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

टीका.

हे अर्जुन ब्रह्मलोकपर्यंत जो लोक उनमें जायके जीव फिरि जन्मलेता है औ हे कुंतीपुत्र मेरेको प्राप्त व्हाँके फिरि यह जीव जन्मता नहीं ॥ १६ ॥

मूलम्.

सहस्रयुगपर्यंत महर्षिर्ब्रह्मणो विदुः ॥ रात्रियुगसहस्रांतांतेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

अन्वयः

ये सहस्रयुगपर्यंतं यत् ब्रह्मणः अहः तत् विदुः तथा युगसहस्रांतां रात्रिं विदुः ते जनाः अहोरात्रविदः संति ॥ १७ ॥

टीका.

अहोऋण देखो पुराणमेलिखा है कि जो तपस्वी दानी यती औ सहनशील हैं वै तीनहू लोकके ऊपर महर्षीक इत्यादिकों में रहते हैं तौ भी विनाशपनमें तौ मृत्युलोकवासिनहिके समान हैं तब इसमें विशेष क्या है तहां कहते हैं कि उनकी स्थिति बहुत

काल पर्यंत रहती है यही विशेष इसी आशयसे कहते हैं कि ब्रह्माके प्रमाणसे ब्रह्माकीभी आयुष्य सौवर्षकी है उसमें ब्रह्मा की राति रातिमें सृष्टिका प्रलय औ दिन दिनमें उत्पत्ति होवे है ऐसा देखाते भये ब्रह्माकी रात्रि औ दिनका प्रमाण कहते हैं सो जैसेकि हजार युग याने हजार चतुर्युगोंका ब्रह्माका एक दिन औ हजार चतुर्युगोंकी एक रात्री होती है सो जो कोईन के जाननेवाले हैं वही लोग रात्रिदिनके जाननेवाले हैं याने वे ई दीर्घदर्शी औ सर्वज्ञ हैं जो केवल सूर्यचंद्रकी गतिप्रमाण रात्रिदिनको जानते हैं वे सर्वज्ञ नहीं ॥ १७ ॥

मूलम्.

अव्यक्ताद्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ॥ रात्र्या
गमे प्रलीयन्ते तत्रैवाऽव्यक्तसंज्ञिके ॥ १८ ॥ भू
तग्रामः स एवाऽयं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ॥ रात्र्याग
मेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अन्वयः

ब्रह्मणः अहरागमे अव्यक्तात् सर्वाः व्यक्तयः प्रभवन्ति रा
त्र्यागमे तत्र अव्यक्तसंज्ञिके एव प्रलीयन्ते ॥ १८ ॥ स एव
अयं भूतग्रामः रात्र्यागमे अवशः सन् भूत्वा भूत्वा प्रली
यते हे पार्थ स अयं अहरागमे प्रभवति ॥ १९ ॥

टीका.

ब्रह्माके दिनके उदयकालमें ब्रह्माहीके शरीरसे सर्व चराच
र देह उत्पन्न होते हैं औ रात्रिके आगममें उसीमें लीन होते
हैं ॥ १८ ॥ सोई यह कर्मवश भूतप्राणीसमूह दिनौके आगम
में व्हेव्हेके रात्रियौके आगममें वारंवार उसी ब्रह्माकी देहमें
लीन होता है औ दिनौके आगममें फिरिभी उत्पन्न होता है

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

१६०

ऐसे ब्रह्माकी आयुष्यपर्यंत होता है ॥ १९ ॥

मूलम्.

परस्तस्मात्तुभावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः॥
यःसर्वेषुभूतेषुनश्यत्स्वपिननश्यति ॥ २० ॥
अव्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्तमाहुःपरमांगतिं ॥ यंप्रा
प्यननिवर्त्ततेतद्वामपरमंमम ॥ २१ ॥

अन्वयः

तस्मात् अव्यक्तात् परः अन्यः यः अव्यक्तः सानातनः
भावः सः सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु अपि न नश्यति ॥ २०
सः अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः वेदज्ञाः तं परमां गतिं आहुः
यं प्राप्य जनाः न निवर्त्तते तत् मम परमं धाम ॥ २१ ॥

टीका.

जो कैवल्यको प्राप्त होतेहैं उनकीभी पुनरावृत्ति नहिहै ऐसा
कहतेहैं कैवल्य कहतेहैं स्वस्वरूपको जो कहाकी ब्रह्माकी दे-
हसे उत्पत्ति औ उसीमें लय होताहै तहां जो ब्रह्माका वह शरी
र अचेतन प्रकृतिरूपहै उसते उत्कृष्ट जो दूसरा अव्यक्त सना
तनभाव है सो सर्व आकाशादि भूतोंके नष्ट होनेसेभी आप नष्ट
नहीं होता है ॥ २१ ॥ सोई अव्यक्त अक्षर है याने अक्षरहीको
अव्यक्त कहतेहैं अब अक्षर किसको कहतेहैं सो सुनौ बारहे अ-
ध्यायमें प्रथम श्रीकृष्णभगवानने मध्यावेश्यमनोयेमांइस श्लो-
ककरिके आपके उपासकोंका श्रेष्ठत्व कहा फिरि येत्वक्षरमनि
र्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते इस श्लोककरिके यह कहाकि प्रत्यगात्म
स्वरूपकीभी उपासनावाले मेरेही प्राप्त होतेहैं औ पंद्रहे अ-
ध्यायमेंभी क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उत्तमः पुरुष
स्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ इन वाक्योंसे यह निश्चय भया की

इहां अव्यक्त औ अक्षर ये दोनों नामोंसे आत्माहीको कहा इसी आत्माको वेदज्ञजन परम गति कहते हैं (यः प्रयातित्यजन् देहं स याति परमां गतिं) इहांभी परमगतिशब्दकरिके देखाया भया अक्षरही है अर्थात् प्रकृतिसंसर्गसे निर्मुक्त औ आपके शुद्ध स्वरूपमें स्थितजो आत्मा वही परमगति है याने आत्मस्वरूप में स्थितिहीको परमगति कहते हैं क्योंकि जिस आत्मस्वरूप को प्राप्त व्हेके फिरि संसारमें नहीं आते हैं उसीसे वह मेरा परम याने उत्तम धाम है याने वासस्थान है मैं उसका अंतर्दामी हौं एक मेरा वासस्थान प्रकृति दूसरा जीव सो जीवात्मा उत्तम स्थान है ॥ २१ ॥

मूलम्.

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥

यस्यांतस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततं ॥ २२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ भूतानि यस्य अंतस्थानि सन्ति इदं सर्वं येन ततं सः परः पुरुषः अनन्यया भक्त्या लभ्यः ॥ २२ ॥

टीका.

कैवल्य प्राप्तिवालेकी मुक्ति कहे अब ज्ञानीको जो ईश्वर प्राप्तिरूप सुख है उसका उपाय कहते हैं हे भर्जुन ये सर्व जड़ चेतनभूत प्राणी जिसके अंगोंमें हैं जैसे कहा है कि (मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव) औ जिस करिके यह सर्व जगत् विस्तृत हुवा है सो पर पुरुष अनन्यभक्तिकरिके प्राप्त होता है अनन्यभक्तिका लक्षण यह [अनन्यचेताः स ततं यो मां स्मरति नित्यशः] इत्यादि ॥ २२ ॥

मूलम्.

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥

प्रयातायां तितं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

अन्वयः

यत्र काले प्रयाताः योगिनः अनावृत्तिं च आवृत्तिं एव
यांति तं कालं वक्ष्यामि ॥ २३ ॥

टीका.

हे अर्जुन जिस कालमें अर्थात् जिस मार्गमें गये भये योगी अपुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं औ जिसमें पुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं वह काल मैं कहता हौं अर्थात् वह मार्ग कहता हौं ॥ २३ ॥

मूलम्.

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणं ॥

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

अन्वयः

यत्र अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः षण्मासाः उत्तरायणं
तत्र प्रयाताः ब्रह्मविदः जनाः ब्रह्म गच्छन्ति ॥ २४ ॥

टीका.

जिस कालमें याने जिस मार्गमें उस कालाभिमानि देवता अग्नि औ ज्योति है याने प्रकाश कहै ओ दिन तथा शुक्ल पक्ष ओ छ महीने उत्तरायण अर्थात् इन सब कालोंके अभिमानि देवताओंके मार्गमें गये याने मृत्यु प्राप्त व्हैके गये हुये ब्रह्मके जाननेवाले ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्.

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनं ॥

तत्रचांद्रमसंज्योतिर्योगीप्राप्यनिवर्तते ॥ २५ ॥

अन्वयः

धूमः रात्रिः तथा कृष्णः षणमासाः दक्षिणायनं योगी तत्र
चांद्रमासं ज्योतिः प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

टीका.

धूम औ रात्रि तथा कृष्णपक्ष छ महिना दक्षिणायन अर्थात्
इन सबके अभिमानी देवतोंकरिके युक्त जो मार्ग तिसमें जा-
यके योगी स्वर्गमें यज्ञादिफल भोगिके फिरिभी जन्मते हैं ॥ २५ ॥

मूलम्.

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥

एकया यात्यनावृत्तिमन्यया वर्तते पुनः ॥ २६ ॥

अन्वयः

एते शुक्लकृष्णे गती जगतः शाश्वते मते एकया यना
वृत्तिं याति अन्यया पुनः आवर्तते ॥ २६ ॥

टीका.

यै जो शुक्ल औ कृष्ण गति ते जगतमें सदाही हैं परंतु एक शु-
क्ला गति है जिससे मोक्ष औ दूसरीसे पुनः जन्म होता है ॥ २६ ॥

मूलम्.

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यतिकश्चन ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

अन्वयः

हे पार्थ एते सृती जानन सन् कश्चन योगी न मुह्यति त-
स्मात् हे अर्जुन त्वं सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भव ॥ २७ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र इन गुह्या और कृष्णा दोनों गति जानताहुवा-
कोई योगी मोहको प्राप्त नहीं होता है इसते अर्जुन तुम सर्व-
कालमें योगयुक्त होउ ॥ २७ ॥

मूलम्.

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्ट-
म् ॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्था-
नमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

अन्वयः

नरः इदं विदित्वा ततः वेदेषु यज्ञेषु च तपस्सु च दाने-
षु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टं तत्सर्वं अत्येति च योगी भूत्वा
परं आद्यं स्थानं उपैति ॥ २८ ॥

टीका.

मनुष्य इन सप्तम और अष्टम दोनों अध्यायोंमें कहेहुये भ-
गवानके महात्मको जानिके फिरि वेदमें अध्ययनादि करिके
यज्ञमें अनुष्ठानादि करिके तपमें शरीरशोषणादि करिके दानमें
सत्पात्रके संतोष करिके जो पुण्य कहा है उस सर्वको उल्लंघन-
करिके याने उनसेभी श्रेष्ठफल पाइके फिरि योगी याने ज्ञानी
वहैके उत्तम आदिस्थान याने विष्णुपदको प्राप्त होय है ॥ २८ ॥

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो
नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसादक
तायां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां अष्टमोऽ
ध्यायः ॥ ८ ॥

मूलम्.

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥ ज्ञानं वि
ज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वामोक्षयसे शुभात् ॥ १ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन इदं तु गुह्यतमं विज्ञानसहितं ज्ञानं ते अनुसूय
वे प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्षयसे ॥ १ ॥

टीका.

सप्तम औ अष्टममें कहा कि मेरा जो परमेश्वरतत्त्व है सो भ-
क्तिही करिके प्राप्ति होने योग्य है अब नवममें आपका जो अचित्य
ऐश्वर्य औ भक्तीका श्रेष्ठ प्राभाव सो कहते हैं अथवा पूर्वाध्याय-
में उपासक भेदों के निबन्ध कहे औ नवममें परमपुरुषका माहा-
त्म्य औ ज्ञानियों की विशेषता वर्णन करिके भक्तिरूप उपासना
का स्वरूप कहते हैं जैसे कि हे अर्जुन यह जो अतिगौप्य भक्तिरूप
प औ उपासनसंज्ञक ज्ञान सो विज्ञान जो उपासना की गतीका
विशेष ज्ञान तिस करिके संयुक्त मेरी निंदा करिके रहित जो तुम
तिनको मैं कहता हौं याने बारंवार मैं आपना माहात्म्य अप-
ने ही मुखसे कहता हौं तौ भी तुम मेरी निंदा नहीं करते हौ इस
वास्ते कहता हौं जिसको जानिके तुम अशुभ संसारसे छूटौगे ॥ १

मूलम्.

राजविद्याराजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमंधर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

अन्वयः

इदं राजविद्याराजगुह्यं पवित्रं उत्तमं प्रत्यक्षावगमं ध-
र्म्यं कर्तुं सुसुखं अव्ययं अस्ति ॥ २ ॥

टीका.

यह भक्तिरूप ज्ञान विद्या औ गुप्तपदार्थों में भी राजा याने

सर्वोपरी है औ पवित्रकारक उत्तम औ प्रत्यक्ष फल धर्मयुक्त करनेकोभी सुखसहित औ नाशरहित है अर्थात् मेरी प्राप्तिको करायके आपभी नष्ट नहीं होता है ॥ २ ॥

मूलम्.

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥ अप्राप्य
मां निवर्तते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे परंतप अस्य धर्मस्य अश्रद्धधानाः पुरुषाः मां अप्राप्य मृत्युसंसारवर्त्मनि निवर्तते ॥ ३ ॥

टीका.

हे शत्रुनको संतापितकारक अर्जुन इस उपासनरूप धर्मकी श्रद्धाको नहीं धारण करनेवाले पुरुष मेरेको नहीं प्राप्त वहैके मृत्युरूप संसारमार्गमें वर्तमान होते हैं ॥ ३ ॥

मूलम्.

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥ मत्स्थानि
सर्वभूतानि न चाहंतेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥ न च
मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरं ॥ भूतभृन्न
च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

अन्वयः

इदं सर्वं जगत् अव्यक्तमूर्तिना मया ततं सर्वं भूतानि मत्स्थानि च अहं तेषु अवस्थितः न ॥ ४ ॥ च भूतानि मत्स्थानि न इति मे ऐश्वरं योगं पश्य भूतभवानः मम आत्मा भूतमृत् च भूतस्थः न ॥ ५ ॥

टीका.

यह सर्वजगत् अव्यक्तमूर्ति याने सूक्ष्म अंतर्यामीस्वरूप मेरे

करिके व्याप्त है इसवास्ते सर्व चराचर भूतप्राणीमात्र मेरे स्वाधीन हैं औ मैं उनके स्वाधीन नहीं हों अर्थात् मेरा उपकार उन पर है उनका मेरे पर नहीं है ॥ ४ ॥ सर्व भूतप्राणीमात्र जैसे घट में जल तैसे मेरे में नहीं है यह ऐसा मेरा ईश्वरसंबंधी योग देखौ सर्वभूतोंका पालनेवाला ऐसा मेरा आत्मा जो मन अथवा शरीररूप प्रत्यगात्मा सो भूतोंके विषे नहीं है याने भूतोंमें अहंकार युक्त नहीं है अथवा मैं सब भूतोंका पालक हों औ भूतोंमें नहीं हों क्योंकि मेरे मनोमयसंकल्पहीसे भूतोंमेंकी रक्षा होती है ॥ ५ ॥

मूलम्.

यथाकाशस्थितोनित्यं वायुः सर्वत्र गोमहान् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

अन्वयः

यथा महान् वायुः नित्यं आकाशस्थितः सर्वत्र गः भवति तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय ॥ ६ ॥

टीका.

जैसे महान् वायु नित्यप्रति निरालंब आकाशमें स्थित भयाहुआ सर्वत्र विचरता है अर्थात् उसका आधार मैं हों मेरे अवलंबसे स्थितविचरता है तैसे ही ये सर्वभूतप्राणी मेरे हीमें याने मेरे अवलंबमें जानौ अर्थात् इनकोभी मैंही धारण करि रहा हों ऐसा जानौ इहां प्रमाणकेवास्ते श्रुतिलिखते हैं (एतस्य वा अक्षरस्य प्रज्ञासने गार्गि सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः ॥ भीषास्माद्वाग्निश्चंद्रश्च सृत्युर्धावति पंचमः ॥ और भी वेदवादी कहते हैं जैसे कि ॥ मेघोदयः सागरसन्निवृत्तिरिदोर्विभागः स्फुरितानि वायोः ॥ विद्युद्विभंगो गतिरुष्णरश्मोर्विष्णोर्विचित्राः प्रभवन्ति मायाः इति ॥ ६ ॥

मूलम्.

सर्वभूतानिकौंतेयप्रकृतियांतिमामिकां ॥ कल्प
क्षयेपुनस्तानिकल्पादौविसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय कल्पक्षये सर्वभूतानि मामिकां प्रकृतिं यांति
कल्पादौ अहं तानि पुनः विसृजामि ॥ ७ ॥

टीका.

प्रथम कहाकि भगवानने संकल्पहीसे सर्वकी स्थिति है औ
अब यह कहते हैं कि उत्पत्ति औ प्रलयभी उन्हीकेसंकल्पसे हैं
हेकुंतिपुत्र कल्पक्षय याने ब्रह्माके सौवर्ष पीछे ब्रह्माके भी प्रलय
कालमें सर्वभूतप्राणीमात्र आपआपके कारणों सहित मेरी
प्रकृति याने मेरा शरीरभूत सूक्ष्मरूप जिसको तमः भीकहते हैं
उसमे लीन होतेहैं औ कल्पकी आदिमें मै उनको फिर उत्पन्न
करता हौं इहांप्रमाण मनुवाक्य लिखते हैं(आसीदिदंतमोभूतं
सोभिध्यायशरीरात्स्वात) इति श्रुतिभी लिखतेहैं(यस्याव्यक्तं
शरीरं अव्यक्तमक्षरेलियते अक्षरंतमसिलीयते तमः परे देवेएकी
भवति तमआसीत् तमसागूढमग्रेप्रकेतं) इतिचप्रमाणं ॥ ८॥

मूलम्.

प्रकृतिंस्वामवष्टभ्यविसृजामिपुनःपुनः ॥ भूत
ग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

अन्वयः

स्वां प्रकृतिं अवष्टभ्य प्रकृतेः वशात् अवशं इमं कृत्स्नं
भूतग्रामं पुनः पुनः विसृजामि ॥ ८ ॥

टीका.

मै अपनी प्रकृतिके अनुकूल व्हाके प्राचीनस्वभावके वश जो

यह सर्वभूतसमूह तिसको बारंवार रचताहैं अथवा यह समग्र भूतसमूह मेरी गुणमयी प्रकृतिके वशहैं इसवास्ते यह स्वतः अवश है इसको मैं समय समयमें सृजता हों ॥ ८ ॥

मूलम्.

नचमांतानिकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥ उदा

सीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ ९ ॥

अन्वयः

हेधनंजय तेषु कर्मसु असक्तं च उदासीनवत् आसी नं मां तानि कर्माणि न निबध्नन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

जब आपही ऐसी विषम सृष्टिको रचतेहौ याने कोईको श्रेष्ठ औ कोईको नीच दुःख उत्पन्न करतेहौ तब वैषम्य औ निर्दयत्वदोष तुझारेमें आवैगे जब तुमकोभी बंधन प्राप्त करैगे तहां कहतेहैं कि हे धनंजय मैं उन कर्मोंमें आसक्त नहीं औ उदासीन याने इच्छाद्वेषादि रहित सरीखा स्थित हों ऐसे मेरेको वै कर्म नहीं बंधन करि सकते हैं ॥ ९ ॥

मूलम्.

मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥

हेतुनानेनकौंतेयजगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

अन्वयः

हेकौंतेय मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सचराचरं जगत् सूय- ते अनेन हेतुना जगत् विपरिवर्तते ॥ १० ॥

टीका.

मैं जब सर्वका द्रष्टा व्हैके स्थितहों तब यह प्रकृति च-

राचरको उत्पन्न करे है इसी कारणसे जगत् नाना प्रकारका उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

मूलम्.

अवजानंति मां मूढा मानुषी तनुमास्थितं ॥ प
रं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरं ॥ ११ ॥ मोघा
शामोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥ राक्षसी
मासुरी चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥ महा
त्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥ भजं
त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययं ॥ १३ ॥

अन्वयः

राक्षसीं च आसुरीं एव मोहिनीं प्रकृतिं श्रिताः अत
एव मोघाशाः मोघकर्माणः मोघज्ञानाः विचेतसः भूत-
महेश्वरं मम परं भावं अजानंतः मूढाः मानुषीं तनुं
आस्थितं मां अवजानंति ॥ ११ ॥ १२ ॥ तु दैवीं प्रकृ-
तिं आश्रिताः महात्मानः हे पार्थ मां भूतादिं अव्ययं
ज्ञात्वा अनन्यमनसः भजंति ॥ १३ ॥

टीका.

जो राक्षसी औ आसुरीही मोह करनेवाली प्रकृतिको ग्रह-
ण करि रहे हैं इसीसे वै निष्फल आशाके करनेवाले औ नि-
ष्फल कर्म करनेवाले औ निष्फल ज्ञान जिनका औ इसीसे वि-
क्षिप्त है चित्त जिनका इत्यादिकारणोंकरिके मेरा भूतोंका महेश्वरत्व नहीं जानते हैं याने मैं ईश्वरोंकाभी ईश्वर हों इसको नजानते भये मूढ परमकरुणासे मनुष्यशरीर जो मैंने जगत् रक्षाकेवास्ते धारण किया है ऐसा जो मैं तिसकी अवज्ञा करते हैं

याने और मनुष्योंके समान जानते है ॥ ११ ॥ १२ ॥ औ जो है
वीप्रकृतीको प्राप्त भये हैं वै महात्माजन हे अर्जुन मेरेको सर्वभू
तोंका आदि याने बीज औ अविनाशी जानिके अनन्यमन
याने दुसरेमें मन न लगाते भये मेरेकोही भजते हैं ॥ १४ ॥

मूलम.

सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥ नमस्यं
तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

अन्वयः

सततं मां कीर्तयंतः च दृढव्रताः यतंतः च भक्त्या मां नम-
स्यंतः एव नित्ययुक्ताः संतः मां उपासते ॥ १४ ॥

टीका.

महात्मा कैसे भजते हैं सो कहैं हैं निरंतर मेरेही गुण
नामोंका कीर्तन करते भये औ दृढसंकल्पकरिके मेरे पूजना-
दिकमें यत्न करते भये औ भक्ती करिके मेरेहीको साष्टांग नम-
स्कार करते भये ऐसे नित्यही मेरे समागमकी इच्छा करते
भये मेरी उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

मूलम.

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ॥ एक-
त्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखं ॥ १५ ॥

अन्वयः

अन्ये एकत्वेन च पृथक्त्वेन एवं बहुधा विश्वतो मुखं
मां ज्ञानयज्ञेन यजंतः संतः उपासते ॥ १५ ॥

टीका.

प्रथमजो कीर्तिनादिकरिके भजते हैं उनसे दूसरे महात्मा लो
क एकत्व अर्थात् यह जड़चैतन्य जगत् सर्व भगवानका शरीर है

इसवास्ते सर्व भगवान्ही है ऐसे एकत्व मानिके मेराहि कीर्त्तन अर्चनादि करते हैं औ पृथक्त्वेन इंद्रादिकोंका आराधन करिके मेरेअर्पण करते हैं अथवा एकत्व जो मित्रभावउस मित्रभाव रूप एकत्वकरिके सत्कारपूर्वक उपासना करते हैं जैसे सुग्रीवादिकपृथक्क जो दासभाव उसकरिके आराधन करते भये उपासना करते हैं जैसे हनुमान इत्यादिक ऐसेही बहुधा कोई वात्सल्य औगुंगार इत्यादिक भावनासे नानाविधसे मेरा प्यारकरतें भये पूजन करिके उपासना करते हैं कोई विश्वतोमुखं याने सर्व त्रमेरेको जानिके सर्वसे मित्रता औ दीनोंपर दया इत्यादि ज्ञानरूप यज्ञसे मेरा आराधन करते भये उपासना करते हैं ॥ १५ ॥

मूलम्.

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधं ॥ मंत्रोहमह
मेवाज्यमहमग्निरहं हुतं ॥ १६ ॥

अन्वयः

क्रतुः अहं एव यज्ञः अहं एव स्वधा अहं एव औषधं अहं
एव मंत्रः अहं एव आज्यं अहं एव अग्निः अहं एव हुतं
अहं एव ॥ १६ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्ण भगवान् आपके विश्वरूप कहते हैं याने सर्व विश्व मेराही शरीर है यह कहते जैसे क्रतुमैही हों अर्थात् अग्नि ष्टोमादिक श्रौतयज्ञरूपमैही हों यज्ञयाने स्मार्त्त पंचमहायज्ञरूपमैही हों स्वधा पितृनके अर्थ श्राद्धादिक औषध अन्न मंत्र आज्य होमतामग्नी अग्नि औ होम ये सर्वरूप मैही हों ॥ १६ ॥

मूलम्.

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥

वेद्यं पवित्रमोंकारऋक्सामयजुरेव च ॥ १७ ॥

अन्वयः

अस्य जगतः पिता माता धाता पितामहः वेद्यं पवित्रं
ओंकारः ऋक् साम च यजुः अहं एव ॥ १७ ॥

टीका.

इस स्थावरजंगमरूप जगत्का पिता माता धारण करनेवाला दादा इनरूप मैही हों औ वेदमें पवित्र कारक अथवा आनिबेजोग औ पवित्रकारक जो वस्तु है सो मैही हों औ ओंकार तथा ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद इनरूपभी मैही हों ॥ १७ ॥

मूलम्.

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥ प्र
भवप्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययं ॥ १८ ॥

अन्वयः

अस्य जगतः गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्
प्रभवप्रलयस्थानं निधानं अव्ययं बीजं अहं एव ॥ १८ ॥

टीका.

इस जगत्की गति जो गमन औ भर्ता पोषणकर्ता प्रभुस्वामी साक्षी शुभाशुभकर्मोंका साक्षी निवास रहनेका स्थान शरण इष्टकी प्राप्तिकारक औ अनिष्टका निवारक अथवा भयसे रक्षक सुहृत् प्रत्युपकारविना हितकारक प्रभवप्रलयस्थान याने उत्पत्तिनाशका स्थान निधान धारणकरनेका स्थल औ विनाशरहित सर्व जगत्का कारणभी मैही हों ॥ १८ ॥

मूलम्.

तपाम्यहमहं वर्षे निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अहं तपामि अहं वर्षं निगृह्णामि च उत्सृजामि
च अमृतं च मृत्युः च सत् च असत् अहं एव ॥ १९ ॥

टीका.

हे अर्जुन अग्नि औ सूर्यरूप व्हेके मैही तपता हों औ ग्रीष्मा
दिक ऋतुनमें मैही वर्षाको आकर्षण करता हों औ वर्षाकालमें
वर्षाको त्यागता हों याने वर्षता हों औ अमृत जिसकरिके जीव
ते हैं मृत्यु याने जिसकरिके मरते हैं सो उनरूपभी मैही हों अ
ब बहुत कहनेमें क्या है सत् जो वर्तमान औ असत् जो व्यतीत
भया औ होयगा अथवा सत् स्थूल असत् सूक्ष्म ऐसे इस जगत
की सर्व अवस्थामें जडचेतनात्मक मैही हों इसवास्ते
बहुधा नामरूपविभागसे पृथक्त्व करिके औ सर्वांतर्यामित्वसे
एकत्वज्ञानकरिके महात्मा मेरी उपासना करते हैं ॥ १९ ॥

मूलम्.

त्रैविद्यामांसोमपाः पूतपापायज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गं तं प्रार्थ
यन्ते ॥ ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्या
नृदिविदेवभोगान् ॥ २० ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं
विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति ॥ एवं त्रयी
धर्ममनुप्रपन्ना गता गतं कामकामालभन्ते ॥ २१ ॥

अन्वयः

त्रैविद्याः सोमपाः पूतपापाः मां यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गं तं प्रार्थ
यन्ते ते पुण्यं सुरेन्द्रलोकं आसाद्य दिवि दिव्यान् देवभो
गान् अश्नन्ति ॥ २० ॥ ते तं विशालं स्वर्गलोकं भुक्त्वा पुण्ये

क्षीणे सति मर्त्यलोकं विशन्ति एवं त्रयीधर्मे अनुप्रपन्नाः
कामकामाः गतागतं लभन्ते ॥ २१ ॥

टीका.

ऐसे महात्मा ज्ञानीलोगोंकी रहनि औ व्यवहार कहा अ
ब अज्ञानी जो काम्य कर्म करनेवाले तिनका रहन चलन क-
हते हैं त्रैविद्या याने ऋक् यजुः साम ऐसे तीन विद्या इन ती
नों विद्याकरिके जो प्रतिपादन किया कर्म उसको त्रिविद्य कह
ते हैं औ उसकर्महीके केवल निष्ठाधार्योंको त्रैविद्य कहते हैं
उन कर्मनिष्ठोंमें सकामी केवल कर्मनिष्ठ औनिष्कामी त्रैय्यं
तनिष्ठ ते श्रेष्ठ तहां सकामी पुरुष केवल इंद्रादि यज्ञशेष सोम
पान करिके निष्पाप हुये भये उन इंद्रादिरूप मेरा यजन करि
के मेरेको उनमें न जानतेभये स्वर्गकी प्राप्ति मांगते हैं फिरि
वै पुण्यरूप इंद्रलोकको प्राप्तहैके उस स्वर्गमें दिव्य देवतोंके
भोग भोगते हैं ॥ २० ॥ फिरि वै वह विशाल स्वर्गलोक याने
स्वर्गके सुखको भोगिके पुण्यके क्षय होनेसे फिरि मर्त्यलोकमें
प्रवेश करते हैं ऐसे केवल वेदत्रयी धर्मको वारंवार करते भये स
कामी लोग गतागत याने स्वर्ग जाना फिरि मर्त्यलोकमें आ
ना फिरि जाना फिरि आना ऐसा फल पावते हैं ॥ २१ ॥

मूलम्.

अनन्याश्रितयंतोमांयेजनाः पर्युपासते ॥

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहं ॥ २२ ॥

अन्वयः

येजनाः अनन्याः मां चिंतयन्तः संतः मां पर्युपासते ते
षां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं अहं वहामि ॥ २२ ॥

महात्मा जन तौ निरतिशय प्रियरूप मेरा चिंतवन करि
के मेरेको प्राप्त वहैके फिरि नही जन्मते हैं ऐसे उनका विशेष
देखाते हैं जे अनन्य याने मेरे चिंतवन विना दूसरा प्रयोज
न जिनके नही ऐसे मेरा चिंतवन करनेवाले जे लोग मेरा उ
पासन करते हैं उनु नित्य मेरा संयोग चाहनेवालोंका बोग
जो मेरी प्राप्ति औ क्षेम जो अपुनरावृत्ति अथवा योग धना
दिलाभ क्षेम धनादिकारक्षण ऐसे इह लोक औ परलोकमें
सुखको प्राप्तिकारक मैही हौं ॥ २२ ॥

मूलम्.

येप्यन्यदेवताभक्तायजंतेश्रद्धयान्विताः ॥

तेपिमामेवकौंतेययजंत्यविधिपूर्वकं ॥ २३ ॥

अन्वयः

ये अन्यदेताभक्ताः अपि श्रद्धया अन्विताः यजंते हे
कौंतये ते अपि मां अविधिपूर्वकं भजंति ॥ २३ ॥

टीका.

जे पुरुष अन्य इंद्रादिक देवतोंकेभी भक्त श्रद्धायुक्त उनका
यजन करते हैं वैभी मेरेहिको भजते हैं परंतु विधिपूर्वक या
ने मेरेको मुख्य जानिके नही भजते है जो उन इंद्रादिकोंका
अंतर्ग्रामी मेरेको जानिके वह यज्ञफल मेरेको अर्पण करें तो
मुक्त होय परंतु मेरेको नजाननेसे फिरि जन्मताहैं ॥ २३ ॥

मूलम्.

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥ न तु माम
भिजानंतितत्त्वेनातश्च्यवंतिते ॥ २४ ॥

अन्वयः

हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुः अहं एव तु ते मां तत्त्वेन

न अभिजानन्ति अतः कारणात् ज्यवन्ति ॥ २४ ॥

टीका.

जिसवास्ते कौं सर्व यज्ञोंका भोक्ता औ स्वामि मैही हौं प
रंतु वै मेरेको ऐसा निश्चय करिके जानते नहीं इसवास्ते जन्म
मरणको फिरिभी प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्.

यांतिदेवव्रतादेवान्पितृन्यांतिपितृव्रताः ॥ भू
तानियांतिभूतेज्यायांतिमद्याजिनोऽपिमां ॥ २५ ॥

अन्वयः

देवव्रताः देवान् यांति पितृव्रताः पितृन् यांति भूतेज्याः
भूतानि यांति मद्याजिनः अपि मां यांति ॥ २५ ॥

टीका.

अहो यह बड़ा आश्चर्य है की एकही कर्ममें संकल्पमात्रसे
पुनरावृत्ति औ अपुनरावृत्तिकीभी प्राप्ति होती है तहां कहते हैं
इहां भक्तिका कारण है जैसेकी जिसकी भक्तिका संकल्पइसीको
प्राप्ति केवल इंद्रादिदेवतोंकी भक्तिपूर्वक यजन करैतौ उन्ही दे
वतोंको प्राप्तहोय केवल पितृभक्त पितृनको प्राप्तहोय और भूत
प्राणीमात्रमें जिसजिसकी भक्तीसे सेवाकरै उसीकी समताको
प्राप्त होय औ मेरी भक्तिपूर्वक सर्व यज्ञादि कर्म करै तौ मेरेको
प्राप्तहोय वै इंद्रादिक सर्व अल्पकालस्थायी हैं औ मैं सदा
एकरस हौं इसवास्ते उनका उपासक फिरि जन्मता है औ मे
रा भक्त अपुनरावृत्तिको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

मूलम्.

पत्रंपुष्पफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ॥ त
दहंभक्त्युपहतमश्रामिप्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

अन्वयः

यः पत्रं पुष्पं फलं तोयं मे भक्त्या प्रयच्छति तत् पत्रा-
दिकं प्रयतात्मनः भक्त्युपहृतं अहं अश्रामि ॥ २६ ॥

टीका.

अब आपकी भक्ति करनेमें अति सुलभता देखाते हैं जो को
ई पत्र पुष्प फल औ जल मेरेको भक्तिकरि के युक्त समर्पण करता
है सो पत्रादिक शुद्धचित्तभक्तका अर्पण किया भया मै स्वीका-
र करता हौं यह नहीं कि क्षुद्रदेवतों सरीखा जो सामग्रीमें कुछ भी
कमती भया तौ क्रोध करें इसवास्ते मै अतिसुलभ हौं ॥ २६ ॥

मूलम.

यत्करोषियदश्रासियज्जुहोषिददासियत् ॥

यत्तपस्यसिकौंतेयतत्कुरुष्वमदर्पणं ॥ २७ ॥

शुभाशुभफलैरेवंमोक्षयसेकर्मबंधनैः ॥ संन्यास

योगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय यत् करोषि यत् अश्रासि यत् जुहोषि यत् द-
दासि यत् तपस्यासि तत् मदर्पणं कुरुष्व ॥ २७ ॥ एवं
कर्मबंधनैः शुभाशुभफलैः मोक्षयसे एवंच संन्यासयोग
युक्तात्मा त्वं विमुक्तः सन् मां उपैष्यसि ॥ २८ ॥

टीका.

मै अतिसुलभ हौं इसवास्ते हे कुंतिपुत्र तूम जो करौ जोखा
उ जो होमकरौ जो दान देऊ जो तप करौ सो सर्व लौकिक वैदि-
ककर्म मेरेको अर्पण करौ ॥ २७ ॥ ऐसे करनेसे कर्म बंधन करनेवा-
ले शुभाशुभकर्मफलोंसे छूटोगे औ ऐसेही यह कर्मफलअर्पणरू-
पसंन्यासयोगमें मनको युक्त किये भये कर्मबंधनसे छूटिके मेरे

को प्राप्त होउगे ॥ २८ ॥

मूलम्.

समोहंसर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ॥ ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहं ॥ २९ ॥

अन्वयः

अहं सर्वभूतेषु समः अतः मे द्वेष्यः न अस्ति न प्रियः अस्ति तु ये मां भक्त्या भजन्ति ते मयि संति च तेषु अपि अहं अस्मि ॥ २९ ॥

टीका.

मेरा सर्वलोकविलक्षण स्वाभाव सुनौ कि मैं सर्व भूतप्राणी मात्रमें समवर्ती हौं इसवास्ते मेरे शत्रुभी नहीं औ मित्रभी नहीं तौभी जो मेरेको भक्तिकारिके भजते हैं वै मेरे हृदयमें वसते हैं औ मैं उनके हृदयमें वसता हौं ॥ २९ ॥

मूलम्.

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव समंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ॥
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

अन्वयः

चेत् यः सुदुराचारः अपि अनन्यभाक् मां भजते सः साधुः एव मंतव्यः हि यतः सः सम्यक् व्यवसितः ॥ ३० ॥ सः क्षिप्रं धर्मात्मा भवति च शश्वत् शान्तिं निगच्छति हे कौंतेय त्वं प्रतिजानीहि मद्भक्तः न प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

टीका.

जो कि अति दुराचारीभी होय याने स्वजातीय धर्मोंका

आचरण त्यागिके अन्यधर्म आचरण करता होय सोभी जो पुरुष मेरा अनन्यभक्त वहैके मेरेको भजता होय तौ वह साधु है ऐसा मानना क्योंकि उसने मेरा भली प्रकारसे निश्चय किया है ॥ ३० ॥ अहो शास्त्रवाक्य है कि (नाविरतोदुश्चरितान्नाशांतो नासमाहितः॥नाशांतमनसोवापिप्रज्ञानेनैवमाप्नुयात्) अर्थ जो दुराचार नहीं छोड़ते हैं औ न शांत है औ न सावधान है औ न जिसका मन शांत भया है सो ज्ञान करिके ईश्वरको नहीं पावता है तौ दुराचारी साधु कैसे माना जायगा तहां कहते हैं कि वह मेरे भजनके प्रभावसे तत्काल धर्मात्मा होता है शश्वच्छांति जो अपुनरावृत्तिरूप मेरी प्राप्ति उसको प्राप्त होय है हे कुंती पुत्र तुम सभामें ऐसी भुजा उठायके प्रतिज्ञा करौ कि मेरा भक्त नाशको नहीं प्राप्त होता है याने संसारी नहीं होता है ॥ ३१ ॥

मूलम्.

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिं ॥
॥ ३२ ॥ किंपुनर्ब्राह्मणाः पुण्याभक्तराजर्षय
स्तथा ॥ अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भज
स्व माम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हे पार्थ मां व्यपाश्रित्य ये पापयोनयः अपि स्युः तथा स्त्रियः वैश्याः शूद्राः ते अपि परां गतिं यांति ॥ ३२ ॥ ये तु पुण्याः ब्राह्मणाः च तथा राजर्षयः भक्ताः ते परां गतिं यांति इति पुनः किं अतः अनित्यं असुखं इमं लोकं प्राप्य मां भजस्व ॥ ३३ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र मेरे आश्रित वहैके जो पापयोनीभी याने अं-
तिज इत्यादिभी हैं तैसे स्त्री वैश्य औ शूद्र वैभी परमगतीको
प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ औ जो पवित्र ब्राह्मण तथा क्षत्रिय मेरे भक्त
वहैके मुक्त होय इसमें कहनाही क्याहै इसवास्ते अनित्य औ
दुःखरूप इस लोकको प्राप्त वहैके मेरेको भजौ ॥ ३३ ॥

मूलम्.

मन्मनाभवयद्भक्तो मद्याजीमांनमस्कुरु ॥ मा
मेवैष्यसियुं त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

अन्वयः

मन्मनाः भव मद्भक्तः भव मद्याजी भव मां नमः कुरु एवं
आत्मानं युंत्स्वा मत्परायणः सन् मां एव एष्यसि ॥ ३४ ॥

टीका.

हे अर्जुन तुम मेरेमें मन लगावौ औ मेरे भक्त होऊ या
ने मेराही स्मरणादिक करौ मेराही यजन करौ मेरेहीको नम
स्कार करौ ऐसे मनको मेरेमें लगायके परम वासस्थानकिये
भये मेरेहीको प्राप्त होउगे ॥ ३४ ॥

मूलम्.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराज
गुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसाद-
कृतायां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां नवमो
ऽध्यायः ॥ ९ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ भूय एव महाबाहो शृणु मे पर

मंवचः ॥ यत्तेऽहंप्रीयमाणायवक्ष्यामिहितका
म्यया ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हेमहाबाहो यत् वचः प्रीयमाणा
य ते हितकाम्यया वक्ष्यामि तत् मे परमं वचः भूयः
एव शृणु ॥ १ ॥

टीका.

सप्तम आदिक तीनि अध्यायोंमें श्रीकृष्ण भगवानने भ-
गवत्तत्त्व औ आप की विभूती वर्णनकी तहां सप्तममें रसोहम
प्सुकौंतेय इत्यादि करिके औ अष्टममें अधियज्ञोऽहमेवात्र
इत्यादि करिके नवममें अहंक्रतुरहंयज्ञ इत्यादि करिके विभूती
संक्षेपसे कही अब दशममें उन्ही विभूतियोंको विस्तार करते
भये स्वभक्तिकीभी अवश्य कर्तव्यता वर्णन करते भये भग-
वान वाले हे महाबाहो जो वाक्य प्रीतिवाले तेरेको मै हितकी
कामना करिके कहौंगा वही मेरा परम वाक्य तुम फिरिभी
सुनो अथवा बारंवार सुनौ ॥ १ ॥

मूलम्.

नमेविदुःसुरगणाःप्रभवंनमहर्षयः ॥ अहमादि
हिंदेवानांमहर्षीणांचसर्वशः ॥ २ ॥

अन्वयः

सुरगणाः मे प्रभवं न विदुः च महर्षयः न विदुः हि यतः
अहं देवानां च महर्षीणां सर्वशः आदिः ॥ २ ॥

टीका.

समस्त देवता मेरे प्रभवको याने प्रभावको अर्थात् मेरे नाम
कर्मस्वरूप औ स्वभावको नहीं जानतेहैं औ महर्षीभी नहीं जा-
नतेहैं क्योंकि मै सर्वदेव औ महर्षी इनौंका सर्व प्रकारसे आदि

हैं जैसेकि उनका स्वरूप औ ज्ञानशक्ति इत्यादिकोंका आदि मैं हों याने उनका देवत्व औ महर्षित्व उन्हींके पुण्यप्रमाणसे महीने दिया है औ परमित ज्ञानभी मैंने दिया है इस वास्ते वै नहीं जानते हैं ॥ २ ॥

मूलम्.

योमामजमनादिंचवेतिलोकमहेश्वरं ॥ असंमूढः सत्येषुसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः

यः मां अजं अनादिं च लोकमहेश्वरं वेत्ति सः सत्येषु असंमूढः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका.

जो मेरेको अजन्मा अनादि औ सर्व लोकोंका महेश्वर ऐसे जानता है सो मनुष्योंमें मोहरहित भयासर्वपापोंसे छूटता है ॥ ३

मूलम्.

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ॥ सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥ अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥ भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अन्वयः

बुद्धिः ज्ञानं असंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः सुखं दुःखं भवः भावः भयं च अभयं एव च ॥ ४ ॥ अहिंसा समता तुष्टिः तपः दानं यशः अयशः एवं पृथग्विधाः भूतानां भावाः मत्तः एव भवन्ति ॥ ५ ॥

टीका.

अब आपकी सर्वलोकमहेश्वरताको प्रसिद्ध दर्शाते हैं बुद्धि इत्यादि तीन श्लोकों करिके. बुद्धि जो सारासार विवेककी निपुणताज्ञानआत्मपरपरमात्मविषयिक ज्ञानअसंमोह अव्याकुलता क्षमा समर्थकोभी सहनशीलता सत्य यथार्थ औप्रियभाषण दम बाह्यइंद्रियोंका वशकरना शम अंतःकरणकासंयमसुख औ दुःखप्रसिद्धहैं भव उत्पत्ति अभाव नाश भय अभय प्रसिद्ध हैं अहिंसा परपीडाकी निवृत्ति समता रागद्वेषादिकका अभाव तुष्टि यथालाभसंतोष तप उपवासादिक दान न्यायसे उत्पन्न किये धनकासत्पात्रको अर्पण करना यश सत्कीर्ती अयश दुष्कीर्ती ऐसे बुद्धिज्ञानदिक अने प्रकारके न्यारे न्यारे सर्वभूतप्राणिमात्रोंके भाव ते वै सर्व मेरेसेहि होतेहैं ॥

मूलम्.

महर्षयःसप्तपूर्वचत्वारोमनवस्तथा ॥ मद्भावा
मानसाजातायेषांलोकइमाःप्रजाः ॥ ६ ॥

अन्वयः

सप्त महर्षयः तेभ्यः पूर्वे चत्वारः महर्षयः तथा मनवः
एते मद्भावाः मानसाः जाताः येषां इमाः प्रजाः लोके
प्रजायन्ते ॥ ६ ॥

टीका.

सप्त मरीचि इत्यादिक महाऋषी औ उनसेभी पूर्वचारि सनकादिक महाऋषी तथा स्वायंभुवादिकमनू ये मेरे संकल्पसदृश करनेवाले हैं क्योंकि ब्रह्मरूप जो मैं उस मेरे मनहीसे उत्पन्न ये हैं जिनकी यह प्रजा पुत्रपौत्रादि औ शिष्य प्राशिष्यादिरूप लोकमें उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम्.

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥ सो
ऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

अन्वयः

यः मम एतां विभूतिं च योगं तत्त्वतः वेत्ति सः अवि-
कंपेन योगेन युज्यते अतः संशयः न ॥ ७ ॥

टीका.

जो पुरुष यह मेरी विभूति याने महर्षी इत्यादिकौंकी उ-
त्पत्ति औ स्वाधीनत्वरूप वैभव औ कल्याणगुणादिरूप
योग इनको जो तत्त्वसे जानै सो अचल भक्तियोगको प्राप्त
होय इहां इस विषयमें संशय नहीं ॥ ७ ॥

मूलम्.

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ इति मत्वा
भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

अन्वयः

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते इति मत्वा भाव-
समन्विताः बुधाः मां भजंते ॥ ८ ॥

टीका.

अब विभूतिज्ञानकी फलरूप जो भक्ति उसै देखते हैं मैं स-
र्वका उत्पत्तिस्थान हौं औ सर्व मेरेहीसे प्रवर्त होते हैं ऐसे मेरे
को जानिके प्रेमसहित ज्ञानिजन मेरेको भजते हैं ॥ ८ ॥

मूलम्.

माञ्छितामद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परं ॥ कथयं
तश्च मां नित्यं तुष्यंति चरमंति च ॥ ९ ॥

अन्वयः

मच्चिताः मद्गतप्राणाः जनाः परस्परं बोधयंतः संतः नि
त्यं मां कथयंतः च तुष्यंतः च रमन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

पूर्व श्लोकमें कहाकि ज्ञानी जन मेरेको भजते हैं सो वै जैसे भजते हैं सो कहते हैं मेरेमें लगा है चित्त औ प्राण जिनका ऐसे लोग मेरे गुणोंको आप आपके अनुभवप्रमाण परस्पर बोध क रते भये मेरेही दिव्य रमणीय गुणोंको नित्य कथन करते हैं औ संतुष्ट होते हैं औ रमन्ति याने निवृत्तिको प्राप्त होते हैं अथ-वा रमन्ति याने मेरे करीभई क्रीडोंको करते हैं जैसे उत्सवों में रामलीला इत्यादिक ॥ ९ ॥

मूलम्.

तेषांसततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकं ॥ ददा
मिबुद्धियोगं तं येन मामुपयांतिते ॥ १० ॥

अन्वयः

सततयुक्तानां प्रीतिपूर्वकं भजतां तेषां तं बुद्धियोगं द-
दामि येन ते मां उपयांतिते ॥ १० ॥

टीका.

निरंतर मेरी प्राप्तिकी इच्छा करि रहे हैं औ प्रीतिपूर्वक मेरे हीको भजते हैं उनको मै वह बुद्धियोग देउंगा जिस बुद्धियो गकरिके वै मेरेको प्राप्त होयगे ॥ १० ॥

मूलम्.

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः ॥ नाशया
म्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

अन्वयः

तेषां एव अनुकंपार्थ आत्मभावस्थः अहं भास्वता ज्ञान-
दीपेन अज्ञानजं तमः नाशयामि ॥ ११ ॥

टीका.

वै जो मेरे भक्त हैं उनहीके अनुग्रहके वास्ते उनकी मनकी
वृत्तिमें स्थित भयाहुवा मैं प्रकाशमान जो मेरा संबंधी ज्ञान-
रूपदीपक उसकरिके जो अज्ञानसे उत्पन्न भया है तम याने
संसाररूप अंधकार इसका नाश करौंगा ॥ ११ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवा-
न् ॥ पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
॥ १२ ॥ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच ॥ हे कृष्ण भवान् परं ब्रह्म परं धाम परमं प-
वित्रं यतः त्वां शाश्वतं दिव्यं पुरुषं आदिदेवं अजं विभुं
आहुः ते के सर्वे ऋषयः तथा देवर्षिः नारदः असितः दे-
वलः च स्वयं एव मे ब्रवीषि ॥ १२ ॥ १२ ॥

टीका.

अर्जुन संक्षेपसे विभूति सुनिके औ विस्तारसे सुननेकी इ-
च्छा करिके अर्जुन भगवानकी स्तुति करते भये बोलेकि हे कृष्ण
तुम परं ब्रह्म औ उत्कृष्ट तेज औ परम पावन हो क्योंकि तुमको
नित्य दिव्यपुरुष औ आदिदेव अजन्मा व्यापक ऐसे कहते
हैं जो कहौगेकि वै कौन तौ वे सर्वऋषी तथा देवऋषी नारद अ-
सित देवल व्यास औ आपभी तौ मेरेसे कहते हो ॥ १२ ॥ १३

मूलम्.

सर्वमेतद्वत्तमन्येयन्मांवदसिकेशव ॥ नहितेभ
गवन्व्यक्तिविदुर्देवानदानवाः ॥ १४ ॥

अन्वयः

हेकेशव यत् मां वदसि तत् एतत् सर्वं ऋतं मन्ये हेभगव
न् ते व्यक्तिं देवाः न विदुः न दानवाः विदुः ॥ १४ ॥

टीका.

हे केशव जो मेरेको आपने आपना प्रभाव कहा सो मैं स
त्य मानता हौं इसीसे हे भगवन् ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य
तेज इन छ भगयुक्त तुझारी प्रगटताको देव औ दानवभी न-
ही जानतेहैं देवोंके रक्षक औ दानवोंके शिक्षक आपही हौ तौ-
भी वै तुझारी प्रकटताको नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥

मूलम्.

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥ भूत
भावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

अन्वयः

हेपुरुषोत्तम हेभूतभावन हे भूतेश हेदेवदेव हेजगत्पते
त्वं आत्मानं आत्मना स्वयं एव वेत्थ ॥ १५ ॥

टीका.

हेपुरुषभ्रेष्ठ हेभूतप्राणीमात्रके उत्पत्तिकारक हेसर्वभूतोंके
ईश्वर हे देवनके देव हे जगतके स्वामिन् आपही आपके म
नकरिके आपके स्वरूपको जानते हौ दूसरा नहीं जानता
है ॥ १५ ॥

मूलम्.

वक्तुमर्हस्य शेषेण दिव्याह्यात्मविभूतयः ॥ या

भिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

अन्वयः

याः दिव्याः आत्मविभूतयः ताः त्वं अशेषेण वक्तुं अर्हसि याभिः विभूतिभिः त्वं इमान् लोकान् व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

टीका.

जो दिव्य आपकी विभूति है उनको तुम अशेषकरिके कहने योग्य हो जिन विभूतियोंकरिके तुम इन लोकोंमें व्याप्य स्थित हो ॥

मूलम्.

कथं विद्यामहं योगीत्वां सदा परिचिंतयन् ॥ के
पुकेषु च भावेषु चिंत्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

अन्वयः

अहं योगी भक्तियोगनिष्ठः सन् च भक्त्या त्वां सदा परिचिंतयन् सन् चिंतनीयं त्वां कथं विद्यां हे भगवन् त्वं मया केषु भावेषु चिंत्यः असि ॥ १७ ॥

टीका.

मैं भक्तियोगमें निष्ठा युक्त हुआ भया तुझारी भक्ति करिके तुझारी सदा चिंतन करता करता चिंतन करने योग्य तुमको कैसे जानौं हे भगवन् तुम मेरे करिके कौन कौन भावमें चिंतन करने योग्य हो ॥ १७ ॥

मूलम्.

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥ भूयः
कथय तत्सि हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतं ॥ १८ ॥

अन्वयः

हेजनार्दन आत्मनः योगं च विभूतिं विस्तरेण भूयः
कथय हि अमृतं शृण्वतः मे तृप्तिः न अस्ति ॥ १८ ॥

टीका.

जो आपने कहा कि मैं सबका उत्पत्तिस्थान हूँ और मे-
रेसे सर्व होते हैं यह सृष्टत्वादियोग जो तुमने संक्षेपसे कहा
सो और विभूति जो उनका प्रवर्त्तत्व सो विस्तारकरिके कहौ
क्योंकि तुझारा माहात्म्यरूप अमृत सुनते सुनते मेरेको
तृप्ति नहीं है ॥ १८ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ते कथयिष्यामि दिव्या
ह्यात्मविभूतयः ॥ प्राधान्यतः कुरु श्रेष्ठ नास्त्यं
तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हंत हे अर्जुन याः दिव्याः आत्म
विभूतयः ताः मे प्राधान्यतः कथयिष्यामि हे कुरुश्रेष्ठ
मे विभूतिविस्तरस्य अंतः नास्ति ॥ १९ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् बड़ी अनुकंपासे अर्जुनको कहते हैं कि हे
अर्जुन जो मेरी दिव्यविभूती हैं वे तुझारेको मैं श्रेष्ठ श्रेष्ठ क-
हौंगो क्योंकि मेरे विभूतिविस्तारका अंत नहीं है विभूति जि
नकरिके प्रवृत्ति होती है वे प्राधान्यसे जैसे पुरोहितोंमें मुख्य
बृहस्पति ऐसे ऐसे श्रेष्ठविभूति कहता हूँ ॥ १९ ॥

मूलम्.

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥ अह
मादिश्च मध्यं च भूतानां मंत एव च ॥ २० ॥

अन्वयः

हेगुडाकेश सर्वभूताशयस्थितःअहंभूतानां आत्माचअहं
भूतानां आदिः च मध्यं च अंतः एव अहं अस्मि ॥ २० ॥

टीका.

प्रथम जो कहि आएकी सर्वका स्रष्टा औ नियंता मै हौं
उसी अर्थको अब स्पष्ट करते हैं हे अर्जुन सर्वभूत मेरे श-
रीररूप हैं उनके आशयनाम हृदयमें आत्मारूप स्थित हौं
आत्मा कहिये शरीरका नियंता मालक तहां प्रमाण; (सर्वस्य
चाहं हृदिसन्निष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥ ईश्वरः सर्वभूता
नां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया
॥ श्रुतिश्चायः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्सर्वेभ्यो भूतेभ्यो तरोयं सर्वाणि भू-
तानि न विदुः ॥ यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यंत-
रोयमयति एष तत्सर्वो तर्काम्यमृतः ॥ य आत्मनितिष्ठन् आत्मनो
तरोयमात्मानं वेद ॥ यस्य आत्मा शरीरं य आत्मानमंतरोयमय-
तिस त आत्मा तर्काम्यमृत इति ॥) इत्यादि प्रमाणों करिके सर्वभू-
त प्राणिमात्र मेरे शरीररूप हैं उनका मै आत्मत्व करिके उनमें
स्थित हौं औ उनका आदि मध्य औ अंतभी महीं हौं ऐसेही
जहां जहां भगवान् कहेंगे कि अमुक मै हौं तहां तहां यह अर्थ है
की ये मेरे श्रेष्ठ विभूतिमें हैं ये मेरे अलि रूपा पात्र हैं नहीं तौ ए-
कमें आप है तौ दूसरोंमें कौन है जो दूसरा भया तौ ईश्वरभी
दूसरा चाहिये इसबास्ते अहं कहनेमें श्रेष्ठत्वही गृहण करना
चाहिये औ शरीरवाची शब्दोंका शरीरी जो उस शरीरका अं-
तर्यामी है उसीमें प्रवृत्ति होती है जैसे कि यह पुरुष प्रथम देव
था अब मनुष्य भया तौ वह शरीरसे देव न भया था परंतु अंगु-
ली शरीरके तरफ करनेसे उस आत्माका बोध भया इसीत
रहसे आत्मा अहं ऐसा कहनेमें अंतर्यामि अर्थ होता है ॥ २० ॥

मूलम्.

आदित्यानामहंविष्णुज्योतिषांरविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी ॥ २१ ॥

अन्वयः

आदित्यानां विष्णुः अहं ज्योतिषां अंशुमान् रविः अहं
मरुतां मरीचिः अहं नक्षत्राणां शशी अहं अस्मि ॥ २१ ॥

टीका.

द्वादश सूर्योमें जो श्रेष्ठ विष्णुनामा सूर्य है उस रूप में हों
प्रकाश मानौमें किरणवान रवि याने सूर्यरूप में हों उंचासमरु-
तमें याने उंचासपवनौमें मरीचिपवनरूप में हों नक्षत्रोंमें
चंद्रमारूप में हों ॥ २१ ॥

मूलम्.

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ॥ इंद्रि-
याणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

अन्वयः

वेदानां मध्ये सामवेदः अहं अस्मि देवानां वासवः अहं
अस्मि इंद्रियाणां मनः अहं अस्मि भूतानां चेतना अ-
हं अस्मि ॥ २२ ॥

टीका.

वेदोंमें सामवेद देवमें इंद्र इंद्रियोंमें मन भूतप्राणीमात्र
में चेतनारूप में हों ॥ २२ ॥

मूलम्.

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसां ॥ वसू-
नां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहं ॥ २३ ॥

अन्वयः

रुद्राणां शंकरः अस्मि च यक्षरक्षसां वित्तेशः वसूनां पाव

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

१९३

कः अहं अस्मि च शिखरिणां मध्ये मेरुः अहं अस्मि ॥ २३ ॥

टीका.

एकादश रुद्रोंमें शंकर यक्षराक्षसोंमें कुबेर अष्टवसुनमें अग्नि शिखरवालोंमें मेरुपर्वतरूप मैं हूँ ॥ २३ ॥

मूलम्.

पुरोधसांच मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिं ॥ सेना
नीनामहं स्कंदः सरसां सागरः ॥ २४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ पुरोधसां मुख्यं बृहस्पतिं मां विद्धि च सेनानी
नां स्कंद अहं सरसां सागरः अहं अस्मि ॥ २४ ॥

टीका.

हे अर्जुन पुरोहितोंमें जो मुख्य पुरोहित बृहस्पति उन
को मेरा श्रेष्ठरूप जानौ सेनापतिनमें कार्तिकस्वामी औ सर
जो स्थिरजलवाले जलाशय हैं उनमें समुद्ररूप मैं हूँ ॥ २४ ॥

मूलम्.

महर्षीणां भृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरं ॥ यज्ञानां
जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

अन्वयः

महर्षीणां भृगुः अहं गिरां एकं अक्षरं अहं यज्ञानां जप
यज्ञः अहं स्थावराणां हिमालयः अहं अस्मि ॥ २५ ॥

टीका.

महर्षिनमें भृगु वाक्योंमें ओंकार यज्ञोंमें जपयज्ञ स्थाव
रोंमें हिमाचल मैं हूँ ॥ २५ ॥

मूलम्.

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥ गंधर्वा

१९४

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

णांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः ॥ २६ ॥

अन्वयः

वर्स वृक्षाणां अश्वथः अहं देवर्षीणां नारदः अहं गंध
र्वाणां चित्ररथः अहं सिद्धानां कपिलः मुनिः अहं अ
स्मि ॥ २६ ॥

टीका.

सर्व वृक्षोंमें पीपर मैं हों देवऋषिमें नारद मैं हों गंध-
र्वोंमें चित्ररथ मैं हों सिद्धोंमें कपिलमुनि मैं हों ॥ २६ ॥

मूलम्.

उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवं ॥ ऐराव
तंगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपं ॥ २७ ॥

अन्वयः

अश्वानां मध्ये अमृतोद्भवं उच्चैःश्रवसं मां विद्धि गजेन्द्रा
णां ऐरावतं मां विद्धि नराणां मध्ये नराधिपं मां विद्धि ॥ २७ ॥

टीका.

घोड़ोंमें जो अमृतमथनसमयमें समुद्रसे उत्पन्न भया है
उच्चैः श्रवा मैं हों ऐसे जानौ हस्तिनमें ऐरावत औ नरोंमें
राजाको मेराही श्रेष्ठ अंग जानौ ॥ २६ ॥

मूलम्.

आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक् ॥ प्रज
नश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः ॥ २८ ॥

अन्वयः

आयुधानां वज्रं अहं अस्मि धेनूनां कामधुक् अहं अ
स्मि च प्रजनः कंदर्पः अहं अस्मि सर्पाणां वासुकिः
अहं अस्मि ॥ २८ ॥

टीका.

आयुधोंमें वज्र मैं हों गाइनमें कामधेनु मैं हों उत्पत्ति कारक काम मैं हों अर्थात् मैं जो केवल इंद्रियसुखके वास्ते भोग भोगते हैं वह कामवासना नीच है औ श्रेष्ठ विभूति गनाते हैं इसवास्ते जनन हेतु कामको विभूतीमें कहा सर्पोंमें याने एकशिरवाले सर्पोंमें वासुकी मैं हों ॥ २८ ॥

मूलम्.

अनंतश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहं ॥ पितृ
णामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहं ॥ २९ ॥

अन्वयः

नागानां अनंतः अहं अस्मि यादसां वरुणः अहं अस्मि
पितृणां अर्यमा अहं अस्मि संयमतां यमः अहं अस्मि ॥ २९ ॥

टीका.

नाग जो अनेकमस्तकवाले सर्प उनमें अनंत याने शेष मैं हों जलवासिनमें वरुण मैं हों पितृनमें अर्यमा पितृनका राजा सो मैं हों दंड देनेवालोंमें यम मैं हों ॥ २९ ॥

मूलम्.

प्रल्हादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहं ॥ मृ
गाणांचमृगेन्द्रोऽहंवैनतेयश्चपक्षिणां ॥ ३० ॥

अन्वयः

दैत्यानां प्रल्हादः अहं अस्मि कलयतां कालः अहं अ-
स्मि च मृगाणां मृगेद्रः अहं अस्मि पक्षिणां वैनतेयः
अहं अस्मि ॥ ३० ॥

टीका.

दैत्योंमें प्रल्हाद मैं हों अनर्थ प्राप्त कारककी गनती करनेवा

१९६

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

लौमें काल मै हौं अथवा वशकरनेवालौमें काल मै हौं मृगन
में सिंह मै हौं पाक्षिनमें गरुड मै हौं ॥ ३० ॥

मूलम्.

पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहं ॥ झषाणां
मकरश्चास्मिस्त्रोतसामस्मिजान्हवी ॥ ३१ ॥

अन्वयः

पवतां पवनः अहं अस्मि शस्त्रभृतां रामः अहं अस्मि
झषाणां मकरः अहं अस्मि स्त्रोतसां जान्हवी अहं अ
स्मि ॥ ३१ ॥

टीका.

पवित्र करनेवालौमें अथवा वेगवालौमें पवन मै हौं शस्त्र
धारिनमें राम मै हौं इहां शस्त्र धारण मात्र विभूति जानना
क्योंकि आदित्यादिक क्षेत्रज्ञ हैं औ राम स्वयं भगवान हैं म
त्स्यइत्यादिकौमें मकर मै हौ जलके प्रवाहवालौमें भागिरथि
गंगा मै हौं ॥ ३१ ॥

मूलम्.

सर्गाणामादिरंतश्चमध्यंचैवाहमर्जुन ॥ अध्या
त्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहं ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन सर्गाणां आदिः अंतः च मध्यं अहं एव विद्या
नां मध्ये अध्यात्मविद्या अहं प्रवदतां वादः अहं ॥ ३२ ॥

टीका.

हे अर्जुन सर्ग जे उत्पत्ति कारक तिनका आदि याने सृष्टि
करनेवालेरूप मै हौं औ अंत संहार करनेवाले जे हैं वैभी मै हौं
औ मध्य याने पालन करनेवालेभी मै हौं सर्व विद्यानमें अ-

ध्यात्मविद्या याने आत्मज्ञानविद्या मै हौं औ वाद जल्प वि-
तंड इन तीनोंमें वाद मै हौं जहां तर्क औ प्रमाणसे अन्यके प-
क्षके दूषण दैके आपका पक्ष स्थापित करै वह जल्प जहां
अन्य पक्षको दूषण देई औ अपकाभी स्थापित न करै वह वि-
तंड जहां जिज्ञासूपनेसे गुरुशिष्यका वाद होय वह वाद है॥ ३२

मूलम.

अक्षराणामकारोऽस्मिद्वंद्वःसामासिकस्य च ॥

अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अन्वयः

अक्षराणां अकराः अहं अस्मि सामासिकस्य मध्ये द्वंद्वः
अहं अक्षयः कालः अहं विश्वतोमुखः धाता अहं अ-
स्मि ॥ ३३ ॥

टीका.

अक्षरोंमें अकार मै हौं सामाससमूहमें द्वंद्वसमास मै हौं
औ कला काष्ठादिरूप अक्षयकाल मै हौं प्रथम जो काल कहा
सो मरण हेतुक जैसे शतसंवत्सर की प्रायः उसको जो गणना
करै उसको कहा इहां अक्षय काल कहते हैं सर्वका धाता याने
स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा मै हौं अथवा धारण पोषण करनेकी श-
क्तिरूप मै हौं अथवा कर्मफलविधातृत्व मै हौं ॥ ३३ ॥

मूलम.

मृत्युःसर्वहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यतां ॥ कीर्तिः

श्रीर्वाक्नारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ॥ ३४ ॥

अन्वयः

सर्वहरः मृत्युः अहं अस्मि च भविष्यतां उद्भवः अहं अ-
स्मि नारीणां कीर्तिः च श्रीः च वाक् स्मृतिः मेधा धृतिः

क्षमा एताः अहं अस्मि ॥ ३४ ॥

टीका.

सर्वस्व हरणोवालोमें मृत्यु मै हौं जो आपके श्रेष्ठत्वकी इच्छा करनेवाले हैं याने अगाडी भला होयगा ऐसा चाहते हैं उनमें उद्भव मै हौं औ स्त्रियोंमें कीर्ति श्रीवाक् स्मृति मेधा धृति क्षमा ये सात देवता हैं जिनके भासमात्रसे मनुष्य श्लाघाको प्राप्त होता है सो इनरूपभी मै हौं याने ये मेरी श्रेष्ठ विभूति हैं ॥ ३४ ॥

मूलम.

बृहत्सामतथासाम्नां गायत्री छंदसामहं ॥ मा
सानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

अन्वयः

साम्नां बृहत्साम अहं छंदसां गायत्री अहं मासानां मार्गशीर्षः अहं ऋतूनां कुसुमाकरः अहं अस्मि ॥ ३५ ॥

टीका.

सामवेदकी ऋचोंमें बृहत्साम मै हौं छंदोबद्ध वाक्योंमें गायत्री मंत्र मै हौं अथवा उक्तादिक छंदोंमें गायत्री छंद मै हौं महीनोंमें मार्गशीर्ष मै हौं ऋतुनमें वसंत मै हौं ॥ ३५ ॥

मूलम.

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहं ॥ ज
योऽस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहं ॥ ३६ ॥

अन्वयः

छलयतां द्यूतं अहमस्मि तेजस्विनां तेजः अहमस्मि जेतृणां जयः अहं व्यवसायिनां व्यवसायः अहं सत्त्ववतां सत्त्वं अहं अस्मि ॥ ३६ ॥

टीका.

छल करनेवालेकामोंमें जो पाशोंसे जुवा खेलते है याने चोपड सो मै हौ तेजस्विनमें तेज मै हौ जीतनवालोंमें जय मै हौ व्यवसाय जो निश्चय सो निश्चयवालोंमें निश्चय मै हौ सत्वजो मनका बडापन सो सत्ववालोंमें सत्व याने म हामनस्त्व अर्थात् मनकी उदारता मै हौ ॥ ३६ ॥

मूलम्.

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः ॥ मु
नीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥

अन्वयः

वृष्णीनां वासुदेवः अहं अस्मि पांडवानां धनंजयः अ
हं अस्मि मुनीनां व्यासः अहं अस्मि कवीनां उशना
कविः अहं अस्मि ॥ ३७ ॥

टीका.

वृष्णीयादवनमें वासुदेव मै हौ इहां वसुदेवपुत्रत्वमात्रविभू
ति जानना पांडवनमें धनंजय याने तुमभी मेरी श्रेष्ठ विभूतिमें
हौ मुनीजो मननकरिके तत्वको देखें उनमें वेदव्यास मै हौ
कवी जे शास्त्रदर्शी अथवा ज्ञानी उनमें शुक्राचार्य मै हौ ॥ ३७ ॥

मूलम्.

दंडोदमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषतां ॥ मौ
नंचैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहं ॥ ३८ ॥

अन्वयः

दमयतां दंडः अहमस्मि जिगीषतां नीतिः अहं अस्मि गु
ह्यानां मौनें अहं अस्मि ज्ञानवतां ज्ञानं अहं अस्मि ॥ ३८ ॥

टीका.

नियम उल्लंघन करनेवालोंको दंडदेनेवालोंमें दंड मै हों जो जीतनेकी इच्छा करते हैं उनमें जयका उपायरूप नीति मै हों गुप्तकरनेके कारनोंमें मौन मै हों क्योंकि जो बोलतानही उस का अभिप्राय जाननेमें आता नहीं ज्ञानवानोंमें ज्ञान मै हों ३४

मूलम.

यच्चापिसर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ॥ न तदस्ति
विनायत्स्यान्मया भूतं चराचरं ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन यत् च सर्वभूतानां बीजं तत् अपि अहं अस्मि
यत् चराचरं भूतं मया विना स्यात् तत् न अस्ति ॥ ३९ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो सर्वभूतप्राणिमात्रका कारण है सो मैहों ओ जो चराचरभूत मेरेविना होय सो नहीं है ऐसा जानौ क्योंकि सर्व का अंतर्दामी मै हों इस श्लोकमें जो मै मै करिके आपहीको दे खायाथा सो स्पष्ट किया कि अंतर्दामीरूप मै हों ॥ ३९ ॥

मूलम.

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥ एष
तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

अन्वयः

हे परंतप मम दिव्यानां विभूतीनां अंतः न अस्ति तु
एषः विभूतेः विस्तरः मया उद्देशतः प्रोक्तः ॥ ४० ॥

टीका.

हे परंतप मेरी दिव्यविभूतियोंका अंत नहीं है क्योंकि यह विभूतिविस्तार मैने संक्षेपसे कहा है ॥ ४० ॥

मूलम्.

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेववा ॥ तत्तदे
वाऽवगच्छत्वं मम तेजोऽशसंभवं ॥ ४१ ॥

अन्वयः

यत् यत् सत्त्वं विभूतिमत् यत् श्रीमत् वा यत् ऊर्जितं
एव तत् तत् मम तेजोऽशसंभवं इति त्वं अवगच्छ ॥ ४१ ॥

टीका.

जो जो ऐश्वर्यवान् पदार्थमात्र याने स्थावर किंवा जंगम
जो ऐश्वर्यमान् हैं वै औ जो श्रीमान् याने शोभायमान अथवा
कांतिमान् अथवा धनधानवान् हैं वै औ ऊर्जित याने कल्याण
के आरंभमें उद्युक्त अथवा कोईभी प्रभाव बलादिक गुण करिके
बढाहुआ सो ऐसा जो कुछभी स्थावर जंगम है सो मेरे तेजके
अंशकरिके है ऐसा तुम जानौ तेज याने पराभव करनेकी साम
र्थ्य अर्थात् शक्ति सो मेरी अचिंत्यशक्तिके अंशकरिके उत्पन्न
है ऐसा जानौ औरभी खुलासा अर्थ यह है कि विभूति कहते
है ऐश्वर्यको सो मेरे ऐश्वर्ययुक्त जानौ ॥ ४१ ॥

मूलम्.

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञानेन तर्वा जुनः ॥ विष्टभ्या
ऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अथवा एतेन बहुना ज्ञानेन तव किं न किमपि
अहं इदं कृत्स्नं जगत् एकांशेन विष्टभ्य स्थितः अस्मि ॥ ४२ ॥

टीका.

हे अर्जुन अथवा इस बहुत जाननेसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है
मैं इस जडचैतनरूप सर्व जगत्को आपकी महिमाके एक अंश-

टीका.

स्तंभन करिके स्थितहौं इहां श्रुतिप्रमाणहै ॥ पुरुषएवेदमित्यार
भ्य एतावानस्यमहिमाऽतो ज्यायाँश्चपुरुषः ॥ पादोऽस्यविश्वाभू
तानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ इदं सर्वं पुरुषः एवं इति एतावन् अ
स्यपुरुषस्यमहिमा अस्य महिम्नः पादः विश्वाभूतानि च दिवि
अस्य त्रिपात् अतएव अमृतं अतश्च अतः अपि पुरुषः ज्याया
न् ॥ अर्थ यह सर्व जगत् पुरुषात्मकही है ऐसा इतना बड़ा इस
पुरुषका महिमाहै इसी महिमाका एक अंशसंबंधीयै सर्व भूत प्रा
णिमात्रहैं औ दिवि वैकुण्ठमें याने प्रकृतिसे परे विष्णुलोकमें इस
महिमाके तीन अंश हैं इसवास्ते वह लोक मृत्युरहित है औ पु
रुष तौ इस महिमासे भी श्रेष्ठ है अर्थात् जिसके प्रभावसे यह स
र्व प्रकाशित है तौ वह तौ बड़ाहि हुयौहै ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोना
मदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां श्री
मद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ मदनुग्रहाय परमं गुह्यं मध्यात्मसं
ज्ञितं ॥ यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच ॥ हे भगवन् मदनुग्रहाय यत् परमं गुह्यं अध्या
त्मसंज्ञितं वचः त्वया उक्तं तेन अयं मम मोहः विगतः ॥ १ ॥

टीका.

पूर्वके अध्यायोंमें भक्तियोगकी उत्पत्ति औ वृद्धिके वास्ते भ-

गवानने जो आपका स्वरूपवैभव वर्णन किया सो अर्जुनने सुना तहां यह कहाथा कि सर्वभूतमात्र मेरेमें हैं औ मही उनके उत्पत्ति रक्षा औ प्रलयका करनेवाला हों औ वै मेरे स्वाधीन ही नहैं मयिसर्वमिदंप्रोतं सूत्रेमणिगणाइव अहंसर्वस्यप्रभवोमत्तः सर्वं प्रवर्तते इत्यादिक वाक्यों करिके जो भगवानका स्वरूप सुना सो देखनेकी इच्छा करिके अर्जुन बोले हे भगवान मेरे अनुग्रहके वास्ते याने मेरेपर कृपा करनेके वास्ते जो अतिगोप्य आत्मज्ञानविषयिक वचन आपने कहा उसकरिके यह देहात्मज्ञानरूप मेरा मोह गया ॥ १ ॥

मूलम्.

भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ॥ त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययं ॥ २ ॥

अन्वयः

हेकमलपत्राक्ष भूतानां भवाप्ययौ त्वत्तः सकाशात् भवत इति मया विस्तरशः श्रुतौ च अव्ययं तव माहात्म्यं अपि श्रुतं ॥ २ ॥

टीका.

हेकमलदलनयन भूत प्राणियोंकी उत्पत्ति औ प्रलय तुझारे हिसे होतीहैं औसा मैने विस्तारपूर्वक बारंवार सुनाहै अपहीने कहाकि अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा इत्यादिकरिके औ अक्षय माहात्म्यभी सुना अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः॥मयाततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना॥नचमांता नि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः॥इत्यादि वाक्योंकरिके विश्वकी सृष्टि करतेभी आविकारिपना सर्वको नियममें चलाते भये विषमतारहित शुभाशुभ

कर्म करावतेभी असंगता बंध मोक्षादि विचित्र फलदेतेभी औ दासीन्य ऐसा माहात्म्य सुना ॥ २ ॥

मूलम्.

एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानं परमेश्वर ॥ द्रष्टुमि
च्छामितेरूपमेश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे परमेश्वर त्वं यथा आत्मानं आत्थ एवं एतत् हे पुरुषोत्तम ते ऐश्वरं रूपं द्रष्टुं इच्छामि ॥ ३ ॥

टीका.

हे परमेश्वर तुम जैसा आपका स्वरूप कहते हो सो ऐसाही यह है इसमें संशय नहीं तथापि हे पुरुषोत्तम तुम्हारा ऐश्वररूप याने ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज इन षडैश्वर्योंकरिके युक्त जो तुम्हारा रूप है उसको मैं देखा चाहता हूँ ॥ ३ ॥

मूलम्.

मन्यसे यदि तच्छक्यं माया द्रष्टुमिति भो ॥ यो
गेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययं ॥ ४ ॥

अन्वयः

हे प्रभो यदि तत् रूपं माया द्रष्टुं शक्यं इति मन्यसे ततः हे योगेश्वर त्वं मे अव्ययं आत्मानं दर्शय ॥ ४ ॥

टीका.

हे प्रभो जो वह रूप मेरे करिके देखने योग्य है याने मैं उस रूपको देखि सकूँगा औसा आप मानते होय तौ हे योगेश्वर आपका अक्षयरूप मेरेको देखावौ ॥ ४ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ पश्य मे पार्थ रूपाणि

शतशोऽथसहस्रशः ॥ नानाविधानिदिव्यानिना
नावर्णाकृतीनिच ॥ ५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हेपार्थ शतशःअथ सहस्रशःनानावि
धानि दिव्यानि च नानावर्णाकृतीनि मे रूपाणि पश्य ॥ ५ ॥

टीका.

जब अर्जुनने अतिकौतूहलयुक्त गद्गद कंठसे प्रार्थना की तब
सुनिके अर्जुनकोसावधान करते भये बोले हेपृथापुत्रसैकडों औ
हजारों प्रकारके तैसेही अनेक प्रकारके अप्राकृत औ अनेक
प्रकारके वर्णोंकरिके युक्त आकार ऐसा मेरारूपदेखौ ॥ ५ ॥

मूलम्.

पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्यसचराचरम् ॥ मम
देहे गुडाकेशयश्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेभारत मम देहे आदित्यान्वसून रुद्रान् अश्विनौ मरुतः
पश्य तथा अदृष्टपूर्वाणि बहूनि आश्चर्याणि पश्य ॥ ६ ॥ हे
गुडाकेश इह मम देहे सचराचरं कृत्स्नं जगत् एकस्थं अद्य
पश्य च यत् अन्यत् अपि द्रष्टुं इच्छसि तत् अपि पश्य ॥ ७ ॥

टीका.

हे भारत मेरे देहमें द्वादश आदित्य आठ वसु एकादश रुद्र
अश्विनीकुमार उनंचासपवन देखौ तैसेही जो तुमने अथवा दु
सरेनेभी पूर्वकालमें कभी न देखे होय वैभी आश्चर्य देखौ ॥ ६ ॥

हे निद्राजीत इसमेरे देहमे चर औ अचर याने स्थावर जंगमस
हित सर्व जगत् एकही जमह स्थित आज देखौ औ जो औरभी
देखा चाहते होउ वहभी देखौ ॥ ७ ॥

सूलम्.

नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ॥ दिव्यंददा
मितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

अनेन एव चक्षुषा मां द्रष्टुं न शक्यसे तु ते दिव्यं चक्षुः
ददामि तेन मे ऐश्वरं योगं पश्य ॥ ८ ॥

टीका.

मै तुम्हारेको मेरी देहमै एकही जगह सर्व जगत देखावौंगा
सो तुम इन अपने चर्मचक्षुनसे देखि न सकौगे याने ये नेत्रपरि
मित वस्तुके देखनेवाले है औ यह रूप अपरिमित है इसवा
स्ते तुमको दिव्यनेत्र मै देऊंगा तुम मेरा ऐश्वरयोग याने अ-
नंतविभूतियोग देखौ ॥ ८ ॥

सूलम्.

॥ ॥ संजय उवाच ॥ ॥ एवमुक्ता ततो राजन्म
हायोगेश्वरो हरिः ॥ दर्शयामास पार्थय परमं रू
पमैश्वरम् ॥ ९ ॥

अन्वयः

संजयः उवाच ॥ हे राजन् महायोगेश्वरः हरिः एवं उक्त्वा
ततः परमं ऐश्वरं रूपं पार्थाय दर्शयामास ॥ ९ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये हे राजन् महायोगेश्वर भगवान्
ऐसे कहिके याने मेरा स्वरूप देखो ऐसा कहिके फिरि आपका

विश्वरूप अर्जुनको देखाते भये ॥ ९ ॥

मूलम्.

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥ अनेकदि
व्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधं ॥ १० ॥ दिव्यमा
ल्यांबरधरंदिव्यगंधानुलेपनं ॥ सर्वाश्चर्यमयंदेव
मनंतं विश्वतोमुखं ॥ ११ ॥

अन्वयः

कीदृशं तत् रूपं तत् आह अनेकवक्त्रनयनं अनेकाद्भुत
दर्शनं अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं ॥ १० ॥
दिव्यमाल्यांबरधरंदिव्यगंधानुलेपनंसर्वाश्चर्यमयंदेवं अ
नंतं विश्वतोमुखं ॥ ११ ॥

टीका.

जो रूप देखाया है उसका वर्णन करते हैं कैसा वह रूप है सो
कहते हैं अनेक हैं मुख और नेत्र जिसमें और अनेक अद्भुत हैं दर्शन
जिसमें और अनेक दिव्य हैं आभूषण जिसमें और अनेक दिव्य
आयुध उठाये भये याने ऊंचे किये हाथों में लिये भये हैं जिसमें
॥ १० ॥ दिव्यमाला और वस्त्र धारन किये है और दिव्यचंदनकाले
पन किये है और सर्व आश्चर्यमय देदीप्यमान हैं और जिसका अंत
नहीं और सर्वतरफको है मुख जिसमें ऐसा रूप देखाते भये ॥ ११ ॥

मूलम्.

दिविसूर्यसहस्रस्यभवेद्युगपदुत्थिता ॥ यदिभाः
सदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः ॥ १२ ॥

अन्वयः

यदि दिवि सूर्यसहस्रस्य युगपदुत्थिता भाः भवेत् सा

भाः तस्य महात्मनः भासः सदृशी स्यात् एवं भूतं रूपं दर्शयामास इति पूर्वेणान्वयः ॥ १२ ॥

टीका.

पूर्वश्लोकमें देव याने देदीप्यमान कहा उसीको विशेषकरिके कहते हैं जो आकाशमें हजार सूर्य एकसंग उदय होयं और उनका तेज यकबारभी प्रकाश होय सो प्रकाश कदापि उन विश्वरूपके प्रकाशतुल्य होय और उपमा नहीं है अर्थात् अनुपम है ऐसा रूप अर्जुनको देखाते भये ॥ १२ ॥

मूलम्.

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥ अपश्य देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥

अन्वयः

तदा तत्र देवदेवस्य शरीरे अनेकधा प्रविभक्तं कृत्स्नं जगत् एकस्थं पाण्डवः अपश्यत् ॥ १३ ॥

टीका.

तब वहां देदीप्यमानोंमें देदीप्यमान जो भगवान् उनके शरीरमें अनेक प्रकारका विभक्त अर्थात् ब्रह्मादि विविध विचित्र देव पशु मनुष्य स्थावर इन आदिक भोक्तोंका समूह और पृथ्वी अंतरिक्ष स्वर्ग पाताल इत्यादि भोगस्थान और भोग्यभोगोपकरण के भेदों करिके अनेक प्रकारका विभाग किया गया प्रकृति पुरुषयुक्त समस्त जगत् एक स्थानमें अर्जुन देखते भये ॥ १३ ॥

मूलम्.

ततः सविस्मया विष्टो हृष्टरो माधनंजयः ॥ प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

अन्वयः

ततः विस्मयाविष्टः लष्टरोमा सः धनंजयः शिरसा देवं
प्रणम्य कृतांजलिः सन् अभामत ॥ १४ ॥

टीका.

जब अर्जुनने ऐसा आश्चर्यमय रूप देखा तब विस्मयकरि
कै व्याप्त औ रोमांचयुक्त अर्जुन मस्तक नवाइके नमस्कार क
रिके हाथ जोड़िके भगवान्से बोलते भये ॥ १४ ॥

मूलम्.

॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ पश्यामि देवांस्तव देव
देहे सर्वान् भूतविशेषसंघान् ॥ ब्रह्माण्मीशं
कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे देव तव देहे देवान् तथा सर्वान् भूतविशे
षसंघान् ब्रह्माणं च कमलासनस्थं ईशं यद्वा एतेषां ई
शं कमलासनस्थं ब्रह्माणं च सर्वान् ऋषीन् च दिव्या
न् उरगान् पश्यामि ॥ १५ ॥

टीका.

अर्जुन जो बोले सो कहते हैं हे देव तुझारे देहमें सर्व देव त
था सर्व भूतप्राणीमात्रके समूह औ ब्रह्मा औ कमलासन जो ब्र
ह्मातिनमें स्थित ईश्वर अथवा इन देवादिकोंके ईश्वर जो ब्रह्मा
उनको तुझारे नाभिकमलमें स्थित देखताहौं औ सर्व ऋषी औ
देदीप्यमान सर्व सर्प इनोंको आपके देहमें देखताहौं ॥ १५ ॥

मूलम्.

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरू
पं ॥ नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर

विश्वरूप ॥ १६ ॥

अन्वयः

हे विश्वेश्वर हे विश्वरूप अनेकबाहूदरवक्रनेत्रं अनंतरूप
पं त्वां सर्वतः पश्यामि तव अंतं न पश्यामि मध्यं च
न पश्यामि पुनः तव आदिं न पश्यामि ॥ १६ ॥

टीका.

हे विश्वकेईश्वर हे विश्वरूप अनेकहैं भुजा उदर मुख औ-
नेत्र जिसमें औ अनंतहैं रूप जिनके ऐसे तुमको मै देखताहैं
औ तुम्हारा अंत नही देखता हों मध्यभी नही देखता हों औ
आदिभी नही देखता हों ॥ १६ ॥

मूलम्.

किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिसर्वतोदीप्ति
मंतं ॥ पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यंसमंताद्दीप्ताऽनलार्क
द्युतिमप्रमेयं ॥ १७ ॥

अन्वयः

हेदेवदेव त्वां किरीटिनं गदिनं चक्रिणं पश्यामि च ते-
जोराशिं सर्वतः दीप्तिमंतं च दीप्तानलार्कद्युतिं अतएव
अप्रमेयं च समंतात् दुर्निरीक्ष्यं पश्यामि ॥ १७ ॥

टीका.

हेदेवदेव तुमको किरीट गदा औ चक्र धारण कियेहुयेको
देखता हों औ तेजकी राशि चारौ ओरसे प्रकाशवान् औ
प्रदीप अग्नि तथा सूर्यौकी कांतिकी सदृश आपकी कांति इसी
वास्ते अप्रमेय याने जो प्रमाण करनेमें न आवै औ चौतरफ
से दुर्निरीक्ष्य ऐसे मै आपको देखताहों ॥ १७ ॥

मूलम्.

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

अन्वयः

हे प्रभो वेदितव्यं परमं अक्षरं त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं त्वं अव्ययः त्वं शाश्वतधर्मगोप्ता त्वं अतएव सनातनः पुरुषः त्वं इति मे मतः ॥ १८ ॥

टीका.

हे प्रभो मुमुक्षुन करिके जानने योग्य परम अक्षर आप हौ इस जगतका परम आधार आप हौ नाशरहित आप हौ नित्यधर्मके रक्षक आप हौ इसीसे सनातन पुरुष आप हौ ऐसा मैने जाना है ॥ १८ ॥

मूलम्.

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं ॥ पश्यामित्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतं ॥ १९ ॥

अन्वयः

अनादिमध्यांतं अनंतवीर्यं अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा इदं विश्वं तपंतं एवंभूतं त्वां पश्यामि ॥ १९ ॥

टीका.

नहि है आदि मध्य औ अंत जिनका औ अनंत है पराक्रम जिनका औ अनंत है भुजा जिनके औ चंद्र तथा सूर्य हैं नेत्रों में जिनके प्रदीप्त अग्नि सदृश हैं मुख जिनके औ आपके तेज करिके इस विश्वको तपायमान करि रहे हैं ऐसे आपको मैं देखता हौं १९

मूलम्.

द्यावापृथिव्योरिदमंतरंहिव्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च
सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्य-
थितं महात्मन् ॥ २० ॥

अन्वयः

हे महात्मन् यत् द्यावापृथिव्योः अंतरं तत् त्वया एकेन
व्याप्तं च सर्वाः दिशः त्वया एकेन व्याप्ताः एवं इदं तव
अद्भुतं उग्रं रूपं दृष्ट्वा लोकत्रयं प्रव्यथितं पश्यामि इति
पूर्वेणान्वयः ॥ २० ॥

टीका.

हे महात्मन् याने माहान् है देह जिनका ऐसे हे भगवान्
जो यह ब्रह्मांडका गोल है सो सर्व आपके शरीरकरिके व्याप्त है
औ संपूर्ण दिशाभि व्याप्त हैं अर्थात् आपकी उंचाई औ चौ
डाईकरिके यह विश्व परिपूरित है ऐसा यह आपका अद्भुत
औ उग्ररूप देखिके तीनौ लोकवासी सर्व सुरासुर मनुष्य पशु
पक्षी इत्यादिक व्यथाको प्राप्त भये हैं ऐसा मैं देखता हौं ॥ २० ॥

मूलम्.

अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्भीताः प्रांज-
लयोगृणंति ॥ स्वस्तीत्युत्कामहर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवंतित्वांस्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

अन्वयः

हि अमी सुरसंघाः त्वां विशंति केचित् भीताः प्रांजलयः
संतः तव गुणनामानि गृणंति महर्षिसिद्धसंघाः स्वस्ति
इति उत्का पुष्कलाभिः स्तुतिभिः स्तुवंति ॥ २१ ॥

टीका.

तीनौ लोकके वासिनको व्यथित देखीके ये महर्लौकादि कौंके वासी देवसमूह आपके अतिअद्भुत विश्वाश्रयरूपको देखिके अतिआनंदसे आपके समीप प्राप्त होते हैं औ उन्हीमेंसे केतनेक भयभीत भयेहुये हाथ जोडिके हेशरण्यपाल दीनबधो दयासिंधो इत्यादिक आपके गुणनाम उच्चारणरूप स्तुति करते है औ महर्षि तथा सिद्धोंके समूह अनेक प्रकारकी स्तुतिनकरिके आपका स्तवन करतेहैं ॥ २१ ॥

मूलम.

रुद्रादित्यावसवोयेचसाध्याविश्वेऽश्विनौमरु
तश्चोष्मपाश्च॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघावीक्ष्यं
तेत्वांविस्मिताश्चैवसर्वे ॥ २२ ॥

अन्वयः

रुद्राः आदित्याः वसवः च ये साध्याः विश्वे अश्विनौ मरुतः
च उष्मपाः च गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः एते सर्वे विस्मि
ताः संतः त्वा त्वां वीक्ष्यंते ॥ २२ ॥

टीका.

एकादशरुद्र १२ सूर्य ८ वसु औ जो साध्यनामके देवता हैं वै औ १३ विश्वेदेव २ अश्विनीकुमार ४९ वायु औ उष्मप याने पितर गंधर्व हाहा हूहू इत्यादिक यक्ष कुबेरादिक असुर विरोच नादिक सिद्ध कपिलादिक सिद्धोंके समूह ये सर्व विस्मयको प्राप्त भयेहुये तुमको देखते हैं ॥ २२ ॥

मूलम.

रूपमहत्तेबहुवक्त्रनेत्रमहाबाहोबहुबाहूरूपादं ॥

बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालंदृष्टालोकाःप्रव्यथितास्त
थाहं ॥ २३ ॥

अन्वयः

हेमहाबाहो बहुवक्त्रनेत्रं बहुबाहूरूपादं बहूदरं बहुदंष्ट्रा
करालं एवंभूतं ते महत् रूपं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिताः
तथाअहं प्रव्यथितः अस्मि ॥ २३ ॥

टीका.

हे महाबाहो बहुत हैं मुख औ नेत्र जिसमें औ बहुत हैं भु
जा जाधै औ पाय जिसमें औ बहुत हैं उदर जिसमें औ बहुत
दाढौंकरिके विकराल ऐसा जो तुझारा रूप उसको देखिके
सर्वलोक औ मैभी व्यथित भया हौं ॥ २३ ॥

मूलम्.

नभःस्पृशंदीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननंदीप्तविशाल
नेत्रं ॥ दृष्ट्वाहित्वांप्रव्यथितांतरात्माधृतिंनविं
दामिशमंचविष्णो ॥ २४ ॥ दंष्ट्राकरालानिचते
मुखानिदृष्ट्वैवकालानलसन्निभानि ॥ दिशोन
जानेनलभेचशर्मप्रसीददेवेशजगन्निवास ॥ २५ ॥
अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राः सर्वेसहैवाऽवनिपा
लसंघैः ॥ भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथासौसहा
ऽस्मदीयैरपियोधमुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्त्राणिते
त्वरमाणाविशंतिदंष्ट्राकरालानिभयानकानि ॥
केचिद्विलग्नादशनांतरेषुसंदृश्यंतेचूर्णितैरुत्त
मांगैः ॥ २७ ॥

अन्वयः

हे विष्णो नभःस्पृशं दीप्तं अनेकवर्णं व्याप्ताननं दीप्तवि
शालनेत्रं एवंभूतं त्वां दृष्ट्वा हि यस्मात् प्रव्यथितांतरा
त्मा अहं धृतिं च शमं न विंदामि च दंष्ट्राकरालानि
कालानलसन्निभानि ते मुखानि एव दृष्ट्वा दिशः न जा
ने च शर्म न लभे च एवं अमी सर्वे धृतराष्ट्रस्य पुत्राः अव
निपालसंघैः सह तथा भीष्मः द्रोणः असौ सूतपुत्रः अ
स्मदीयैः योधमुख्यैः अपि सह त्वां दृष्ट्वा दिशः न जानं
ति च शर्म न लभन्ते किंतु त्वरमाणाः संतः दंष्ट्राकराला
नि भयानकानि ते वक्त्राणि विशन्ति केचित् दशनांतरेषु
विलग्नाः संतः चूर्णितैः उत्तमगैः संदृश्यन्ते तस्मात् हे दे
वेश हेजगन्निवास त्वं प्रसीद ॥ २४ ॥ २५ ॥ ३६ ॥ २७ ॥

टीका.

हे विष्णो याने हे सर्वव्यापिन् नभ जो परम आकाश या-
ने प्रकृतिसे पर आकाश उसमें है स्पर्श जिनका याने आपका
यह शरीर प्रकृतिसे परे वैकुण्ठपर्यंत देखता है औ प्रकाशमान
अनेक वर्ण हैं जिनमें औ अति फैले हैं मुख जिनके औ प्रकाश
मान बड़े बड़े हैं नेत्रजिनके ऐसे तुमको देखिके मेरा मन व्यथित
भया है इसीवास्ते मेरेको धीरज नहीं रहता है औ सुखभी नहीं
पावता हों औ बड़ी बड़ी दाढ़ीकरिके विकराल औ कालानल
जो प्रलयकालका अग्नि उस अग्निके समान देदीप्यमान ऐसे
तुम्हारे मुखोंको देखिके मैं दिशोंकोभी नहीं जानताहों यानेकि
धर पूरब औ किधर पश्चिम इत्यादिभी ज्ञान नहीं रहा है औ
सुख नहीं पावता हों औ ये सर्व धृतराष्ट्रके पुत्र औरभी राजों
करिके सहित तथा भीष्म औ द्रोणाचार्य औ यह कर्ष ये सर्व

२१६

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

राजौंकारिके सहित वैसेही आपको देखिके धीरज नहीं धरते हैं औ सुखभी नहीं पाते हैं औ इनको दिशाभ्रम भया है इसवा स्ते ये सुखभी पाते नहीं क्योंकि बडेवेगसहित विकराल है इस दाढ़ें जिनमें ऐसे भयानक तुह्यारे मुखोंमें प्रवेश करतेजाते हैं या नेदिशोंको भूलेहुये भागते भागते आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं तहांभी केतनके दांतोंके बीच बीचमें चूर्णित मस्तकों सहित दी खते हैं याने उनके मस्तक चूर चूर भये हैं औ वै आपके दांतोंके बीच बीचमें लगे दीखते है इसवास्ते आपको हम डरते हैं इसी वास्ते हे देवनकेभी परमेश्वर हे जगन्निवास आप प्रसन्न होउ याने सौम्यरूप धारण करौ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मूलम.

यथानदीनांवहवोंबुवेगाःसमुद्रमेवाऽभिमुखाद्र
वंति ॥ तथातवामीनरलोकवीराविशंतिवक्रा
प्यभितोज्वलंति ॥ २८ ॥

अन्वयः

यथा नदीनां बहवः अंबुवेगाः समुद्रं एव अभिमुखाः
द्रवंति तथा अमी नरलोकवीराः अभितः ज्वलंति त
व वक्राणि विशंति ॥ २८ ॥

टीका.

जैसे नदियोंके पानिके अनेक वेग समुद्रहीके संमुख जाते हैं तैसेही ये नरलोकके वीर सर्व ओरसे प्रकाशमान ऐसे तुह्यारे मुखोंमें प्रवेश करते हैं ॥ २८ ॥

मूलम.

यथाप्रदीप्तंज्वलनंपतंगाविशंतिनाशायसमृद्ध

वेगाः ॥ तथैवनाशायविशंतिलोकास्तवापिव
क्राणिसमृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

अन्वयः

यथा समृद्धवेगाः पतंगाः नाशाय प्रदीप्तं ज्वलनं वि
शंति तथा एव समृद्धवेगाः लोकाः अपि नाशाय त
व वक्राणि विशंति ॥ २९ ॥

टीका.

जैसे बड़े वेगयुक्त पतंगा अपने नाशके वास्ते प्रज्वलित
अग्निमें प्रवेश करते हैं तैसेही बड़ेवेगयुक्त ये लोकभी अपने
नाशके वास्ते आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

मूलम्.

लेलिह्यसेग्रसमानःसमंताल्लोकान्समग्रान्वदनै
र्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्यजगत्समग्रंभासस्तवो
ग्राःप्रतपंतिविष्णो ॥ ३० ॥

अन्वयः

हेविष्णो ज्वलद्भिः वदनैः समग्रान् लोकान् ग्रसमानः
सन् ओष्ठपुटादिकं समंतात् लेलिह्यसे तव उग्राः भासः
तेजोभिः समग्रं जगत् आपूर्य प्रतपंति ॥ ३० ॥

टीका.

हेजगद्व्यापिन् प्रकाशमान जो आपके मुख उनोंकरिके
सर्व लोकोंको भक्षण करते करते ओंठ गल फरादिक चौतर
फसे वारंवार चाटते हौ औ आपके प्रकाशहि अपने तेज
करिके सर्व जगतको परिपूरण करिके तपि रहे हैं ॥ ३० ॥

मूलम्.

आख्याहिमेकोभवानुग्ररूपोनमोस्तुतेदेववर

प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजा
नामितव प्रवृत्तिं ॥ ३१ ॥

अन्वयः

हे देववर एवं उग्ररूपः भवान् क इति मे आख्याहि हि
यतः अहं तव प्रवृत्तिं न प्रजानामि अतः भवंतं आद्यं
विज्ञातुं इच्छामि त्वं प्रसीद ते नमः अस्तु ॥ ३१ ॥

टीका.

हे देवनमें श्रेष्ठ अर्थात् हे देवनके ईश ऐसे उग्ररूप आप को
न हो यह मेरेसे कहौ क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्ति नहीं जान-
ता हौ इसवास्ते आप जो आदिपुरुष हौ उन तुमको मैं जान
ता चाहता हौं तुम प्रसन्न होउं अर्थात् प्रसन्न वहैके कहौ तुमको
मेरा नमस्कार होउ ॥ ३१ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ कालोऽस्मि लोकक्षय
कृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽ
पित्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु यो
धाः ॥ ३२ ॥ तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा
शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धं ॥ मयैवैते निहताः पूर्वमे
व निमित्तमात्रं भवसव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ अहं लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः कालः अ-
स्मि इह लोकान् समाहर्तुं प्रवृत्तः अस्मि ये योधाः प्रत्य
नीकेषु अवस्थिताः ते त्वां ऋते सर्वे अपि न भविष्यन्ति
॥ ३२ ॥ हे सव्यसाचिन् तस्मात् त्वं उत्तिष्ठ यशः लभस्व

शत्रून् जित्वा समृद्धं राज्यं भुङ्क्व एतेपूर्वं एव मया निह
ताः अतः त्वं निमित्तमात्रं भव ॥ ३३ ॥

जब अर्जुन ने बड़ी प्रार्थना करिके पूछा कि मैं आपकी प्रवृत्ति
और आपको भी नहीं जानता हूँ आप कहें तब भगवान् बोले कि
मैं लोकों के क्षय करनेवाला अतिबड़ा भया काल हूँ जो कहेंगे
मैंने तौ ईश्वररूप देखते को प्रार्थना की थी आप क्यों आमतौ कह-
ता हूँ कि इस जगह मैं इन मनुष्यों का संहार करने को प्रवर्तित
या हूँ जो किये भीष्म द्रोणादिकों की सेनाओं सेनाओं में याने सबसे-
नाओं में अर्थात् तुम्हारे शत्रुन की सेनाओं में युद्ध करने को खड़े हैं वे तुम्हारे
रेबिना सर्वही न रहेंगे याने तुम इनके मारनेवाले हो सो तुमही रह
होगे और ये सर्व मरेंगे ॥ ३२ ॥ इसी वास्ते हे सव्यसाचिन् तुम यु-
द्ध करने को उठौ यश को लेउ यश क्या है सो कहते हैं शत्रुन को
जीतौ औ अकंटक राज्य भोगौ ये सर्व प्रथमही मेरे मारे भ-
ये हैं इस वास्ते तुम निमित्तमात्र होउ सव्यसाची कहते हैं
जो दोनों हाथों से बाणप्रहार करता होइ उसको सो अर्जुन
दोनों हाथों से चलानेवाले हैं इस वास्ते सव्यसाची कहिके
बोलाया ॥ ३३ ॥

मूलम्.

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा अन्यान् अपि योधवी-
रान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जे-
तासिरणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

अन्वयः

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा अन्यान् अपि
योधवीरान् मया हतान् त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः रणे सप-
त्नान् जेतासि अतः युध्यस्व ॥ ३४ ॥

टीका.

जो प्रथम शंका किथी कि क्या मालूम हम जीतेंगे किये जीतेंगे सोभी शंका अब त्यागौ क्यों कि द्रोणाचार्य भीष्म जयद्रथ औ कर्ण तथा औरभी गूर वीर वैमेरे मारे भये हैं इनको तुम निमित्तमात्र व्हैके मारौ औभयमति मानौ तुम रणमें शत्रुनको जीतौगे इसवास्ते युद्ध करौ ॥ ३४ ॥

मूलम्.

॥ संजयउवाच ॥ ॥ एतच्छ्रुत्वावचनंकेशव
स्यकृतांजलिर्वेपमानःकिरीटी ॥ नमस्कृत्वा
भूयएवाहकृष्णंसगद्गदंभीतभीतःप्रणम्य ॥ ३५ ॥

मूलम्.

संजयः उवाच॥किरीटी केशवस्य एतत् वचनं श्रुत्वा वे
पमानः कृतांजलिः सन् नमस्कृत्वा भूयः एव भीतभी
तः सगद्गदं प्रणम्य कृष्णं आह ॥ ३५ ॥

टीका.

संजय यह वृत्तांत कहिके फिरिभी अगाडीका कहतेहैं, कि हे राजन् किरीटी जो अर्जुन सो भगवानके ये ऐसे बचन सुनिके कांपता कांपता हाथ जोडे हुये नमस्कारकरिके फिरिभी अति भयभीत गद्गदकंठयुक्त भये हुये नमस्कार करिके श्रीकृष्णसे बोलता भया ॥ ३५ ॥

मूलम्.

॥ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ॥ स्थानेहर्षीकेशतवप्रकी
र्त्याजगत्प्रवृत्त्यनुरज्यतेच ॥ रक्षांसिभीतानि
दिशोद्रवंतिसर्वेनमस्यंतिचसिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच॥ हे हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यति च अनुरज्यते च रक्षांसि भीतानि दिशः द्रवन्ति च सर्वे सिद्धसंघाः नमस्यन्ति इति स्थाने योग्यं ॥ ३६ ॥

टीका.

अब ११ श्लोकों करिके अर्जुन स्तुति करते हैं कि हे हृषीकेश आप भक्तकत्सल हौ इसवास्ते आपकी कीर्तिकरिके जगत् आनंदको प्राप्त होता है औ आपमें प्रीति करता है औ राक्षस भयको प्राप्त हुये दिशादिशाको भागते हैं औ सर्व सिद्ध लोगोंको समूह आपको नमस्कार करते हैं यह सर्व आपके योग्यही है ॥ ३६ ॥

मूलम्.

कस्माच्च तेन न मे रन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनन्तदेवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हे महात्मन् ब्रह्मणः अपि गरीयसे च आदिकर्त्रे तुभ्यं ते सिद्धसंघाः कस्मात् न न मे रन् अपितु न मे रन् एव हे अनन्त हे देवेश हे जगन्निवास यत् अक्षरं तत् त्वं यत् सत् यत् असत् यत् तत्परं तत्सर्वं त्वं एव ॥ ३७ ॥

टीका.

जो प्रथम कहा कि जगत् हर्षता है औ अनुराग करता है तथा राक्षस भागते हैं औ सिद्ध नमस्कार करते हैं सो सर्व योग्य है इसी योग्यताहीको वर्णन करते हैं हे महात्मन् ब्रह्मासेभी आप अति बड़े हौ क्योंकि आदिकर्त्ता हौ ऐसे तुमको वै सिद्धोंके समूह क्यों न नवै अर्थात् न बर्हीगे हे अनन्त हे देवेश हे जगन्निवास जो

अक्षर याने आत्मा अर्थात् जीवतत्त्व न जायते म्रियते कदाचित् इत्यादि प्रामाण्यसे अक्षर शब्द निर्दिष्ट जीवात्मा सोभि आपही हैं औ सदसत् जो कार्य कारणभावकरिके स्थित प्रकृति तत्त्व सो भी आपही हैं सत् जो स्थूल कार्य नामरूप विभागके योग्य औ असत् सूक्ष्म जो कारण याने नामरूपके योग्य नहीं औ इनसे परे जो भक्त जीव ये सर्व आपही हौ अर्थात् येसर्व शरीररूप हैं आप सबके अंतर्गामी हौ ॥ ३७ ॥

मूलम्.

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं
निधानं ॥ वेत्तासिवेद्यं च परं च धाम त्वया तत्तं वि
श्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

अन्वयः

त्वं आदिदेवः पुराणः पुरुषः असि अस्य विश्वस्य परं
निधानं त्वं असि वेत्ता च वेद्यं च परं धाम त्वं असि हे
अनंतरूप इदं विश्वं त्वया तत्तं ॥ ३८ ॥

टीका.

तुम आदिदेव याने ब्रह्मादि देवतोंके आदि हौ क्योंकि आप पुराणपुरुष हौ औ इस विश्वके आधार आप हौ औ जो इसमें जाननेवाला है सो आप हौ औ जो जाननेयोग्य है सो आप हौ औ इस जगतके परम धाम याने रहने का स्थान आप हौ हे अनंतरूप अर्थात् आपके रूपका अंत नहीं औ यह विश्व आपकरिके व्याप्त है इस श्लोकमें आदिदेवशब्दसे उत्पत्तिनिधानसे आधार याने रक्षण परंधाम से लय देखाया अर्थात् इस विश्वके उत्पत्ति रक्षा औ प्रलय आपहीसे हैं इसवास्ते यह आपमय है ॥ ३८ ॥

मूलम्.

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणःशशांकःपितामहस्त्वंप्रपिता
महश्च ॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्रकृत्वःपुनश्चभूयोऽ
पिनमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

अन्वयः

वायुः त्वं यमः त्वं अग्निः त्वं वरुणः त्वं शशांकः त्वं पि
तामहः च प्रपितामहः त्वं असि अतःते सहस्रकृत्वःन
मोनमः अस्तु पुनः च भूयः अपिते नमोनमः अस्तु ॥ ३९ ॥

टीका.

वायु यम अग्नि वरुण चंद्र इत्यादि शब्दोंकरिके कहनेयोग्य
आपही हौ औ इस जगतके पितामह ब्रह्मा अर्थात् पिता प्र-
जापती तिनके पिता ब्रह्मा उन ब्रह्माकेभी पिता आप हैं
इसवास्ते इस जगतके प्रपितामहभी आप हैं इसीवास्ते
आपको हजारहों वार नमस्कार होउ फिरिभी नमस्कार हो-
उ नमस्कार होउ इस श्लोकमें हजारोंवारनमस्कार करनेमें तौ
यह दर्शाया कि ईश्वरको एकवेर साष्टांग करिके न रहिजाना
अति आदरपूर्वक वारंवार नमस्कार करना चाहिये ॥ ३९ ॥

मूलम्.

नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोऽस्तुतेसर्वतएवसर्व
॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वसमाप्नोषिततो
सिसर्व ॥ ४० ॥

अन्वयः

हेसर्व ते पुरस्तात् नमः अस्तु अथ पृष्ठतः नमः अस्तु ते
सर्वतः नमः अस्तु अनंतवीर्यामितविक्रमः त्वं सर्व स
माप्नोषि ततः सर्वः असि ॥ ४० ॥

टीका.

हे सर्वरूप तुमको सन्मुख नमस्कार होउ औ पिछाडिसे होउ औ सबओरसेभी होउ आपका सामर्थ्य औ पराक्रमका अंत नही इसवास्ते आप सर्वमें व्यापक हौ इसी व्यापकत्वसे आप ही सर्वहै इसवाक्यसे जो प्रथम समानाधिकरणसे शब्द कहथे उनका यह खुलासा किया कि वायु इत्यादिकोंके अंतर्गामी रूप आप हैं ॥ ४० ॥

मूलम्.

सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्णहेयादवहेसखेति
॥ अजानतामहिमानंतवेदंमयाप्रमादात्प्रणयेन
वापि ॥ ४१ ॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतोसिविहार
शय्यासनभोजनेषु ॥ एकोऽथवाप्यच्युततत्सम
क्षंतक्षामयेत्वामहमप्रमेयं ॥ ४२ ॥

अन्वयः

हे अच्युत तव महिमानं च इदं विश्वरूपं अजानतामया प्रमादात् वा प्रणयेन अपि त्वां ईश्वरं प्राकृतसखा इति मत्वा हेकृष्ण हेयादव हेसखे इति प्रसभं यत् उक्तं च विहारशय्यासनभोजनेषु एकः अथवा तत्समक्षं अपि अवाहसार्थं यत् असत्कृतः असि तत् अहं अप्रमेयं त्वां क्षामये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

टीका.

हे अच्युत आपके महिमाको औ इस विश्वरूपको नहि जानता भया जो मैं तिस मैंने प्रमाद किंवा स्नेहसे आप ईश्वरको प्राकृत सखा मानिके हेकृष्ण हेयादव हे सखे जैसे जो कुछ कहा होय औ क्रीडा शयनआसनभोजन इन कालोंमें अकेलेमें अथवा और सखोंके सन्मुख हंसीके वास्ते जो असत्कार किया होय उसकी अप्रमेय जोतुम तिसके पासक्षमा मागता हौं ४१ २

सों मैं आप प्रमाणातीतसे क्षमा करता हों ॥ ४१ ॥

मूलम्.

पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपूज्यश्चगुरु
गरीयान् ॥ नत्वत्समोस्त्यभ्यधिकःकुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥ तस्मात्प्रण
म्यप्रणिधायकायंप्रसादयेत्वामहमीशमीड्यं॥
पितेवपुत्रस्यसखेवसख्युःप्रियःप्रियायाऽर्हसि
देवसोढुं ॥ ४४ ॥

अन्वयः

हे अप्रतिमप्रभाव त्वं अस्य चराचरस्य लोकस्य पिताअ
सि च अतः एव पूज्यः असि च गरीयान् गुरुः असि अतः
लोकत्रये अपि त्वत्समः अन्यः न अस्ति तर्हि अभ्यधि
कः कुतः ॥ ४३ ॥ तस्मात् अहं ईशं ईड्यं त्वां भूमौ कायं प्र
णिधाय प्रणम्य प्रसादये हे देव पुत्रस्य प्रियाय तदपराधा
न् पिता इव सख्युः प्रियाय सखा इव एवं ममापि प्रियः
त्वं मे प्रियाय सोढुं अर्हसि ॥ ४४ ॥

टीका.

हे अप्रतिमप्रभाव याने जिसकी उपमाको दूसरा नहीं औ
सा आपका प्रभाव है ऐसे जो आप सो इस चराचर लोकके
पिता उत्पन्न करनेवाले हौ औइसीसे इसके पूज्य हौ औ गुरु
जो ब्रह्मादिक उनकेभी गुरुहौ इसीकारणसे तीनों लोकमेंभी
आपके समान कोई नहींहै तौ अधिक कहाँसे होयगा ॥ ४३ ॥इ
सीवास्ते मैंभी ईश्वर औ स्तुतिकरनेकेयोग्य आपको साष्टांगदंड
वतकरिकेप्रसन्नकराताहौंहेदेव पुत्रके पियारकेवास्ते इसकेअप

राधोंको पिता जैसेसहता है औ सखाके प्रियकरनेको उसके अपराधोंको सखाजैसे सहताहैऐसे ही मेरेभी प्रिय आप हो सो मेरी प्रियताकेवास्ते मेरे अपराध क्षमा करौ ॥ ४४ ॥

मूलम.

अदृष्टपूर्वहृषितोस्मिदृष्ट्वाभयेनचप्रव्यथितंमनो
मे ॥ तदेवमेदर्शयदेवरूपंप्रसीददेवेशजगन्नि
वास ॥ ४५ ॥ किरीटिनंगदिनंचक्रहस्तमिच्छा
मित्वांद्रष्टुमहंतथैव ॥ तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनस
हस्रबाहोभवविश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

अन्वयः

अदृष्टपूर्व तव रूपं दृष्ट्वा हृषितः अस्मि च मे मनः भयेन प्र
व्यथितं अस्ति हेदेव मे तत् एव रूपं दर्शय हे देवेश हेजग
न्निवास त्वं प्रसीद ॥ ४५ ॥ हेसहस्रबाहो हे विश्वमूर्ते अहं
तथा किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तं एवं त्वां द्रष्टुं इच्छामि
अतः तेन एव चतुर्भुजेन रूपेण भव ॥ ४६ ॥

टीका.

नही देखता है पूर्वकालमें मैंनेअथवाकिसीने ऐसा आपका
रूप देखिके हर्षित भया हों औ मेरा मन भयसे व्यथित है हेदेव
मेरेको वही प्रथमका रूप देखावौ हे देवेश हे जगन्निवास आप
प्रसन्न होउ ॥ ४५ ॥ हे सहस्रबाहो हे विश्वमूर्ते याने अब जो आ
पने सहस्रभुजायुक्त विश्वरूप धारण किया है इसके सेवायजो
वैसा किरीटियुक्त गदा औ चक्र हाथमें लिये ऐसा चतुर्भुज रू
पदेखनेकी इच्छा करता हों इसवास्ते उसी चतुर्भु रूपकरि
के युक्त होउ ॥ ४६ ॥

मूलम्.

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ मयाप्रसन्नेन त
वार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयं
विश्वमनंतमाद्यं न्मेत्वदन्येन न दृष्टपूर्वं ॥ ४७ ॥

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन यत् तेजोमयं विश्वं अनंतं
आद्यं त्वदन्येन केनापि न दृष्टपूर्वं तत् इदं मे परं रूपं
प्रसन्नेन मया आत्मयोगात् दर्शितं ॥ ४७ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके वाक्य सुनिके बोले कि हे अर्जुन
जो तेजोमय विश्वरूप अनंत सर्वकी आदि औ तुझारे विना प्र
थम किसीने भी नहीं देखा है सो यह मेरा पररूप प्रसन्न वहैके मै
ने आपके सत्यसंकल्परूप योगसे देखाया है ॥ ४७ ॥

मूलम्.

न वेदयज्ञाऽध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरु
ग्रैः ॥ एवंप्रपञ्चः शक्योऽहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कु
रुप्रवीर ॥ ४८ ॥

अन्वयः

हे कुरुप्रवीर एवंप्रपञ्चः अहं नृलोके त्वदन्येन वेदयज्ञाध्य
यनैः द्रष्टुं न शक्यः च दानैः द्रष्टुं न शक्यः च क्रियाभिः
द्रष्टुं न शक्यः च उग्रैः तपोभिः द्रष्टुं न शक्यः ॥ ४८ ॥

टीका.

हे कुरुवंशिनमें श्रेष्ठवी ऐसा विश्वरूप मै मनुष्यलोकमें तु-
झारे सेवाय कोई भी दुसरे मनुष्यको वेदाध्यायन अग्निष्टोमदि

यज्ञ मंत्रजप पृथ्वी इत्यादि दान औ अष्टांगयोगक्रिया औ कू-
च्छांद्रायणादिक उग्र तप इनै साधनोंकरिकेभी नहीं देखनेयो
ग्य हौं अर्थात् तुम हमारे प्रिय भक्त हौ औ तुम्हारे सेवाय जाने
अभक्त जन जो वेद पढ़ैं यज्ञ करैं मंत्र जपैं दान देइं योगक्रिया
करैं अथवा उग्रतप करैं तौभी ऐसे विश्वरूप मेरेको न देखिस
कैंगे ॥ ४७ ॥

मूलम्.

मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्टारूपंघोरमीदृ-
ममेदं ॥ व्यपेतभीःप्रीतमनाःपुनस्त्वंतदेवमेरू-
पमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

अन्वयः

ईदृग् घोरं इदं मम रूपं दृष्ट्वा ते व्यथा मा अस्तु च वि-
मूढभावः मा अस्तु किंतु व्यपेतभीः प्रीतमनाः त्वं तत्
एव इदं मे रूपं पुनः प्रपश्य ॥ ४९ ॥

टीका.

ऐसे घोर इस मेरे रूपको देखिके तुम्हारे व्यथा न होय औ
मोहभावभी न होय क्योंकि भयरहित प्रसन्नमनयुक्त तुम वही
प्रथमका चतुर्भुज यह मेरा रूप इसीको फिरि देखौ ॥ ४९ ॥

मूलम्.

॥ संजयउवाच ॥ इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकरूपंदर्शयामासभूयः ॥ आश्वासयामासच
भीतमेनंभूत्वापुनःसौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

अन्वयः

संजयः उवाच॥ वासुदेवः इति अर्जुनं उक्त्वा यथा पूर्वं

चतुर्भुजं रूपं आसीत् तथा स्वकं रूपं भूयः दर्शयामास
च महात्मा सौम्यवपुः भूत्वा पुनः भीतं एनं आश्वास
यामास ॥ ५० ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये की वासुदेव भगवान् ऐसे अर्जु
नसे कहिके जैसा चतुर्भुज आपका रूप प्रथम था वैसाही आ-
पका चतुर्भुज रूप फिरिभी देखाते भये औ विश्वरूप जोधेसोसौ
म्य चतुर्भुज रूप व्हैके फिरि भयभीत अर्जुनका आश्वासन
करते भये ॥ ५० ॥

मूलम्.

॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौ
म्यं जनार्दन ॥ इदानीमस्मि संवृतः सचेताः प्रकृ
तिं गतः ॥ ४९ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे जनार्दन तव इदं सौम्यं मानुष रूपं दृष्ट्वा
इदानीं अहं सचेताः प्रकृतिं गतः सन् संवृतः अस्मि ॥ ५१ ॥

टीका.

श्रीकृष्ण भगवान्का सौम्य चतुर्भुज रूप देखिके अर्जुन
बोलेकी हे जनार्दन तुझारा यह सौम्य मनुष्याकार रूप देखि
के इसकालमें मैं प्रसन्नचित्त आपके स्वभावको प्राप्त भया हुवा
सावधान हौं ॥ ५१ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्ट्वा
न सियन्मम ॥ देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्श
नं कांक्षिणः ॥ ५२ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच॥ हे अर्जुन यत् सुदुर्दर्शं इदं मम रूपं
दृष्टवान् असि देवाः अपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शन
कांक्षिणः संति ॥ ५२ ॥

टीका.

अर्जुनके वाक्यसुनिके भगवान् बोले हे अर्जुन जो अति
दुर्दर्श याने बडेपरिश्रमसे भी जप तपादिकरिके देखनेमें न आ
वै ऐसा जो मेरा रूप तुमने देखा है सोई रूपके दर्शनकी इच्छा
देवताभी नित्य करते हैं ॥ ५२ ॥

मूलम्.

नाहं वेदैर्न तपसान दानेन न चैज्यया ॥ शक्य एवं
विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥ भक्त्या त्व
न न्यया शक्य अहमेवं विधोर्जुन ॥ ज्ञातुं द्रष्टुं च त
त्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन यथा मां दृष्टवान् असि एवंविधः अहं वेदैः द्रष्टुं
न शक्यः न तपसा न दानेन न च ईज्यया द्रष्टुं शक्यः तु
हे परंतप एवंविधः अहं अनन्यया भक्त्या तत्त्वेन ज्ञातुं
द्रष्टुं च प्रवेष्टुं अपि शक्यः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

टीका.

हे अर्जुन जैसा मेरेको तुमने देखा ऐसा मैं वेदके पढनेसे त
पसे दानसे औ यज्ञसे भी नहीं देखनेमें आता हूँ क्योंकि हे परं
तप ऐसा मैं अनन्य भक्तिहीकरिके तत्त्वसे जाननेमें औ देखने
के औ प्राप्त होनेके भी योग्य हूँ ॥ ५३ ॥ अर्थात् अनन्यभक्ती ही
से मेरेको मनुष्य जानि सकता है औ देखि सकता है औ प्रा-

सभी होता है और उपायसे नहीं ॥ ५४ ॥

मूलम्.

मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसंगवर्जितः ॥ निर्वैरः
सर्वभूतेषुयःसमामेतिपांडव ॥ ५५ ॥

अन्वयः

हे पांडव यः मत्कर्मकृत् मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः
सर्वभूतेषु निर्वैरः सः मां एति ॥ ५५ ॥

टीका.

हेपंडुतनय जो वेदाध्ययन इत्यादि कर्म मेरेही निमित्त कर
ताहै सो मैही हौं औ परमपुरुषार्थ जिसका सो औ मेराही आ
राधन भजन प्रेमपूर्वक जो करता है सो औ मेरेही स्वरूप ध्यान
विना दुसरे संगसे रहित औ सर्वभूतप्राणिमात्रको मेरे जानिके
सर्वसे वैररहित ऐसा मेरा भक्त मेरेको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयो
गोनाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्सुकलसिताराभात्मजपंडितरघुनाथप्रसादक
तायां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां ए
कादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ॥ एवं स तत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्यु
पासते ॥ ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्त
माः ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच ॥ सततयुक्ताः संतः ये भक्ताः एवं मत्कर्मकृदित्यादिना उक्तप्रकारेण त्वां पर्युपासते च ये अपि अव्यक्तं अक्षरं पर्युपासते तेषां योगवित्तमाः के ॥ १ ॥

टीका.

भक्ति योगनिष्ठपुरुषोंको प्राप्त होनेयोग ऐसे जो परमात्मा श्रीमन्नारायण परब्रह्म उनका जो निरंकुश ऐश्वर्य उस ऐश्वर्यको साक्षात् करनेकी इच्छा है जिसके याने साक्षात् देखने की इच्छा है जिसके ऐसे अर्जुनको श्रीकृष्णपरमात्माने आपका ऐश्वर्य कहा औ देखाया तहां यह कहा कि मैं देव तथा तप दान औ यज्ञादिकोंसेभी न देखनेमें औ न जाननेमें आता हौं जैसा तुमने मेरेको देखा ऐसा मैं अनन्य भक्तिही करिके जाननेमें औ देखनेमें औ प्रवेश करनेमें याने समीप प्राप्त होनेमें आता हौं ऐसा कहा औ द्वितीय अध्यायादिकमें प्रत्यगात्मस्वरूपज्ञानसे मुक्ति कहते भये सो सुनिके अर्जुन पूछते भये कि निरंतर भक्तियोगयुक्त हुये भये जो भक्त ऐसा मत्कर्मकृत् याने जो आपने ग्यारहे अध्यायमें कहा कि मेरे अर्थ कर्म करै औ मेरेको पर याने श्रेष्ठ प्राप्य जानिके मेरी भक्ति करै इत्यादिक प्रकारसे जो तुम्हारी उपासना करते हैं औ जो अव्यक्त याने नेत्रादिक इंद्रियों के अप्राप्य ऐसा जो अक्षर याने प्रकृतिविमुक्त आत्मस्वरूपकी उपासना करते हैं इन दो प्रकारके पुरुषोंमें श्रेष्ठ कौनसे हैं अर्थात् जो आप परब्रह्मकी उपासना करते हैं औ जो आत्मज्ञानी हैं इनमें आत्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं कि आपके भक्त श्रेष्ठ हैं सो कहौ ॥ १ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्य मनो ये मामानित्य

युक्ताउपासते ॥ श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्त
मामताः ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच जनाः नित्ययुक्ताः मयि मनः आ
वेश्य परया श्रद्धया उपेताः संतः मां उपासते ते युक्त
तमा मे मताः ॥ २ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका प्रश्न सुनिके उत्तर देते हैं कि
जे मनुष्य नित्यही मेरे संयोगकी इच्छा करते हैं वै मेरेको
अतिप्रिय जानिके मेरेहीमे मानको लगाये हुये मेरी उपास
ना करते हैं अर्थात् सर्व लौकिक वैदिक कर्म मेरेही प्राप्ति
निमित्त करते भये मेरा स्मरण करते है वैही योगिनमे श्रेष्ठ
हैं ऐसे मैने माना है याने वै मेरेको शीघ्रही प्राप्त होयेंगे॥२॥

मूलम्.

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥ सर्वत्रग
मचिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवं ॥ ३ ॥ सन्नियम्ये
द्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्धयः ॥ तेप्राप्तुवंतिमामेव
सर्वभूतहितेरताः ॥ ४ ॥ क्लेशोऽधिकतरस्तेषा
मव्यक्तासक्तचेतसां ॥ अव्यक्ताहिगतिर्दुःखंदे
हवाद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

अन्वयः

येतु इंद्रियग्रामं सन्नियम्य सर्वत्र समबुद्धयः सर्वभूतहि
तेरताः संतः अनिर्देश्यं अव्यक्तं सर्वत्रगं अचिंत्यं च कूट
स्थं अचलंध्रुवं एवंभूतं अक्षरंप्रत्यगात्मतत्त्वं पर्युपासतेते

अपि मां एव प्राप्नुवंति हि यस्मात् अव्यक्ता गतिः दुःखं
यथा स्यात् तथा देहवद्भिः आवाप्यते तस्मात् तेषां अ-
व्यक्तासक्तचेतसां क्लेशः अधिकतरः भवति ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

टीका.

जो कोई मनुष्य सर्व इंद्रियोंको जीतिके सर्वत्र सचराचर
देहींमे समबुद्धि याने आत्माको एकसमान जाननेवाले इसीसे
वैसर्वभूत प्राणीमात्रके हितकारकहुयेभये अनिर्देश्य याने देवा-
दिक शरीरोंके शब्दों करिके कहनेमे न आवैं कि यह देव है
अथवा मनुष्य इत्यादिक है ऐसे कहनेमे न आवैं इसीसे अ-
व्यक्त याने अदृश्य है औ सर्वत्र देवादिकशरीरोंमे प्राप्त हो-
ता है औ अचिंत्य याने चिंतन करनेमेभी आता नहीं औ
कूटस्थ याने सर्वदा एकरस अर्थात् देवादिकशरीरोंमे प्राप्त व्हे के
भी स्वयं निर्विकार औ अचल याने स्वस्वरूपसे चलायमान न
ही इसीसे ध्रुव याने नित्य ऐसा जो अक्षरप्रत्यगात्मस्वरूपकी उ-
पासना करते हैं याने आत्मस्वरूपका अनुसंधान करते हैं वे भी
मेरेहीको प्राप्त होते हैं परंतु अव्यक्तगति याने अप्रकटवस्तुकी
प्राप्ति देहधारियों करिके दुःखसे भी प्राप्त होना कठिन है इसवा-
स्ते जिनका अव्यक्तयाने अप्रकटवस्तु आत्मातत्त्वमे चित्त लगा
है उनको क्लेश बहुतही होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

सूत्रम्

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥ अ-
नन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ ६ ॥ तेषां
महं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥ भवामिन-
चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसां ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेपार्थ ये तु सर्वाणी कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः
अनन्येन एव योगेन मां ध्यायंतः संतः उपासते मयि
आवेशितचेतसां तेषां अहं मृत्युसंसारसागरात् नचि
रात् समुद्धर्ता भवामि ॥६॥७॥

टीका.

हेपुत्रापुत्र जो कोई मनुष्य सर्वाणि कर्माणि याने लौकिक
क औ वैदिक सर्व कर्म लौकिकदेहधारणपोषणार्थ आहारादि
क औ वैदिक यज्ञदानादिक सर्व कर्म आध्यात्मबुद्धिसे मेरेमे
रखिके याने मेरे अर्पण करिके मत्पराः याने मही हौं पर प्रा
प्ति होने योग्य जिनके ऐसे जो अनन्यभक्तियोगकरिके मेरा
ही ध्यान करते भये सीही ध्यान पूजन कीर्त्तनरूप उपासना
करते हैं ऐसे जिनोंने मेरेमे चित्त लगाया है उनका मैं मेरी
प्राप्तिकी विरोधताकारक जो मृत्युरूप संसारसागर तिसते
थोड़ेही कालमे उद्धारकरौंगा ॥३॥७॥

मूलम्.

मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिनिवेशय ॥ निवसी
ष्यसिमय्येवअतऊर्ध्वनसंशयः ॥ ८ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन त्वं मयि एव मनःआधत्स्व मयि बुद्धिं निवेश
यअतःऊर्ध्वमयि एव निवसिष्यसि इति संशयःन ॥ ८ ॥

टीका.

हेअर्जुन तुम मेरे हीमे मनको युक्त करौयाने मेरेहीको अति
परमप्रिय जानिके मेरेही मिलनेका प्रयत्न करौ ऐसे मेरेहीमे
बुद्धिको प्रविष्ट करौ याने बुद्धिसे यही दृढनिश्चय करौ की श्रीम
न्नारायणके सेवाय दुसरा हमारे नहीं है तो इसमनके प्रवेश कर

नेके अनंतर मेरे समीपहीमे तुम निवास करोगे इसमे संशय नहीं है ॥८॥

मूलम्.

अथचित्तंसमाधातुंनशक्नोषिमयिस्थिरम् ॥ अ
भ्यासयोगेनततोमामिच्छाप्तुंधनंजय ॥ ९ ॥

अन्वयः

हेधनंजय अथ मयि स्थिरं चित्तं समाधातुं न शक्नोषि
ततः अभ्यासयोगेन मां प्राप्तुं इच्छ ॥९॥

टीका.

हेधनंजय अर्जुन जो सहसा मेरेमे चित्तके स्थिर समाधा
न नहीं करि सकते हो तौ अभ्यास योग करिके मेरी प्राप्तिकी
इच्छा करौ याने मेरे गुणकीर्त्तनश्रवणादिक करिके मेरा अखं
ड स्मरण करते भये मेरी प्राप्तिकी उत्कंठा करैरौ ॥ ९ ॥

मूलम्.

अभ्यासेप्यसमर्थोसिमत्कर्मपरमोभव ॥ मदर्थं
मपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

अन्वयः

अभ्यासे अपि असमर्थः असि तर्हि मत्कर्मपरमः भवम
दर्थं कर्माणि कुर्वन् सन् अपि सिद्धिं अवाप्स्यसि ॥ १० ॥

टीका.

जो कि तुम ऐसा स्मृतिरूप अभ्यास करनेकोभी असमर्थहो
तौ मेरे संबंधी कर्मोंमे तत्पर होहु याने मेरा मंदिर करावौ बाग
लगावौ मेरे मंदिरमे दीपक करौ झारौ लीपौ छिरकाव करौ मेरे
पूजननिमित्त पुष्पादिक लावौ पूजनकरौ नामकीर्त्तन प्रदक्षिणा
स्तुतिनमस्कार इत्यादिक कर्म मेरेवास्ते करौ तौ मेरेनिमित्त

कर्म करते करते मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त होउगे ॥ १० ॥

मूलम्.

अथैतदप्यशक्तोऽसिकर्तुमद्योगमाश्रितः ॥ सर्व
कर्मफलत्यागंततःकुरुयतात्मवान् ॥ ११ ॥

अन्वयः

अथ एतत् अपि कर्तुं मदर्थं कर्म कर्तुं अपि अशक्तः असि
ततः आत्मवान् भूत्वा मद्योगं आश्रितः सन् सर्वकर्म
फलत्यागं कुरु ॥ ११ ॥

टीका.

जो तुम यह जो मेरे अर्थ कर्म इसकोभी करनेको न समर्थ
होउ तौ मनको मेरी प्राप्तिके यत्नमे राखिके मेरे भक्तियो-
गका आश्रय करते हुवे सर्वलौकिक वैदिक कर्मके फलका त्या-
गकरौ ॥ ११ ॥

मूलम्.

श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाध्यनंविशिष्यते
॥ ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनंत
रम् ॥ १२ ॥

अन्वयः

अभ्यासात् श्रेयःज्ञानंभवतिज्ञातनात् ध्यानं विशिष्यते ध्या-
नात् कर्मफलत्यागः त्यागात् अनंतरं शान्तिःस्यात् ॥ १२ ॥

टीका.

अभ्यास करनेसे कल्याण कारक तत्त्वज्ञान होता है औ
ज्ञानसे ध्यान याने विचार होता है उस ध्यानसे याने विचारसे
सर्व कर्म याने लौकिक तथा वैदिक सर्व कर्मोंके फलका त्याग
होता है औ त्यागके पीछे शान्ति होती है याने संसारसे वै-
राग्य होता है ॥ १२ ॥

मूलम्.

अद्वेष्टासर्वभूतानामैत्रः करुण एव च ॥ निर्ममो
निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥ संतुष्टः स
ततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥ मय्यर्पितमनो
बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

अन्वयः

यः सर्वभूतानां अद्वेष्टा मैत्रः च करुणः एव च निर्ममः
निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी संतुष्टः स ततं योगी
यतात्मा दृढनिश्चयः मय्यर्पितमनो बुद्धिः सः मद्भक्तः
मे प्रियः अस्ति ॥ १३ ॥ १४ ॥

टीका

जो सर्वभूतोंका अद्वेष्टा याने सर्व मित्र तथा शत्रु इन सबोंसे
द्वेष न करै सबसे मित्रता रखै सवपर करुणा करै औ निर्मम
याने देह इंद्रिय औ देहसंबंधी स्त्री पुत्र द्रव्य गृहादिकोंको अ
पना न जानै औ निरहंकार याने देहाऽभिमान रहित होय औ
सुखदुःखमे सम याने सुखमे हर्ष न करै दुःखमे शोक न करै
औ क्षमी सहनशील होय संतुष्ट याने जो मिला उसीसे देह-
निर्वाह करिके संतुष्ट रहै औ निरंतर मेरे प्राप्तिरूप योगयुक्त
रहै औ मनको नियममे रखै औ मेरेही गुणकीर्तनादिकोंमे
दृढ निश्चय रखै ऐसेही मेरेहीमे मन औ बुद्धिको लगाये
होय सो मेरा भक्त मेरेको प्याराहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्.

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

लोकः कस्मात् न उद्विजसे च यः लोकात् न उद्विज
ते च यः हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः सः मे प्रियः अस्ति

॥ १५ ॥

टीका.

लोक याने कोईभी जन प्राणीमात्र जिससे उद्वेगको न प्राप्त होयै याने ऐसे कर्म करै जिससे लोगोंको पीडा न हो य औ वह आपभी लोगोंसे उद्वेगको न प्राप्त होय याने जि सके उद्वेगकारक कर्म कोईभी न करै इसीसे वह हर्ष औ अ मर्ष याने असहनशीलता ईर्ष्या औ भय तथा उद्वेग इनसे वह रहित होता है सो पुरुष मेरेको प्रिय है ॥ १५ ॥

मूलम्.

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥ सर्वारं
भपरित्यागी यो मद्भक्तः समेप्रियः ॥ १६ ॥

अन्वयः.

यः पुरुष अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः
सर्वारंभपरित्यागी सन् मद्भक्तः अस्ति सः मे प्रियः
अस्ति ॥ १६ ॥

टीका.

जो पुरुष अनपेक्षयाने आत्माके सेवाबिना औरसर्ववस्तुमे इच्छा रहित है औ शुचि याने जो शास्त्रविहित पदार्थ हैं उन्हीसे बढा है पवित्र शरीर जिनका अथवा बाहेर मृत्तिका जलादिसे औ अंदर चित्तकी शुद्धतासे पवित्र है औ दक्ष याने शास्त्रोक्त कर्म करनेमे समर्थ औ उदासीन याने शास्त्रीव्यवहारसे अन्य त्र उदासीन अथवा शत्रुता मित्रता करिके रहित औ गतव्य थः याने शास्त्रोक्त कर्म करते जो शीत उष्ण वर्ष धूप इत्यादिक स्पर्श करते हैं उनकी व्यथासे रहित औ सर्वारंभपरित्यागी

याने शास्त्रोक्तकर्मविना और सर्व आरंभोंका त्यागनेवाला
अथवा सर्व लोकीक वैदिक आरंभोंका फलत्याग करताभया
जो मेरा भक्त है सो मेरेको प्रिय है ॥ १६ ॥

मूलम.

योनहृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ॥ शुभा
शुभपरित्यागी भक्तिमान्यः समे प्रियः ॥ १७ ॥

अन्वयः

यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति यः शुभा-
शुभपरित्यागी सन् भक्तिमान् अस्ति सः मे प्रियः अ-
स्ति ॥ १७ ॥

टीका.

जो पुरुष मनुष्योंके हर्षकारक प्रियपदार्थ पाइके हर्षको
न प्राप्त होय औ अप्रियको द्वेष न करै औ शोकनिमित्त पु-
त्रवित्त नाशादिकका शोक न करै औ उन पुत्रवित्तादिकोंकी
इछाभी न करै औ शुभाशुभ याने पाप औ पुण्य अथवा शु-
भाशुभ कर्मोंके फलोंके त्यागता हुआ जो मेरी भक्तीयुक्त
होय सो मेरे को प्रीय है ॥ १७ ॥

मूलम.

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥ शीतो
ष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ॥ अ-
निकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

अन्वयः

यः नरः शत्रौ च मित्रे समः तथा मानापमानयोः समः
च शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥ तुल्य
निंदास्तुतिः मौनी येन केनचित् संतुष्टः अनिकेतः स्थिर

मतिः सन् भक्तिमान् सः नरः मे प्रियः ॥ १९ ॥

टीका.

जो पुरुष शत्रुमे द्वेषबुद्धि न करै औ मित्रमे हितबुद्धिभी न करै तैसे मान औ अपमानमे शीत औ उष्णमे सुख औ दुःखमे ड न सबौमे समचित्त औ संग जो आसक्ति उस करिके रहित ॥ १८ ॥ निंदा औ स्तुतिको सम मानै मौनी याने मितभाषी प्रयोजनविना बहुत भाषण न करै औ जो कुछ मिलै उसीकरिके संतुष्ट औ अनिकेत याने गृहमे आसक्त नहीं औ स्थिरबुद्धि वहै के भक्तिमान होय सो मेरा भक्त पुरुष मेरेको प्रिय है ॥ १९ ॥

अन्वयः

येतु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥ श्रद्धा
नामत्परमाभक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

अन्वयः

ये श्रद्धावानाः तु मत्परमाः भक्ताः इदं यथोक्तं धर्म्यामृतं
पर्युपासते ते मे अतीव प्रियाः संति ॥ २० ॥

टीका.

अब अध्यायसमाप्तिमे भगवान् आपके भक्तकी श्रेष्ठता देखाते हैं जे कोई मनुष्य श्रद्धाके धारण करनेवाले औ मही हौ परम उत्कृष्ट जिनके ऐसे जे मेरे भक्त इस यथोक्तधर्मरूप अमृतको धारण करते हैं याने जो मध्यावेद्यमन इत्यादि वाक्यप्रमाणसे मेरेको भजते हैं वै मेरेको अति प्रिय हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां श्री
गोशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वाद
शोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः
॥ १२ ॥

॥ इति द्वितीयषट्कं समाप्तम् ॥

॥ अथ तृतीयषट्कं प्रारभ्यते ॥

उपोद्घातः

प्रथमषट्के ईश्वरप्राप्तिका उपायभूत भक्ति जो उपासना औ
उस उपासनाका अंगभूत आत्मस्वरूपज्ञान सो आत्मज्ञान
ज्ञानयोग कर्मयोगनिष्ठाकरिके प्राप्त होता है ऐसा कहा औ म-
ध्यषट्कमेपरमात्मस्वरूपका यथार्थज्ञान औ उसके महात्मज्ञान-
पूर्वक उपासना जिसको भक्ति कहते हैं सो भक्तियोगप्रतिपादन
किया अब अंतषट्कमे प्रकृति औ पुरुषका निरूपण औ प्रकृति
पुरुषके संसर्गसे प्रपंचका होना कहेंगे औ प्रथमद्वितीयमे कहा
जो परमात्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय औ कर्म ज्ञान भक्ति इन-
के स्वरूप औ इनके उपादानके प्रकार न्यारे न्यारे कहेंगे तहां
तेरहें अध्यायमे देह औ आत्माके स्वरूप औ देह क्या है ऐसा
निश्चय औ देहसे न्यारा जो आत्मा उसकी प्राप्तिका उपाय
औ प्रकृतिसे मुक्तका स्वरूप औ उसका प्रकृतिसंबंधका कारण
औ प्रकृतिपुरुषविवेकका अनुसंधानप्रकार कहेंगे ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्र
मित्यभिधीयते ॥ एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति
तद्विदः ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे कौंतेय इदं शरीरं क्षेत्रं इति अभि
धीयते यः एवम् तेति तद्विदः तं क्षेत्रज्ञः इति प्राहु ॥ १ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् कहते भये कि हे कुंतिपुत्र यह शरीर क्षेत्र
अ ऐसा कहा जाता है और जो इसको जानता है उसको उ
सके जानतेवाले पुरुष क्षेत्रज्ञ ऐसा कहते हैं अर्थात् देह और
आत्माके जाननेवाले देहको क्षेत्र और आत्मा जो इस देहका
ज्ञाता है उसको क्षेत्रभकहते हैं ॥ १ ॥

३

मूलम्.

क्षेत्रज्ञां चापि मां विद्वि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥ क्षेत्रक्षे
त्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

अन्वयः

हे भारत सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं च मां अपि विद्वि यत् क्षेत्रक्षे
त्रज्ञयोः ज्ञानं तत् ज्ञानं मम मतं ॥ २ ॥

टीका.

हे भारत अर्जुन इव क्षेत्रज्ञे क्षेत्रज्ञ जो आत्मा और मैं जो पर
मात्मा मैं दोनों रहते हैं ऐसा तुम जानों इसविषयमें प्रमाण श्रु
ति है द्रौपदी सयुजौ सखायौ समानं वृक्षं परिषस्वजति ॥ तयो
रेकः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नयोऽभिचाकशीति ॥ अर्थ दो पक्षी सं
गसंग रहनेवाले परस्पर मित्र एकसरीखे वृक्षपर रहते हैं उनमें
एक उस वृक्षके स्वादुफल खाता है दूसरा फल स्वायविना प्रका
श करता है अर्थात् ईश्वर और जीव ऐदोनों एकसंग रहते हैं परस्पर
सखा हैं एकही देहमें रहते हैं उनमें जीव कर्मफलभोक्ता है और
ईश्वर साक्षीमात्र प्रकाशक है अथवा दूसरा अर्थ कहते हैं ॥
हे भारत सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं च तत् क्षेत्रमपि मां विद्वि ॥ अर्थ हे अर्जुन स

वक्षेत्राँमे क्षेत्रज्ञ औ वह क्षेत्रभी मेरेहीको जानौ याने मेरे वै शरीरमें उनाक अंतर्धामी हौं ऐसा जानौं जो इहां कोई शंका करै कि जीवात्मा औ परमात्मा न्यारे नहीं हैं उसी परमात्माका एक भाग आत्मा है अज्ञानसे जीव संज्ञक हुआ है औ ज्ञान प्राप्त होनेसे वही परमात्मामें मिलिकै परमात्माही होयगा इस शंकाके निवारणके वास्ते वाक्य लिखते हैं कि परमात्मा वद्व औ मुक्त दोनौ आत्मस्वरूपोंसे न्यारा है ॥ द्वाविमौपुरुषौ लोकेश्वरश्चाक्षरएवच ॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ योलोकत्रयमाविश्यविभर्त्यव्ययईश्वरः ॥ यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तमः ॥ अतोस्मिन्लोकेवेदेचप्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ इत्यादि वाक्यों करिके यहसिद्धहुआ कि वद्व मुक्त दोनौअवस्थाके जीवोंसे परमात्मान्यारा औ सर्वोत्तम है ॥ योलोकत्रयमाविश्यविभर्त्यव्यय ईश्वर इस वाक्यसे अंतर्धामित्वभी सिद्ध भया औ अंतर्धामित्वप्रमाणमें श्रुतीभी हैं ॥ अस्यपृथिवीशरीरंयः पृथिवीमंतरोयमयतिसतआत्मांतर्धाम्यमृतइत्यारभ्ययआत्मानितिष्ठन्नात्मनोंतरोयमात्मानवेद यस्यात्माशरीरंयमात्मनमंतरोयमयतिसतआत्मांतर्धाम्य मृतइत्याद्याः ॥ औ इहांभी कहाहै ॥ ईश्वरः सर्वभूतानांलक्ष्मेशर्जुनतिष्ठति ॥ नतद्वस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतंचराचरं ॥ इत्यादि वाक्यों करिके यह अर्थ सिद्ध हुआ कि शरीर क्षेत्र औ आत्मा क्षेत्रज्ञ औ मै उन दोनौका अंतर्धामी हौं यह जो क्षेत्र क्षेत्रज्ञका विवेकरूप जो ज्ञान सोई ज्ञानग्राह्य है यह मेरा मत है ॥ २ ॥

मूलम.

तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्कथद्विकारियतश्चयत् ॥ सच योयत्प्रभावश्चतत्समासेनमेश्रृणु ॥ ३ ॥

अन्वयः

तत् क्षेत्रं यत् च यादृक् च यद्विकारि च यतः च यत्त्र
स्ति च सः क्षेत्रज्ञः यः च यत्प्रभावः अस्ति तत् समा
सेन मे शृणु ॥ ३ ॥

टीका.

जो क्षेत्र कहा सो वह जो है औ जैसा है औ जो वि
कारों करिके युक्त है औ जिसवास्ते है औ जैसे स्वरूपयु
क्त है सो औ वह क्षेत्रज्ञ जो है औ जैसे प्रभावों करिके यु
क्त है सो सब संक्षेप करिके मेरेसे सुनौ ॥ ३ ॥

मूलम्.

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥ ब्र
ह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

अन्वयः

ऋषिभिः बहुधा गीतं विविधैः छंदोभिः पृथक् पृथक् गी
तं हेतुमद्भिः ब्रह्मसूत्रपदैः विनिश्चितैः एव गीतं ॥ ४ ॥

टीका.

जो यह क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञका ज्ञान है सो ज्ञान पराशरादिक
ऋषियोंने अनेकप्रकारसे कहा है औ वेदोंनेभि क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञ
का स्वरूपज्ञान न्यारा न्यारा कहा है औ ब्रह्मसूत्रके हेतुयुक्त प-
दोंकरिके निश्चय किया भया यहां है परंतु मैं संक्षेपसे कहता
हों सो सुनौ ॥ ४ ॥

मूलम्.

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥ इंद्रिया
णि दृशो कं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥ इच्छा द्वे

षःसुखदुःखसंघातश्चेतनाधृतिः ॥ एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतं ॥ ६ ॥

अन्वयः

महाभूतानि अहंकारः बुद्धिः च अव्यक्तं एव दश च एकं इंद्रियाणि च पंच इंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं अयं संघातः चेतना धृतिः भवति एतत् सविकारं क्षेत्रं समासेन उदाहृतं ॥ ६ ॥

टीका.

महाभूत अहंकारबुद्धि औ अव्यक्तयै ८ क्षेत्रजो शरीर तिसके आरंभके द्रव्य हैं पृथ्वी जल अग्नि वायु औ आकाश ये पांच महाभूत एक अहंकार जो इन भूतोंका आदि है एक बुद्धि याने महत्त्व औ एक अव्यक्त याने सूक्ष्मरूप प्रकृति ऐसे आठ अविकार अर्थात् कार्य कहते हैं श्रोत्र त्वक् चक्षुः जिह्वा औ घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय औ एक मन ऐसे एकादश ११ इंद्रिय औ शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच इंद्रियगोचर ये सोरह क्षेत्रविकार याने कार्य हैं ॥ ५ ॥ औ इच्छा द्वेष सुख दुःख ये चार ४ जद्यपि इच्छा द्वेष सुख दुःख ये आत्माके धर्म हैं तथापि क्षेत्रहीके संबंधसे आत्मामे प्रयुक्त होते हैं इसवास्ते क्षेत्रविकारकरिके कहे गये जो यह अष्टाईस तत्वका समूह काहा सो चेतनके आधार है अथवा चेतनका आधार है प्रकृति आदि लैके पृथ्वीपर्यंत ८ द्रव्य शरीरके आरंभका कारण हैं इंद्रियादिक इच्छा द्वेष सुख दुःख विकारयुक्तशरीर चेतनके सुखदुःख भोगनेका आधार हैं इसको क्षेत्र कहते हैं याने सुखादिकके उत्पत्तिका स्थान है इसवास्ते इसको क्षेत्र कहते हैं यह क्षेत्र मैंने कार्योंसहित संक्षेपसे कहा है ॥ ६ ॥

मूलम्.

अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवं ॥ आ
चार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥ इं
द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥ जन्ममृत्यु
जराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं ॥ ८ ॥ असक्तिर
नभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यं च समचित्त
त्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥ मयि चानन्ययोगे
न भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ विविक्तदेशसेवित्वम
रतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञाननित्य
त्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं ॥ एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम
ज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

अन्वयः

अमानित्वं अदंभित्वं अहिंसा क्षांतिः आर्जवं आचार्यो
पासनं शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥ इंद्रियार्थेषु वै
राग्यं च अनहंकारः एव जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदो
षानुदर्शनं ॥ ८ ॥ असक्तिः पुत्रदारगृहादिषु अनभि
ष्वंगः च इष्टानिष्टोपपत्तिषु नित्यं समचित्तत्वं ॥ ९ ॥
च मयि अनन्ययोगेन अव्यभिचारिणी भक्तिः विविक्त
देशसेवित्वं जनसंसदि अरतिः ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञान
नित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं इति एतत् ज्ञानं प्रोक्तं यत्
अतः अन्यथा तत् अज्ञानं ॥ ११ ॥

टीका.

अब क्षेत्र कार्योके विषे आत्मज्ञान साधननिमित्त गृहण क-
रने योग्य गुण कहते हैं अमानित्व याने गुणाधिक पुरुषसे मान

न चाहै अदंभित्व याने आपको धर्मिष्ठ कहानेके वास्ते धर्मकार्यको न देखावै जैसे कि मै दान पूजन इत्यादिक करौंगा तौ लोगमेरेको दानीभक्त ऐसा कहेंगे अहिंसा जो दूसरेको पीडाकारकर्म न करना सो क्षांतिः याने समर्थ वहैके दूसरेके अपराध सहन करना आर्जवं याने सर्वसे सीधे रहना आचार्योपासनं अर्थात् मन वाक्य औ शरीरकरिके गुरुकी सेवा करना शौच दोप्रकारका है बाह्य औ अभ्यंतर बाह्य जल मृत्तिकादिकसे अभ्यंतर निष्कपटपनासे ईश्वरका स्मरण स्थैर्य याने आध्यत्म-शास्त्र करिके कहेभये अर्थोमे निश्चलता आत्मविनिग्रह अर्थात् आत्मस्वरूपके सेवाय और विषयोंसे मनको निवारणकरना ॥ ७ ॥ इंद्रियार्थेषु वैराग्यं याने इंद्रियोंके विषयोंमे गुणबुद्धि न करना अनहंकार याने अनात्मा जो यह देह उसमे आत्माभिमान न करना अर्थात् देहसंबंधी सर्व स्त्री पुत्र धनादिकोंमे हमारे हैं ऐसा अभिमान न करना जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं याने जन्म होनेसे शरीर भया तब मृत्यु वृद्धावस्था रोग ये होतेही हैं औ अनिवार्य हैं ऐसा दुःखरूप दोषका देखना ॥ ८ ॥ असक्ति याने आत्माके सेवाय दूसरे पदार्थमे आसक्त न होना पुत्र दारगृहादिषु अनभिष्वंगः याने इन पुत्रादिकोंके नाश होनेसे हमभी मरेंगे ऐसी बुद्धि न करना आपका इच्छित अथवा अनिच्छित अर्थात् प्रिय औ अप्रियके प्राप्त होनेसे समचित्त रहना ॥ ९ ॥ औ मेरेमे अनन्य अखंडभक्ति राखना औ एकांतमे बैठना लोकोंमे बैठनेसे नाराज रहना ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञानमे नित्य निष्ठा रखना औ तत्त्वज्ञानका प्रयोजन देखा करना ऐसे ये आत्मज्ञानके उपयोगी गुण कहे इनका समूह यही ज्ञान है औ इन गुणोंके सेवाय और गुण आत्मज्ञानके विरोधी हैं इसवास्ते उनका समूह आज्ञान है ॥ ११ ॥

सूत्रम्.

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ अ
नादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

अन्वयः

यत् ज्ञेयं तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते
किंभूतं अनादि मत्परं ब्रह्म तत् सत् न उच्यते न
असत् उच्यते ॥ १२ ॥

टीका.

जो प्रथम कहा कि इस क्षेत्रके जाननेवालेको क्षेत्रज्ञ कहते
हैं सो उस क्षेत्रज्ञका ज्ञातृत्व याने जानपन खुलासा कहते हैं
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि इत्यादि करिके अमानित्व इत्यादि साध
नों करिके जो आत्मस्वरूप जानने योग्य है सो मैं कहता हों
जिसको जानिके जरामरणादिक प्राकृत धर्मोंसे रहित अमृत
जो आत्मस्वरूप उसको प्राप्त होता है सो आत्मस्वरूप कैसा
है कि अनादि जिसका आदि याने जन्म नहीं है जब जन्म नहीं
तो मरणभी अर्थात् नहीं इहां श्रुतिभी प्रमाण है ॥ न जायते विद्यते
वा विपश्चित् ॥ तथा मत्परं याने मैं हों पर उत्कृष्ट अंतर्धामी जि-
सका ऐसा वह आत्मा है इहां प्रमाण ॥ इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि
मे परां जीवभूतामिति ॥ इस करिके यह कहा कि वह आत्मा मेरा
शरीर है इस विषयमे भी श्रुति प्रमाण लिखते हैं ॥ य आत्मानि ति-
ष्ठन्नात्मनो तरो यमात्मानवदे ॥ यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमंत
रो यमयतीति ॥ तथा ब्रह्म याने बृहत्त्वगुणयुक्त शरीरसे न्यारा
अर्थात् क्षेत्रज्ञ जीवात्माको ब्रह्म कहनेमे प्रमाण प्रथमही लिखा
है ॥ सगुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ऐसे शुद्धस्वरूप
जीवात्माहीको ब्रह्म कहा है इसका भी कोई अर्थ करते हैं कि

ब्रह्मभूयायकल्पते अर्थात् जैसे घटाकाश घट नष्ट होनेसे महदाकाशमें मिलता है ऐसे यह भी परमात्मामें मिलनेसे ब्रह्म कहता है तहां समुझना चाहिये कि उन विद्वद्भूषणोंकी बुद्धिमें कफवायुकी अधिकतासे मैल चढ़गया है इसवास्ते उनको पूर्वापरका विचार नहीं रहता है क्योंकि इसीमें प्रमाण हैं ॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मानशोचति गकांक्षति ॥ समः वर्षेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां ॥ इन वाक्योंमें यह खुलासा दीखता है कि ब्रह्म व्हेके मेरी परमभक्तिका पावता है जो एकमें मिलि जायगा उसको भक्ति मिलनेका संभव कैसे होयगा इसवास्ते इहां निश्चय यही है कि ब्रह्मप्रकृतिरहित शुद्ध जीवात्मा ही इस प्रकरणमें कहा और भी कारण दिखता है कि यह अध्याय भी प्रकृतिपुरुषविवेकयोगनाम है इसवास्ते इहां शुद्ध जीवात्मा हीका नाम ब्रह्म कहना चाहिये तथा सो प्रत्यात्मा न सत् है न असत् है याने स्थूल सूक्ष्म दोनों अवस्थाओंसे रहित है अर्थात् कार्य औ कारण इन दोनोंसे रहित है कार्यअवस्थामें देवादिक नाम रूप योग्य होता है जब सत् कहते हैं औ कारण अवस्थामें नामरूपके योग्य नहीं अतिसूक्ष्म हैं तब असत् कहते हैं ये दोनों अवस्था कर्म रूप अविद्याकृत हैं औ शुद्धस्वरूपके नहीं इसवास्ते वह सत् औ असत् रहित है ॥ १२ ॥

मूलम्.

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं ॥ सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

अन्वयः

तत् सर्वतः पाणिपादं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं सर्वतः श्रुतिमत् सर्वं आवृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

टीका.

सो शुद्धस्वरूप जीवात्मा सर्व और हात पावों करिके युक्त है याने उसके सर्व और हाथ पांव है अर्थात् सर्व औरसे हाथ पावोंका कार्य करि सकता है औ तैसाही सर्व औरसे नेत्र मस्तक औ मुखोंकरिके युक्त है औ वैसाही सर्व और उसके कान हैं अर्थात् सर्व ओरसे नेत्रादिकोंका काम करि सकता है जैसे कि परमात्माका वर्णन किया है कि ॥ अपाणिपादोजवनोगृही तापश्यत्यचक्षुः सशृणो त्यकर्णः इति ॥ अर्थवह परमात्मा हाथ विना गृहण करता है पायँविना बड़े वेगसे चलता है नेत्रविना देखता है कानविना सुनता है ऐसेही जीवात्माभी मुक्तदशामे परमात्माके सदृश होता है इहां प्रमाण श्रुति औगीताहीके वाक्य है ॥ तथाविद्वान्पुण्यपापेविधुयनिरंजनः परमं साम्यमुपै तिश्रुतिः ॥ औ इहांभी अगाडी कहेंगे ॥ इदंज्ञानमुपाश्रित्यमम साधर्म्यमागतः ॥ इति जब प्रकृतिविमुक्त शुद्ध व्हैके परमात्मा की समताको प्राप्त भवा तब सर्व औरहाथइत्यादिक होनेमे क्या संदेह है औ लोकमे जो वस्तुमात्र है उसका व्यापक व्हैके स्थित होता है इहां प्रसिद्ध देखनेमे आता है कि इंद्रादिका देवता प्रकृतियुक्तभी जीव हैं ऐसेही हनुमान औ भैरव इत्यादिकभी जीव हैं इनका आराधन एकही समयमे पृथ्वीपर अनेक ठेकाने होता है सो वै सर्वका किथाहुआ आराधन स्वीकार करिके सर्वको सिद्धी देते हैं औ केतनेक पिशाचों मेंभी जब रहें तौं वै एकही समयमे अनेक जगह व्यापक होते हैं औरभी केतनेक देहोकेभी हाथ पाव मुख नेत्रइत्यादिक सर्व ओरको होते हैं जैसे दुमुहां इत्यादिक सर्प बहुत नेत्रोंकी मक्खी इनमे रहनेसे सर्व ओरको नेत्रादिक होते ही है इसमे शंका क्या है ॥ १३ ॥

मूलम्.

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥ अस-
क्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

अन्वयः

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं असक्तं च सर्वभूत
एव निर्गुणं च गुणभोक्तृ अस्ति ॥ १४ ॥

टीका.

सर्वेन्द्रियोंकी वृत्तिकरिकै है आभास जिसका अर्थात् सर्व
इन्द्रियोंकी वृत्तिकरिकै विषयोंको जाननेको समर्थ है औ स्वतः
स्वभावसे सर्व इन्द्रियोंकरिकै रहित है अर्थात् इन्द्रियोंकी वृत्ति-
विनाभी आपही सर्व जानता है औ असक्त है याने स्वभाव
सेही देवादिदेहोंके संगसे रहित है औ सर्वभूत याने देवादिक
सर्व देहोंके भरण पोषण करनेमे समर्थ है निर्गुण याने सत्वादि
गुणरहित है औ गुणभोक्तृ याने सत्वादिगुणोंको भोगि सकता
है ॥ १४ ॥

मूलम्.

बहिरंतश्च भूतानामचरंचरमेव च ॥ सूक्ष्मत्वात्
दविज्ञेयंदूरस्थंचांतिके च तत् ॥ १५ ॥

अन्वयः

तत् आत्मतत्त्वं भूतानां बहिः च अंतः वर्तते च
अचरं चरं एव भवति सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयं तत्
दूरस्थं च अंतिके अपि अस्ति ॥ १५ ॥

टीका.

वह आत्मतत्त्व मुक्तदशामे तौ भूतोंके बाहेर औ वृद्धावस्था
मे अंदर वर्तमान होता है औ वह स्वतः अचर है तौभी देहयोग
से चर होता है सूक्ष्म है इसवास्ते जाननेमे मही आता है ऐ-

वह अज्ञानियोंके दूर है तथा ज्ञानियोंको नजीकभी है ॥ १५ ॥

मूलम्.

अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचस्थितं ॥ भूत
भर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥ १६ ॥

अन्वयः

तत् आत्मातत्त्वं भूतेषु अविभक्तं च विभक्तं इव स्थितं
अस्ति च तत् भूतभर्तृ ज्ञेयं च ग्रसिष्णु ज्ञेयं च प्रभवि-
ष्णुज्ञेयं ॥ १६ ॥

टीका.

वह आत्मतत्त्व पृथिव्यादि भूतविकार देवादिक शरीरोंमें
अविभक्त याने एकरस अर्थात् देवशरीरसे लैके पिपीलिकापर्यं
त भूतप्राणीमें एक समान है यह नहीं कि देवशरीरोंमें देवाका
र पिपीलिकादिकोंमें पिपीलिकादिक आकार होता है क्यों
कि वह देहसे न्यारा सदा एकरस है परंतु अज्ञानिलोगोंको दे
वादिशरीरोंमें देवादिशरीरसदृश दीखता है औ वह देवादिक
भूत ताके पोषण है औ अन्नादिक भूतोंका भक्षक याने शरीर
रूपसे आहार करनेवाले है औ उसी अन्नादिक भूतविकारसे
उत्पन्नकारकभी है ॥ १६ ॥

मूलम्.

ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते ॥
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्यधिष्ठितं ॥ १७ ॥

अन्वयः

तत् ज्योतिषां अपि ज्योतिः तमसः परं उच्यते च ज्ञा
नं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं सर्वस्य हृदिऽधिष्ठितं ॥ १७ ॥

टीका.

वह आत्मतत्त्व सूर्य दीपादिक ज्योतियोंकाभी प्रकाशक
औ तुम जो सूक्ष्मकारणरूप प्रकृति उसतेभी परे है याने भिन्न
है औ ज्ञानरूप है तथा जाननेयोग्य है औ ज्ञानसे प्राप्त वहैस-
कता है औ सर्वदेवादिकशरीरोंके हृदयमे स्थित है ॥ १७ ॥

मूलम्.

इतिक्षेत्रंतथाज्ञानंज्ञेयंचोक्तंसमासतः ॥ मद्भ

क्तएतद्विज्ञायमद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

अन्वयः

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं च ज्ञेयं समासतः उक्तं मद्भक्तः ए
तत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते ॥ १८ ॥

टीका

हेअर्जुन महाभूतान्यहंकार इहांसे लैके संघातश्चेतनाधृति-
ऐसे इहांपर्यंत क्षेत्रतत्त्व संक्षेपसे कहा औ अमानित्वसे लैके त-
त्त्वज्ञानार्थदर्शनं इहांतक ज्ञानसाधन कहा औ अनादिमत्परंब्र-
ह्मसे लैके हृदिसर्वस्यधिष्ठितं इहांतक ज्ञेय याने जानने योग्य
आत्मयाथात्म्य कहा मेराभक्त यह जानिके याने क्षेत्रस्वरूप
क्षेत्रसे भिन्न आत्मस्वरूप औ उसके प्राप्तिहोनेका उपाय जा-
निके मेरे भाव याने असंसारी स्वभावको प्राप्त होय अर्थात्
मोक्षप्राप्तिके योग्य होय ॥ १८ ॥

मूलम्.

प्रकृतिंपुरुषंचैवविद्वचनादिउभावपि ॥ विका

रांश्चगुणांश्चैवविद्विप्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

अन्वयः

प्रकृतिं च पुरुषं उभौ अपि अनादी विद्वि विकारान्
च गुणान् एव प्रकृतिसंभवान् विद्वि ॥ १९ ॥

टीका.

अब अत्यंत न्यारे न्यारे स्वभावयुक्त जो प्रकृतिपुरुष उनके संसर्ग याने मिलापका अनादिपना औ उन दोनों संसर्गियोंका कार्यभेद जो संसर्गका हेतु है सो कहते हैं जैसे कि प्रकृति औ पुरुष ये दोनों परस्पर मिलापी औ अनादी हैं ऐसा जानो औ बंधनकारणभूत जे इच्छाद्वेषादिक विकार तथा मोक्षकारणभूत अमानित्वादि गुण ये प्रकृतिसे उत्पन्न हैं ऐसा जानौं अर्थात् पुरुषको मिलिभई यह प्रकृति आपके इच्छा द्वेषादिक विकारों करिके बंधन करनेवाली होती है औ वही अमानित्वादिआप केगुणोंकरिके पुरुषके मोक्षकी कारण होती है ॥ १९ ॥

मूलम

कार्यकारणकर्तृत्वेहेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥ पुरुषः

सुखदुःखानां भोक्तृत्वेहेतुरुच्यते ॥ २० ॥

अन्वयः

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः पुरुषः उच्यते ॥ २० ॥

टीका.

मिले भये जो प्रकृतिपुरुष हैं उनका कार्यभेद कहते हैं जैसे कि कार्य शरीर औ कारण मनयुक्त इंद्रियां इनके क्रिया करावनेमे हेतु पुरुषाधिष्ठित प्रकृति है अर्थात् भोगसाधनक्रिया पुरुषकरिके अधिष्ठित क्षेत्राकार परिणामको प्राप्त भई जो प्रकृति उसहीके आश्रित है औ सुखदुःखोंके भोक्तृत्वमे कारण पुरुष है याने प्रकृतिके संसर्गसे सुख औ दुःखके अनुभवका आश्रय पुरुष है ऐसे परस्पर मिलेभये प्रकृतिपुरुषोंका कार्यभेद कहा ॥ २० ॥

मूलम्.

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान् ॥
कारणं गुणसंगोऽस्य सदस्यो निजन्मसु ॥ २१ ॥

अन्वयः

हि यस्मात् पुरुषः प्रकृतिस्थितः सन् प्रकृतिजान् गु-
णान् भुंक्ते तस्मात् अस्य सदस्यो निजन्मसु गुणसंगः
कारणं भवति ॥ २१ ॥

टीका.

जिसवास्ते कि पुरुषप्रकृतिमे स्थित व्हाँके प्रकृतिजन्य गु-
ण याने प्रकृतिके मत्वादिक गुणोंके कार्य जो सुखदुःखादिक
उनको भोगता है इसीवास्ते इसके उँच औ नीच योनिमे
जन्म लेनेमे उन गुणोंका संगही कारण है अर्थात् सत्वादि गु-
णोंकी आसक्तीसे पुण्यपापरूप कर्म करता है उनसे फिरि उँच
नीच योनिमे जन्मता है जैसे कि पुण्यसे देवयोनि इत्यादिक
औ पापकर्मसे पशु इत्यादिकमे जन्मिके सुखदुःखादिकारक
कर्म करता है फिरिभी जन्मता है ऐसे जबतक अमानित्वादि
क गुणयुक्त नहीं होता है तबतक संसरता है ॥ २१ ॥

मूलम्.

उपद्रष्टाऽनुमंता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ॥ परमा-
त्मेति चाप्युक्तो देहोऽस्मिन् पुरुषः परः ॥ २२ ॥

अन्वयः

अस्मिन् देहे वर्तमानः पुरुषः अस्य देहस्य उपद्रष्टा च
अनुमंता च भर्ता च भोक्ता च महेश्वरः अस्ति अतः
सः आत्मा अस्मात् देहात् परः अपि तथापि अज्ञैः प-
रं आत्मा इति अर्थात् देहः इति उक्तः ॥ २२ ॥

टीका.

इस देहमे वर्तमान पुरुष इस देहका देखनेवाला औ अनुमान करनेवाला औ भरण पोषण करनेवाला औ भोगनेवाला औ इस देहका महेश्वर है इन्ही कारणोंसे यह जीवात्मा इस देहसे पर याने न्यारा अर्थात् देहसे दूसरा है तौभी अज्ञानी पुरुषों करिके केवल देह याने यही देह है अर्थात् देह औ आत्मा एकही है ऐसा कहा है ॥ २२ ॥

मूलम्.

यएवंवत्तिपुरुषंप्रकृतिंचगुणैःसह ॥ सर्वथावर्तमानोऽपिनसभूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

अन्वयः

य एवं पुरुषं च गुणैः सह प्रकृतिं वेत्ति सः सर्वथा वर्तमानः भूयः न अभिजायते ॥ २३ ॥

टीका.

जो ऐसे प्रकारसे पुरुषको जानता है औ स्वकीय सत्वादि गुणों करिके सहित प्रकृतिको जानता है सो सर्व तरहसे संसारमे वर्तमान है तौभी फिरि जन्मता नहीं ॥ २३ ॥

मूलम्.

ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मानमात्मना ॥
अन्ये सांख्येनयोगेनकर्मयोगेनचापरे ॥ २४ ॥
अन्येत्वेवमजनंतःश्रुत्वाऽन्येभ्यउपासते ॥ ते
ऽपिचातितरंत्येवमृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्वयः

केचित् निष्पन्नयोगाः आत्मनि स्थितं आत्मानं आत्म

ना ध्यानेन पश्यन्ति अन्ये अनिष्पन्नयोगाः सांख्येन योगेन पश्यन्ति च अपरे अनिष्पन्नयोगज्ञानाः कर्मयोगेन पश्यन्ति ॥ २४ ॥ तु अन्ये एवं अजानन्तः अन्येभ्यः श्रुत्वा कर्मयोगादिभिः उपासते च ये श्रुतिपरायणाः ते अपि मृत्युं अतितरन्ति एव ॥ २५ ॥

टीका.

केतने पुरुष जिनको योग प्राप्त भया है वै योगी देहमे स्थित आत्माको मनसे ध्यान याने भक्तियोग करिके देखते हैं औ दूसरे जिनको योग नहीं प्राप्त भया है वै सांख्ययोग या ने ज्ञानयोग करिके योगके योग्य मनको करिके आत्माको देखते हैं औ दूसरे जिनको योग औ ज्ञानभी नहीं प्राप्त भया है केवल प्राप्तिकी इच्छा मात्र करिके कर्मयोग करते हैं तब वै उस कर्मयोगहीके अंतर्गत ज्ञानकरिके मनको योगके योग्य करिके उससे आत्माको देखते हैं ॥ २४ ॥ औ औरभी दूसरे ऐसे कर्मयोगकोभी नहीं जानते हैं वै और ज्ञानियोंसे सुनिके कर्मयोगादिक करिके पूर्ववत् आत्माकी उपासना करते हैं याने कर्मसे सांख्य सांख्यसे योग प्राप्त व्हाके उस योगबलसे आत्माको देखते औ जो केवल श्रवणमात्रमे श्रद्धा रखते हैं वैभी मृत्युको उल्लंघन करते हैं याने आत्मदर्शन पायके मुक्त होते हैं ॥ २५ ॥

मूलम्.

यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजंगमं ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

अन्वयः

यावत् स्थावरजंगमं यत्किञ्चित् सत्त्वं संजायते हे भरतर्षभ तत् सर्वं क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् विद्धि ॥ २६ ॥

जेतना स्थावर औ जंगम रूपकरिके जो कुछ सत्त्व उत्प-
न्न होता है हे अर्जुन सो सर्व क्षेत्र क्षेत्रज्ञ याने जीव औ प्रकृ-
तिके संयोगसे होता है ऐसा जानौ ॥ २६ ॥

मूलम्.

समंसर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं ॥ विनश्यत्स्व
विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

अन्वयः

यः सर्वेषु भूतेषु समं तिष्ठन्तं परमेश्वरं तेषु विनश्यत्सु
अविनश्यन्तं पश्यति सः पश्यति ॥ २७ ॥

टीका.

जो पुरुष सर्व भूतोंमे समस्थित औ परमेश्वर याने मनई
द्रियादिकोंका केवल ईश्वर अथवा पर जो परमात्मा सोहै ई-
श्वर जिसका ऐसे आत्माको इंद्रादिभूतोंके विनाश होनेसे भी
विनाशरहित देखता है सोई देखता है ॥ २७ ॥

मूलम्.

समंपश्यन् न हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरं ॥ न हिन-
त्स्यात्मानात्मानं ततो याति परां गतिं ॥ २८ ॥

अन्वयः

सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं समं पश्यन् सन् हि आत्म-
ना आत्मानं न हिनस्ति ततः परां गतिं याति ॥ २८ ॥

टीका

सर्वत्र देवादि विषमाकार शरीरोंमे स्थित जो मनई द्रियादि
कोंका ईश्वर आत्मा तिसको सम देखता भया जिसवास्ते कि
बुद्धिपूर्वक आत्माको संसारमे नहि पटकता है इसीवास्ते परां

गतीको याने आत्मरूपको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

सूत्रम्.

प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

अन्वयः

यः सर्वशः कर्माणि प्रकृत्या एव क्रियमाणानि इति पश्यति च तथा आत्मानं अकर्तारं पश्यति सः एव पश्यति ॥ २९ ॥

टीका.

जो सर्वकर्मोंको प्रकृतिहीके किये भये जानता है नयो देहादिरूप परिणामको प्राप्तभई प्रकृतिही करती है ऐसा देखता है और आत्माको अकरता देखता है सोई देखता है अर्थात् और नहीं देखता है याने आत्मस्वरूप देखता है ॥ २९ ॥

सूत्रम्.

यदाभूतपृथक्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥

अतएवचविस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

अन्वयः

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं अनुपश्यति च अतः एव विस्तारं पश्यति तदा ब्रह्म संपद्यते ॥ ३० ॥

टीका.

जब प्रकृतिपुरुष तत्त्वद्वयात्मक सर्व देवादि भूतोंका देवतम मनुष्यत्व नृस्वत्व दीर्घत्व कृशत्व स्थूलत्व इत्यादिक पृथग्भावोंको एकप्रतिहीमे स्थित देखता है और इसीप्रकृतिसे पुत्रपौत्रादि रूप विस्तार देखता है तब शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

मूलम्.

आनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ॥
शरीरस्योपिकौंतेयनकरोतिनलिप्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय अयं परमात्मा अनादित्वात् अव्ययः निर्गुणत्वात् शरीरस्थः अपि न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

टीका.

हेकुंतिपुत्र यह परमात्मा याने देहादिकौंसे पर अर्थात् अन्य आत्मा अनादि है इसवास्ते अविनाशी है औ निर्गुण याने सत्वादिगुणरहित है इसते न करता है न फलोंकरि लिप्त होता है ॥ ३१ ॥

अ. १८

मूलम्.

यथासर्वतंगसौक्ष्म्यादाकाशंनोपलिप्यते ॥ स
र्वत्रावस्थितोदेहेतथात्मानोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

अन्वयः

यथा सर्वतंगं आकाशं सौक्ष्म्यात् सर्वस्वभावैः न उपलिप्यते तथा सर्वत्र देहे अवस्थितः आत्मा देहस्वभावैः न उपलिप्यते ॥ ३२ ॥

टीका.

जैसे सर्व वस्तुमें प्राप्त भयाहुवा आकाश सूक्ष्मपणसे सर्वभूतोंके स्वभावों करिके लिप्त नहीं होता है तैसेहीसर्वत्र देवादिकदेहमें स्थित आत्मा सूक्ष्मत्वसे सर्व देहोंके स्वभावों करिके लिप्त नहीं होता है ॥ ३२ ॥

मूलम्.

यथाप्रकाशयत्येकःकृत्स्नलोकमिमंरविः ॥ क्षेत्र
क्षेत्रीतथाकृत्स्नंप्रकाशयतिभारत ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हेभारत यथा एकः रविः इमं कृत्स्नं लोकं प्रकाशयति
तथा क्षेत्री कृत्स्नं क्षेत्रं प्रकाशयति ॥ ३३ ॥

टीका.

हे अर्जुन जैसे एक सूर्य आपके प्रकाशकरिके इस सर्व लो-
कको प्रकाशित करता है तैसेही क्षेत्री याने आत्मा इस सर्व क्षेत्र
याने सर्व शरीरको आपने ज्ञानकरिके प्रकाशित करता है ॥ ३३ ॥

मूलम्.

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥ भूतप्रकृतिमो-
क्षं च ये विदुर्याति ते परम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः

ये क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवं अंतरं ज्ञानचक्षुषा पश्यन्ति च
भूतप्रकृतिमोक्षं विदुः ते परं याति ॥ ३४ ॥

टीका.

जे कोई पुरुष क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञका ऐसा अंतर ज्ञानदृष्टि-
रिके देखते हैं औ भूतप्रकृतिका मोक्ष जानते हैं वै पर जो शुद्ध
आत्मस्वरूप उसको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषवि-
वेकयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीकायां त्रयोदशो
ऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ परंभूयःप्रवक्ष्यामिज्ञानाना
ज्ञानमुत्तमं ॥ यज्ज्ञात्वामुनयःसर्वेपरांसिद्धिमितो
गताः ॥ १ ॥ इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमाग
ताः ॥ सर्गेऽपिनोपजायंतेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच अहं ज्ञानानां उत्तमं परं ज्ञानं भूयः प्र
वक्ष्यामि यत् ज्ञानं ज्ञात्वा सर्वे मुनयः इतःपरां सिद्धिं ग
ताः ॥ १ ॥ तेमुनयः इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यं
आगताः संतः सर्गे अपि न उपजायंते च प्रलयेऽपि न
व्यथंति ॥ २ ॥

टीका.

तेरहे अध्यायमे यह कहाकि परस्पर आश्रित भयेहुये प्रकृ
ति औ पुरुषका स्वरूपनिश्चय जानिके भगवद्भक्ति करिके प्राप्त
भये अमानित्वादिगुणोंकरिके बंधनसे छूटते है तहाँ कहाकिबं
धनका कारण सत्त्वादिगुणमयसुखादिकोंकी आसक्ती है ॥
कारणगुणसंगोस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥ इसकरिके अब चौदहेमे
जैसे गुणबंधनके कारण होते हैं सो औ गुणोंसे मुक्त होनेका प्र
कार कहेंगे ॥ श्रीकृष्णभगवान् कहतेभये कि मै ज्ञानोंमे उत्तम
पूर्वोक्तज्ञानसेदूसराऔप्रकृतिपुरुषकेहीअंतर्गत सत्त्वादिगुणवि
षयिकज्ञान फिरिभी कहता हौं जिस ज्ञानको जानिके सर्व मुनी
जन संसारसे पर सिद्धि जो मोक्ष उस मोक्षको प्राप्त भये हैं ॥ १॥
अब मोक्ष प्राप्त भयोंका स्वरूप कहते हैं जो अगाडी कहौंगा
इसी ज्ञानका वै मुनिअनुष्ठान करिके याने इसका अनुसंधान
करिके मेरे साधर्म्यको अर्थात् मेरे सदृश रूप औ सुखको प्राप्त

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

२६४

भये हैं वै उत्पत्तिकालमे जन्मतेभी नहीं औ प्रलयकालमे व्य-
थाकोभी नहीं प्राप्त होते हैं याने लयमे आते नहीं ॥ २ ॥

मूलम्

ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन् गर्भं दधाम्यहं ॥ संभ-
वः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

अन्वयः

मम मदीयः योनिः महद्ब्रह्म अस्ति अहं तस्मिन् गर्भं द-
धामि हे भारत ततः सर्वभूतानां संभवः भवति ॥ ३ ॥

टीका.

अब यह कहते हैं कि जो प्रकृतिपुरुषके योगसे भूतप्राणी
मात्रकी उत्पत्ति है वहभी मेरेही स्वाधीन है जैसेकि मेरे गर्भ
धारण करनेका स्थान जो महद्ब्रह्म याने प्रकृति उसमे मैं चेत-
नरूप याने जीवरूप गर्भधारण करता हौं हे अर्जुन उसीसे स-
र्व भूतप्राणीमात्रकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

मूलम्.

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्तयः संभवंतियाः ॥ तासां
ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय सर्वयोनिषु याः मूर्तयः संभवंति तासां ब्रह्म
हत् योनिः बीजप्रदः पिता अहं अस्मि ॥ ४ ॥

टीका.

हे कुंतीपुत्र सर्व देव मनुष्य पशु पक्षी औ कीट इत्यादिक
योनियोंमे जो मूर्ती उत्पन्न होती हैं उनका उत्पत्तिकारण प्र-
कृति है औ बीज जो चेतनवर्ग जीव उसका धारण पालन
करने वाला मैं हौं ॥ ४ ॥

मूलम्

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥ निब
ध्नंति महाबाहो देहे देहि नमव्ययं ॥ ५ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतिसंभवाः गुणाः
देहे अव्ययं देहिनं निबध्नंति ॥ ५ ॥

टीका.

हे अर्जुन सत्त्व रज औ तम ये प्रकृतिजन्य गुण देहके
विषे रहे भये जीवको बंधन प्राप्त करते हैं औ आपस्वरूपसे
तौ वह जीव अविनाशी है ॥ ५ ॥

मूलम्.

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयं ॥ सुखं स
गेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

अन्वयः

हे अनघ तत्र निर्मलत्वात् सत्त्वं प्रकाशकं अनामयं अ
स्ति तत् सुखसंगेन च ज्ञानसंगेन बध्नाति ॥ ६ ॥

टीका.

हे अनघ याने हेनिष्पाप अर्जुन तहां उन तीनौ गुणौमे
सत्यगुण मलरहित है इसवास्ते प्रकाशक है याने विहित अ
र्थात् करनेयोग्य कार्यका देखानेवाला औ व्याधिरहित है सो
सुख औ ज्ञानकी आसक्तीमे बांधता है याने सुख औ ज्ञान उ-
त्पत्ति करता है उसते फिरि देवादिशरीर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम्.

रजो रागात्मकं विद्वितृष्णासंगमुद्भवं ॥ तन्निब

२६६ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

ध्यातिकौंतेयकर्मसंगेनदेहिनं ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय तृष्णासंगसमुद्भवं रजः रागात्मकं विद्धि तत्
कर्मसंगे देहिनं निवध्नाति ॥ ७ ॥

टीका.

हेकुंतीपुत्र तृष्णा औ संगकी है उत्पत्ति जिसते ऐसा रजोगुण रागका कारण है तृष्णा याने शब्दादिविषयोंकी चाहना संग याने स्त्री पुत्र मित्रादिकोंका मिलाप राग याने स्त्री पुरुषकी परस्पर चाहना प्रीति इन सबका कारण रजोगुण है इसवास्ते वह जो जो कर्मकी इछा कराइके कर्म करताही है उसी कर्मके माफिक योनियौमे यह जीव जन्मताहै ॥ ७ ॥

मूलम्.

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनां ॥ प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाविभारत ॥ ८ ॥

अन्वयः

हेभारत तमः अज्ञानजं विद्धि तु सर्वदेहिनां मोहनं विद्धि
तत् प्रमादालस्यनिद्राभिः देहिनं निबध्नाति ॥ ८ ॥

टीका.

हेभारत अर्जुन तमोगुण अज्ञानकी उत्पत्तिकारक है इसीसे सर्वदेहधारियोंको मोहनेवाला है याने विपरीतज्ञान उत्पादका है सो तमोगुण प्रमाद आलस्य औ निद्राकरिके देहधारीको बांधता है प्रमाद याने करनेयोग्यकार्यको छोडना औ न करने योग्य करना आलस्य याने कोईभी कार्य करनेमे निरुद्यमता निद्रा याने पुरुषके इंद्रियोंकी प्रवृत्ति शांति सो निद्रा तहां बाह्य इंद्रियोंकी विश्रान्तिस्वप्न औ मनकाभी उपराम सुषुप्ति जानना ॥ ८ ॥

मूलम्.

सत्त्वंसुखेसंजयतिरजःकर्मणिभारत ॥ ज्ञानमा
वृत्यतुतमःप्रमादेसंजयत्युत ॥ ९ ॥

अन्वयः

हे भारत सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि संजयति त-
मः ज्ञानं आवृत्य उत प्रमादे संजयति ॥ ९ ॥

टीका.

अव सत्त्वादिकके प्राधान्यकार्य कहते हैं सत्त्वगुण सुखमें
लगता है रजोगुण कर्ममें औ तमोगुण ज्ञानको ढाकिके प्रमा-
दमें लगाता है ॥ ९

मूलम्.

रजस्तमश्चाभिभूयसत्त्वंभवतिभारत ॥ रजःस-
त्त्वंतमश्चैवतमःसत्त्वरजस्तथा ॥ १० ॥

अन्वयः

हेभारत रजः च तमः अभिभूय सत्त्वं भवति च रजः स-
त्त्वं अभिभूय तमः भवति तथा तमः सत्त्वं अभिभूय र-
जः भवति ॥ १० ॥

टीका.

अहो सत्त्वादिक गुण प्रकृति संबंधी हैं वै सर्वकाल रहते हैं
औ ऐसा विपरीत क्यों करते हैं तहां कहते हैं कि यद्यपि सत्त्वा-
दिक गुण प्रकृतिके हैं औ देहमें सदा वर्तमान हैं तौभी प्राचीन
कर्मवशाते औ देहके तृप्तिकारक आहारकी विषमताते सत्त्वादि-
क गुण एकएकको जीतिके प्रबल होते हैं जैसेकि रजोगुणको औ
तमोगुणको जीतिके सत्त्वगुणप्रबलहोताहै रजोगुण सत्त्वगुणोंको

जीतिके तमोगुण प्रबल होता है औ तमोगुण सत्त्वगुणोंको जी
ति रजोगुण प्रबल होता है ॥ १० ॥

मूलम्.

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ॥ ज्ञानं य
दा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥ लोभः
प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ॥ रजस्येता
नि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥ अप्रकाशो
ऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥ तमस्येतानि जा
यंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

अन्वयः

हे भरतर्षभ अस्मिन् देहे सर्वद्वारेषु यदा ज्ञानं प्रकाशः उ
पजायते तदा सत्त्वं विवृद्धं इति विद्यात् ॥ ११ ॥ उत
लोभः प्रवृत्तिः कर्मणां आरंभः अशमः स्पृहा रजसि प्रवृ
द्धे सति एतानि जायंते ॥ १२ ॥ हे कुरुनंदन अप्रकाशः
च अप्रवृत्तिः च प्रमादः च मोहः एतानि तमसि विवृ
द्धे सति जायंते एव ॥ १३ ॥

टीका.

अब सत्त्वादिगुणोंकी वृद्धिके चिन्ह कहते हैं हे भारत याने भ
रतवंशोत्पन्न हे अर्जुन इस देहमे सर्व कर्ण नेत्रादि रूप द्वारोंमे ज
ब वस्तु याथात्म्य याने यह वस्तु अमुक है ऐसे वस्तुस्वरूप
साक्षात्कार करनेवाला ज्ञान उपजै तब सत्त्वगुण बढ़ा है ऐसा
जानना ॥ ११ ॥ औ जब लोभ जो धनादिकके स्वर्च किये
विना औरहु धनकी इच्छा प्रवृत्ति याने प्रयोजनविना चंचलता
कर्मणां आरंभः याने फलसाधनरूप कर्मोंका आरंभ अशमः या

ने इंद्रियोंकी शांति नहोना स्पृहा याने विषयइच्छा यै यतने र-
जोगुण बढनेसे होते हैं ॥ १२ ॥ हे कुरुनंदन अप्रकाश याने ज्ञा-
नका उदय नहोना अर्थात् विवेककी हानि अप्रवृत्ति याने अ-
नुद्यम अर्थात् कुछभी उद्यमका न दीखना प्रमाद याने नकरने
का काम करना मोह उलटाज्ञान यै यतने तमोगुण बढनेसे हो
ते हैं ॥ १३ ॥

मूलम्.

यदा सत्त्वे प्रवृद्धेतु प्रलयं याति देहभृत् ॥ तदा त-
मविदां लोकान्मलान् प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः

यदा सत्त्वे प्रवृद्धेतु देहभृत् प्रलयं याति तदा उत्तम-
विदां अमलान् लोकान् प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥

टीका.

जब सत्त्वगुणकी वृद्धिकालमे देहधारी मृत्युको प्राप्त होता है
तब आत्मस्वरूप जाननेवालोंके जो निर्मल लोक हैं याने अ-
ज्ञानरहित लोकोंको प्राप्त होता है अर्थात् आत्मज्ञानियोंके कुल
मे जन्म लैके आत्मस्वरूप साक्षात् करनेको पुण्यकर्म करता है
लोकवस्तुभुवनेजने इहां लोक शब्द जनवाची है ॥ १४ ॥

मूलम्.

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥ तथा प्र-
लीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

अन्वयः

रजसि तु प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते तथा तमसि
प्रलीनः मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रजोगुणकी वृद्धिसमये मृत्यु पावै तौ कर्म संगीयाने कर्मकर नेवालोंके कुलमे जन्मता है अर्थात् उहां जन्मिके फिरि स्वर्गप्राप्तिकारक कर्म करता है तैसाही तमोगुणवृद्धिकालमें मराहुआ मूढ योनि याने कुत्ता इत्यादिक योनियोंमे जन्मता है जहां कोईसा भी साधन नहीं वहै सकता है ॥ १५ ॥

सूलम्.

कर्मणःसुकृतस्याहुःसात्त्विकंनिर्मलंफलं ॥ रज
सस्तुफलंदुःखमज्ञानंतमसःफलं ॥ १६ ॥

अन्वयः

सुकृतस्य कर्मणः फलं सात्त्विकं निर्मलं आहुः तु रजसः
फलं दुःखं आहुः तमसः फलं अज्ञानं आहुः ॥ १६ ॥

टीका.

ऐसे आत्मज्ञानियोंके कुलमे जन्मिके जो किया सुकृतकर्म याने फलानुसंधानरहितमेरेआराधनरूप कर्म उसकाभीफल है सो पूर्वसात्त्विकसेभी अधिक सात्त्विक औ निर्मल याने दुःखले शरहित होता है ऐसे मुनिजन सात्त्विक कर्म जाननेवाले कहते हैं औ रजोगुणीकर्म याने काम्यकर्मका फल संसार है सो दुःख रूप है औ तमोगुणीकर्मका फल अज्ञान है सात्त्विकादिफलोंके लक्षण अठारहे अध्यायमे ॥ नियतंसंगरहित ॥ इत्यादि करिके कहेंगे ॥ १६ ॥

सूलम्.

सत्त्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥ प्रमा
दमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच ॥ १७ ॥

अन्वयः

सत्त्वात् ज्ञानं संजायते रजसः लोभः एव संजायते तम
सः प्रमादमोहौ भवतः च अज्ञानं एव भवति ॥ १७ ॥

टीका.

अब अतिसात्विक प्रकाशरूप निर्मल फल क्या है सो
कहते हैं ऐसे परंपरासे उत्पन्न भया जो अधिक सात्विकफल
उसते ज्ञान उत्पन्न होता है राजसफलसे लोभ और तामससे
प्रमाद मोह और अज्ञान ये होते हैं ॥ १७

मूलम्.

ऊर्ध्वगच्छंतिसत्त्वस्थामध्येतिष्ठंतिराजसाः ॥ ज
घन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छंतितामसाः ॥ १८ ॥

अन्वयः

सत्त्वस्थाः ऊर्ध्वं गच्छंति राजसाः मध्ये तिष्ठंति जघन्य
गुणवृत्तिस्थाः तामसाः अधः गच्छंति ॥ १८ ॥

टीका.

ऐसे कहे भये प्रकारसे सात्विक कर्म करनेवाले कर्मकरिके
ऊर्ध्व याने मोक्षको प्राप्त होते हैं रजोगुणी कर्मकरिके स्वर्ग
फिरि पुण्य क्षीण होनेसे संसार फिरि स्वर्ग ऐसे संसारमें
रहते हैं यह दुःखरूपही है और तमोगुणी नीचगुणकी वृत्तिमें
स्थित है इसवास्ते अधोगच्छंति याने नीच जातिमें जन्मते
हैं फिरि पशु फिरि कृमि कीट स्थावर गुल्म शिला काष्ठ कंकड़
इत्यादि योनियोंमें जन्मते हैं ॥ १८ ॥

मूलम्.

नान्यंगुणैर्भ्यः कर्तारं यदा द्रष्टुं पश्यति ॥ गुणे
भ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

यः द्रष्टा पुरुषः यदा गुणेभ्यः अन्यं कर्तारं न अनुप-
श्यति च आत्मानं गुणेभ्यः परं वेत्ति तदा सः सद्भावं
अधिगच्छति ॥ १९ ॥

टीका

सात्विकआहार औ निष्कामकर्मोंसे कर्मकरिके बढा है स
त्वगुण जिनका उनकी ऊर्ध्वगतिप्रकार कहते हैं ऐसा सात्विक
क आहार औ भगवदाराधनरूप निष्काम कर्मों करिके रजो
गुण तमोगुण जीतिके जब जो विवेकी गुणोंके सेवाय दूसरा
कर्म करनेवालेको नहीं देखता है याने कर्म करनेवाले सत्वा-
दिक गुणही हैं ऐसा देखता है औ आत्माको गुणोंसे पर देखता
है तब वह मेरे भावको याने मेरी समताको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

मूलम्.

गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥ जन्म
मृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

अन्वयः

अयं देही देहसमुद्भवान् एतान् सत्वादीन् त्रीन् गुणा-
न् अतीत्य जन्ममृत्युजरादुःखैः विमुक्तः सन् अमृतं
आत्मानं अश्नुते ॥ २० ॥

टीका.

कर्ता जो गुण तिनसे अन्य याने अकर्ता आत्माको देखता
भया भगवद्भावको प्राप्त होता है ऐसा कहा सो भगवद्भाव देखा-
ते हैं यह देहधारी पुरुष देहमे उत्पन्न जो ये सत्वादिक तीनिगुण
तिनको उलंघन करिके इनसे पर आत्माको देखता भया जन्म
मृत्यु जरा तनके दुःखों करिके छुटा भया अमृतजो आत्मस्वरूप

याने मेरे सद्गुरूप तिसको प्राप्त होता है यही मेरा भाव है ॥ २० ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ कैलिंगैस्त्रीन्गुणानेतां नतीतो
भवति प्रभो ॥ किमाचारः कथंचैतास्त्रीन्गुणा
नतिवर्तते ॥ २१ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे प्रभो कैः लिंगैः एतान् त्रीन् गुणान् अ
तीतः भवति सः किमाचारः च एतान् त्रीन् गुणान् कथं
अतिवर्तते ॥ २१ ॥

टीका.

अर्जुन पूछते भये कि हे प्रभो कौनसे चिन्हों करिके इन तीनों
गुण उलंघन किया होता है अर्थात् जो इन तीनों गुणोंको
उलंघन कर लेता है इसके चिन्ह कौन कौनसे हैं औ उसका
आचरण कैसा है औ इनका उलंघन कैसे करे अर्थात् सो सर्व
आप कहो ॥ २१ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ प्रकाशंच प्रवृत्तिंच मो
हमेव च पाण्डव ॥ न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि
कांक्षति ॥ २२ ॥ उदासीनवदासीनो योगुणैर्न
विचाल्यते ॥ गुणावर्तत इत्येव यो वतिष्ठति नेग
ते ॥ २३ ॥ समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टा
श्मकांचनः ॥ तुल्यप्रियाऽप्रियो धीरस्तुल्यनिदा
त्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥ मानापमानयोस्तुल्यस्तु

ल्योमित्रारिपक्षयोः ॥ सर्वारंभपरित्यागीगुणा
तीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच हे पांडव यः प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहं
एव एतानि संप्रवृत्तानि न द्वेष्टि च निवृत्तानि न कांक्षति
॥ २२ ॥ चयः उदासीनवत् आसीनः सन् गुणैः न विचा-
र्यते गुणाः एव वर्त्तन्ते इति यः तिष्ठति न इं गते ॥ २३ ॥ यः
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः तुल्यप्रिया-
ऽप्रियैः धीरः तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥ मानापमान-
योः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः तुल्यः सर्वारंभपरित्यागी सः
गुणातीतः उच्यते ॥ २५ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्ण भगवान् गुणातीतके लक्षण कहते हैं प्रकाश
शब्दसे जो सत्त्वगुणके सर्व कार्य अर्थात् आरोग्य सौमनस्य इ-
त्यादिक प्रवृत्तिसे रजोगुणकार्य मोहसे तमोगुणके सर्व कार्य ये
जो आपहीसे प्रवृत्त होय तौ उनमे द्वेषबुद्धि न करै औ निवृत्त
होय तौ उनकी इच्छा न करै ॥ २२ ॥ उदासीन याने शत्रुमित्र
भावसे रहित सरीखा रहाभया जो गुणोंकरिके याने गुणकार्यों
करिके याने सुखदुःखादिकरिके न चलायमान होय आप आप
के कार्योंमे गण आपहि वर्त्तमान होते हैं इनकरिके मेरा संबंध
धर्मी नहि ऐसा जानिके जो स्थित रहता है औ चलामान
नही होता है ॥ २३ ॥ औ समान मै औ दुःख जिसके याने
जो सुख औ दुःखको सम जानता है औ आपके स्वरूपमे भ्रानं-
दसे स्थित है औ कंकर तथा कंचनको सम जानता है याने कं-
करमे त्याज्यबुद्धि औ कंचनमे स्वीकारबुद्धि नही इसलिये तुल्य है

प्रिय औ अप्रिय जिसके इसीसे वह धीर है औ आपकी निंदा
तथा स्तुतिकोभी सम जानता है ॥ २४ ॥ औ मान तथा
अपमानभी समचित्त तैसेही शत्रुमित्रपक्षमेभी सम औ
तैसेही शरीरपोषणसेवाय सर्व आरंभोंका परित्याग करनेवा
ला पुरुष गुणातीत कहा जाता है ॥ २५ ॥

मूलम.

मांचयोऽव्यभिचारेणभक्तियोगेनसेवते ॥ सगु
णान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ २६ ॥ ब्र
ह्मणोहिप्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्यच ॥ शाश्व
तस्यचधर्मस्यसुखस्यैकांतिकस्यच ॥ २७ ॥

अन्वयः

यः मां एव अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते सः
एतान् गुणान् समतीत्य ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥
हियस्मात् अमृतस्य च अव्ययस्य ब्रह्मणः च शाश्वत
स्य धर्मस्य च एकांतिकस्य सुखस्य अहं प्रतिष्ठा तस्मा
त् मम सेवकः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २७ ॥

टीका.

जो मेरेहीको अनन्यतासे याने तैलकी धारप्रमाण अखंड
भक्तियोग करिके सेवता है सो इन गुणोंका अतिकमण करिके
ब्रह्मभूयाय याने ब्रह्मभूवयोग्य अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूपको
प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ क्योंकी अमृत औ अविनाशी जो ब्रह्म
याने आत्मस्वरूप उसकी औ शाश्वतधर्म जो भक्तियोग उस
की औ एकांतिक सुख जो आत्मस्वरूपप्राप्तिरूपसुख उसकीभी
मैप्रतिष्ठा हौं इसीवास्ते जो मेरेको अखंड भक्तियोग करिके
सेवै है सो आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

इतीश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां श्री
गशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेगुणत्रयविभागयो
गोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इतिश्रीमत्सुकलसीरामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायांश्री
मद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः

॥ १४ ॥

मूलम्.

श्रीभगवान् उवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं
प्राहुरव्ययं ॥ छंदासियस्यपर्णानियस्तंवेदस
वेदवित् ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच यं अश्वत्थं ऊर्ध्वमूलं अधःशाखं अ
व्ययं श्रुतयः प्राहुः तथा छंदांसि यस्य पर्णानि प्राहुः
यः तं वेद सः वेदाचित् अस्ति ॥ १ ॥

टीका

क्षेत्राध्यायमे क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप प्रकृतिपुरुषका स्वरूप कहा औ
परिशुद्धभी पुरुषको प्रकृतगुणसंगप्रवाहके निमित्तदेवादिकत्रा
कार करिके परिणामको प्राप्त भया जो प्रकृतिसंबंध सो अनादि
है ऐसाभी कहा फिर चौदहे अध्यायमे यह कहा कि पुरुषको
जो कार्य औ कारणअवस्थारूप प्रकृतिसंबंध है सोभगवानहि
का कियाभया है ऐसे कहिके फिरि विस्तारपूर्वक गुणसंगप्र
वाहप्रतिपादन करिके कहा कि गुणसंगनिवृत्तिपूर्वक जो आ
त्मस्वरूपकी प्राप्ति है उसकाभी मूलभगवत्प्रकृतिही है अब पंद्रहे
अध्यायमे क्षराक्षरयाने बद्धमुक्त ये विभूति कहिके क्षराक्षरसे
विलक्षण भगवानका पुरुषोत्तमत्व कहैगे तहां प्रथम असंगशस्त्र

करिके छिन्न भया है बंधन जिसका ऐसी अक्षरविभूति कहनेको
छेदनेयोग्य रूप जिसका ऐसा बंधनआकार करिके विस्मृत सो
प्रकृतिविकार संसार उसको वृक्षरूप कल्पना करिके भगवान्
कहते भये जिस संसाररूप अश्वत्थ याने संसाररूपी परके
वृक्षको उर्ध्वमूल अधःशाख याने ऊपरको जड़ औ नीचेको
जिसकी शाखें औ अव्यय याने नाशरहित ऐसा श्रुती कह
तीं हैं जैसे कि ॥ उर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाखएषोऽश्वत्थःसनातनः ॥
उर्ध्वमूलमर्वाक्शाखंवृक्षंयोवेदसंप्रति ॥ इत्यादिक औ वेदजि-
सवृक्षके पत्ते हैं ऐसा श्रुती कहतीं हैं जो इसको जानै सोईवेदा-
र्थका जाननेवाला है उपरको जो इसका मूल कहा तहां कोई
कहते हैं कि ऊपर पुरुषोत्तम परमात्मा मूल है औ ब्रह्मादिकशा-
खा हैं तहां एक शंका है कि उसको अव्ययभी कहा है तो जिस
का मूल परमात्मा औ अव्यय है तब कसका छेदन करनेका
क्या काम है औ जो इसका दृढ असंगशास्त्रसे छेदन किया तो
मूल सुद्धां काटना चाहिये नहिसो फिरिभी होयगा औ जब मू-
लसहित छेदन किया तो परमात्माकाभी छेदन होता है परंतु
परमात्माका छेदन वह नहीं सकता इसवास्ते इहां यह अर्थ
किया चाहिये कि उर्ध्व याने सत्यलोकपर चतुर्मुख ब्रह्मा
इस संसारवृक्षका आदि है वही मूल रूप है औ अधः याने नीचे
पृथ्वी निवासी सर्व मनुष्य पशु पक्षी मृग कीट पतंग स्थावर
इन आदिक सब शाखारूपहैं औ यह प्रवाहरूपसे नाशरहित
है जैसे पत्तोंसे वृक्ष बढता है ऐसैही वेदसे याने वेदोक्त कर्मसे
यह संसार बढता है इसवास्ते इसके पत्ते वेद कहे ॥ १ ॥

मूलम्.

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषय

प्रवालाः ॥ अधश्चमूलान्यनुसंततानिकर्मानुबं
धीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

अन्वयः

गुणप्रवृद्धाः विषयप्रवालाः तस्य शाखाः अधः च ऊर्ध्व
अपिप्रसृताः च तस्य वृक्षस्य अधः अपि मनुष्यः लोके
मर्कानुबंधीनि मूलानि अनुसंततानि ॥ २ ॥

टीका.

उसवृक्षकी औरभी विलणता कहते हैं गुणप्रवृद्धाःयाने
सत्वादिकगुणों करिके बढी भई औ शब्दादिक विषय जिनके
कोमल पत्ते हैं ऐसी उस संसारवृक्षकी शाखें नीचे औ उपरभी
फैलीं हैं नीचे तौ नीचकर्मसे मनुष्योंसे नीची पश्यादिकरूप औ
ऊपर उत्तमकर्मसे देवादिशरीर औ इस वृक्षकी मूलें याने ज-
हैं जो कर्मके बंधनसे भई हैं वै नीचेभी मनुष्यलोकमे फैलि
रही हैं याने नीच मध्यम औ श्रेष्ठ ऐसे जो कर्म हैं वै इस
मनुष्य लोकही मे व्हे सकते हैं वै कर्मही संसारवृक्षके मूल
हैं उनहीसे ऊर्ध्व औ अधोगती होतीं है इसवास्ते मनुष्य-
लोकमेभी मूल है ॥ २ ॥

मूलम्.

नरूपमस्येहतथोपलभ्यतेनांतोनचादिर्नचसंप्र
तिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनंसुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण
दृढेनछित्वा ॥ ३ ॥ ततःपदंतत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गताननिवर्त्ततिभूयः ॥ तमेवचाद्यंपुरुषं
प्रपद्येतःप्रवृत्तिःप्रसृतापुराणी ॥ ४ ॥

अन्वयः

अस्य संसारवृक्षस्य रूपं इह तथा न उपलभ्यते च अ

स्य अंतः न उपलभ्यते च आदिः न उपलभ्यते च सं
प्रतिष्ठा न उपलभ्यते सुविरूढमूलं एनं अश्वत्थं दृढेन
संगशस्त्रेण छित्वा ॥ ३ ॥ ततः च यतः सकाशात् पुराणी
प्रवृत्तिः प्रसृता तं एव आद्यं पुरुषं प्रपद्ये तत्पदं परिमार्गि
तव्यं यस्मिन् गतः भूयः न निवर्त्तति ॥ ४ ॥

टीका.

इस संसारवृक्षका मूल ब्रह्मा कहा औ शाखा मनुष्यादिक
कहे ऐसे ऊपर मूल नीचे शाखा कहीं औ फिरि कहा कि मनु-
ष्यलोकमे कराभया जो शुभाशुभकर्म है सोभी मूल है औ इस
ते जो जो लोक प्राप्त होते हैं वेई शाखा हैं जो ऐसा यह रूप
कहा सो इस लोकमे संसारी लोगौं करिके जाननेमे नहीं आ-
ताहै औ इसका अंतभी जाना नहीं जाता है ऐसेही आदि याने
उत्पत्ति औसंप्रतिष्ठा याने स्थितिभीजानीनहीं जाती है ऐसा
जो यह मूलका संसार वृक्ष इसको असंगरूप शस्त्रसे छेदन
करिके ॥ ३ ॥ फिरि जिससे यह प्राचीन प्रवृत्ति याने गुणमय भो
गरूपसंसारप्रवृत्तिविस्तृत है उसी आदिपुरुषकीशरणप्राप्तवहैके
उसपदको ढूंढना कि जिसको प्राप्त वहैके फिरि जन्मता नहीं॥४

मूलम्.

निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मनित्याविनि
वृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्य
मूढाःपदमव्ययंतत् ॥ ५ ॥

अन्वयः

ये निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः अध्यात्मनित्याःविनि
वृत्तकामाः सुखदुःखसंज्ञैः द्वंद्वैः विमुक्ताः ते अमूढाः न
त अव्ययं पदं गच्छन्ति ॥ ५ ॥

जिसके मान औ मोह नही औ जीते हैं संगके दोष जिनोने
औ अध्यात्मशास्त्रके नित्य अभ्यास करनेवाले इसीसे जिनकीं
कामनाभी निवृत्त भई है इसीसे सुखदुःखसंज्ञिक द्वंद्वोसेभी लु
टे भये हैं वै आत्मज्ञानी उस अविनाशी पदकोयाने स्वस्वरूप
को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

नतद्भासयतेसूर्योनशशांकोनपावकः ॥ यद्गत्वा
ननिवर्त्ततेतद्वामपरमंमम ॥ ६ ॥

अन्वयः

तत् आत्मज्योतिः सूर्यः न भासयते शशांकः न भास
यते पावकः न भासयते यत् गत्वा न निवर्त्तते तत्तु
मम परमं धाम ॥ ६ ॥

टीका.

उस आत्मज्योतिको सूर्य चंद्र औ अग्नि ये प्रकाशि सकते
नही कारण वह ज्ञानाकार सबका प्रकाशक है जिसको प्राप्त
व्हेके फिरि संसारी वही होते है वह श्रेष्ठधाम याने श्रेष्ठ ज्योति
मेरा याने मेरी श्रेष्ठ विभूति मेराअंश है सूर्यादिकोंकाभी प्र
काश है इसते उसका श्रेष्ठत्व है ॥ ६ ॥

मूलम्.

ममैवांशोजीवलोकेजीवभूःसनातनः ॥ मनःष
ष्ठानींद्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति ॥ ७ ॥

एवं उक्तस्वरूपः सनातनः मम एव अंशः सन् जीवलोके
जीवभूतः प्रकृतिस्थानि मनः पष्ठानि इंद्रियाणि कर्षति ॥ ७ ॥

टीका.

ऐसे वर्णन कियाहुवा स्वरूप सनातन मेरा अंश याने मेरा ही संबंधी मेरा अनुचर शुद्धचैतन्यहैतौभी जीवलोकमेजीव भूत याने अति संकुचितज्ञानवान् अर्थात् अल्पज्ञ वहैके प्रकृतिसंबंधी मनुष्यादि शरीरोंमे स्थित पांच ज्ञानदंद्रिय एक छठा मन इनको खींचता भया स्वकर्मानुसारशरीरोंमे फिरता है इहां कोई अंशका यह अर्थ करते हैं कि अंगका एक भाग याने एक टुकड़ा तौ जब जीवहीको अछेद्य अभेद्य कहते हैं तब परमात्माका टुकड़ा कैसे न्यारा वहैके जीवलोकमे आया इसवास्ते वैमोहसे कहते हैं अंश नाम स्वकीयपदार्थका हे यही अर्थ सिद्धांत दीखता है ॥ ७ ॥

मूलम्.

शरीरं यदवाप्नोति यच्च आप्युत्क्रामतीश्वरः ॥ गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानि वाशयात् ॥ ८ ॥

अन्वयः

यत् यदा शरीरं अवाप्नोति च यत् यदा शरीरात् उत्क्रामति तदा वायुः आशयात् गंधान् इव अयं इंद्रियादिना ईश्वरः एतानि मनः पण्ड्रेन्द्रियाणि गृहीत्वा संयाति ॥ ८ ॥

टीका.

जब दूसरे शरीरको प्राप्त होता है औं जब वर्तमानशरीर को त्यागिके जाता है तब जैसे वायु कस्तुरी इत्यादि गंधाशय भैसे गंधोको लैके अन्यत्र जाता है तैसे यह इंद्रियादि कौंका ईश्वर जीवात्मा मनसंयुक्त इंद्रियोंको याने पांच ज्ञानेन्द्रिय औ छटे मनको संग लैके जाता है ॥ ८ ॥

मूलम्.

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥ अधिष्ठा

यमनश्चायंविषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

अन्वयः

अयं जीवात्मा श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च सरनं च घ्राणं च मनः एतानि एव अधिष्ठाय विषयान् उपसेवते ॥ ९ ॥

टीका.

यह जीवात्मा श्रोत्र चक्षुःस्पर्शन रसना घ्राण औ मन याने कान नेत्र त्वचा वाणी नासिका औ मन इनको अपने विषय भोगके अनकूल करिके शब्दादिकविषयोंको भोगता है ॥ ९ ॥

मूलम्.

उत्क्रामंतंस्थितंवापिभुंजानंवागुणान्वितं ॥ विमूढानानुपश्यन्तिपश्यन्तिज्ञानचक्षुसः ॥ १० ॥

अन्वयः

एनं गुणान्वितं उत्क्रामंतं वा स्थितं वाभुंजानं अपि विमूढाः न अनुपश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः पश्यन्ति ॥ १० ॥

टीका.

गुणयुक्त इस आत्माको याने सत्त्वादिगुणमय प्रकृति परिणामइंद्रिययुक्त इसको देहसे निकसते वखत औ देहमे स्थित को औ विषयभोगते भयेकोभी अज्ञानी लोग नहीं देखते है या ने इसके स्वरूपको निश्चय नहीं करि सकते हैं औ जिनके ज्ञानरूप नेत्र हैं वै ज्ञानी देखते हैं याने ज्ञानद्वारानिश्चय करते हैं १०

मूलम्.

यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यन्त्यात्मन्यवस्थितं ॥ यतंतोऽप्यकृतात्मानोनैनंपश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥

अन्वयः

योगिनः यतंतः संतः आत्मनि अवस्थितं एनं पश्यन्ति च

अकृतात्मानः यतंतः अपि अचतेसः एनं न पश्यन्ति ॥ ११ ॥

टीका.

योगी यत्न करते करते योगबलसे आपके अंतःकरणमें स्थित इस आत्माको शरीरेंद्रियसे न्यारा देखते हैं याने जानते हैं औ जिनका चित्त शुद्ध नहीं है वै मंदबुद्धिवाले शास्त्रद्वारा यत्न करतेभी नहीं निश्चय करि सकते हैं ॥ ११ ॥

मूलम्.

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलं ॥ यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकं ॥ १२ ॥

अन्वयः

यत् आदित्यगतं तेजः अखिलं जगत् भासयते यत् चंद्रमसि च यत् अग्नौ तत् तेजः मामकं विद्धि ॥ १२ ॥

टीका.

अब यह कहते हैं कि सूर्यादिकौंमेंभी जो तेज है सोभी में हीही विभूति है जैसे कि जो सूर्यमें प्राप्त भया तेज सब जगत्को प्रकाशता है औ जो चंद्रमामें है अग्निमें हैं सो तेज मेराही है यानें उनोंने जब मेरा आराधन किया तब उनको मैंनेही दिया है ॥ १२ ॥

मूलम्.

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥ पुष्णामि च औषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

अन्वयः

अहं गां आविश्य भूतानि ओजसा धारयामि च रसात्मकः सोमः भूत्वा सर्वा औषधीः पुष्णामि ॥ १३ ॥

टीका.

१८४ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.
मैं पृथिवीमें प्रवेश करिके अपनी अचिंत्यसामर्थ्य करिके
भूतप्राणीमात्रको धारण करता हौं औ अमृतरसमय चंद्रमा
व्हेके सर्व औषधियोंका पोषण करता हौं ॥ १३ ॥

मूलम्.

अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनां देहमाश्रितः ॥ प्रा
णापानसमायुक्तः पचास्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

अन्वय.

अहं वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनां देहं आश्रितः सन् प्राणा
पान समायुक्तः चतुर्विधं अन्नं पचामि ॥ १४ ॥

टीका.

मैं वैश्वानर व्हेके याने जठाराग्नि व्हेके प्राणिमात्रकी देहोंमें
रहा भया प्राणवायु औ अपानवायु संयुक्त चतुर्विध याने भ-
क्ष्य क्षोज्य लेह्य पेय इन भेदों करिके चारिप्रकारका अन्न प-
चाता हौं ॥ १४ ॥

मूलम्.

सर्वस्य चाहं हृदिसान्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपो
हनं च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदाविदेव
चाहं ॥ १५ ॥

अन्वय.

अहं सर्वस्य हृदि सान्निविष्टः च मत्तः सर्वस्य स्मृतिः ज्ञा
नं च अपोहनं भवति च सर्वैः वेदैः वेद्यः अहं एव च वेदां
तकृत् च वेदवित् अहं एव ॥ १५ ॥

टीका.

मैं सर्व प्राणिमात्रके हृदयोंमें प्रविष्ट हौं औ मेरे हीमें सबकी
स्मृति ज्ञान औ वितर्क हैं औ सर्ववेदों करिके जाननेयोग्य महीं

हैं औ वेदांतका कर्ता तथा वेदका जाननेवाला भीमही हैं ॥ १५ ॥

मूलम्.

द्वाविमौ पुरुषौ लोकेश्वरश्चाक्षर एव च ॥ क्षरः सर्वा
णि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः

लोके क्षरः च अक्षरः एव इमौ द्वौ पुरुषो स्तः तत्र सर्वा
णि भूतानि क्षरः च कूटस्थः अक्षरः इति मुनिभिः उच्यते ॥ १६ ॥

टीका.

लोकमें क्षर औ अक्षर ये दो प्रकारके पुरुष याने जीव हैं तहां
सर्वभूत याने प्रकृतिसंसर्गसे बंधे भये जीव क्षर हैं औ कूटस्थ
जो मुक्त वै अक्षर हैं ॥ १६ ॥

मूलम्.

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ यो
लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

अन्वयः

उत्तमः पुरुषः तुक्षराऽक्षराभ्यां अन्यः परमात्मा इति उ
दाहृतः यः ईश्वरः अव्ययः लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति ॥ १७ ॥

टीका.

उत्तमपुरुष तौ इन क्षर औ अक्षरसे अर्थात् बद्धमुक्तसे
अन्य है जिसीको परमात्मा कहते हैं जो सर्व चराचरमें औ
मुक्तमें भी प्रवेश करिके सबका भरण पोषण करता है वह ई-
श्वर अविनाशी है ॥ १७ ॥

मूलम्.

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥ अतो
ऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

अन्वयः

यस्मात् अहं क्षरं अतीतः च अक्षरात् अपि उत्तमः अस्मि
अतः लोके च वेदे पुरुषोत्तमः इति प्रथितः अस्मि ॥ १८ ॥

टीका.

जिसवास्ते कि मैं क्षरसे न्यारा औ अक्षरसेभी उत्तम अर्था
१ बद्ध औ मुक्तइन दोनोंसे न्यारा औ उत्तम हौं इसीवास्ते लो
२ जो स्मृति औ वेद तिनमेभी पुरुषोत्तम करिके प्रसिद्ध हौं १८

मूलम्.

योमामेवमसंमूढोजानातिपुरुषोत्तमं ॥ ससर्व
विद्भजतिमांसर्वभावेनभारत ॥ १९ ॥

अन्वयः

हे भारत यः असंमूढः एवं पुरुषोत्तमं मां जानाति सः
सर्ववित् सर्वभावेन मां भजति ॥ १९

टीका.

हे भारत याने अर्जुन जो ज्ञानी पुरुष ऐसे क्षराक्षर पुरुषों
से उत्तम मेरेको जानता है सो सर्वज्ञ है इसीसे वह सर्व भा-
वना करिके मेरेहीको भजता है ॥ १९ ॥

मूलम्.

इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयाऽनघ ॥ एतद्बु
ध्वाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत ॥ २० ॥

अन्वयः

हेअनघ इति मया उक्तंइदं शास्त्रं गुह्यतमं अस्ति हेभारत
एतत् बुध्वा बुद्धिमान् च कृतकृत्यः स्यात् ॥ २० ॥

टीका

हे निष्पपअर्जुन ऐसे मैंने जोकहासो यह शास्त्रअतिगौप्यहै

भारत इसको जानिके बुद्धिमान् औ कृतकृत्य होता है ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो
नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषा टीकायां पंचदशोऽध्यायः
॥ १५ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयो
गव्यवस्थितिः ॥ दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्त
प आर्जवं ॥ १ ॥ अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः
शांतिरपैशुनं ॥ दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्री
चापलं ॥ २ ॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो ना
तिमानिता ॥ भवन्ति संपदं देवीमभिजातस्य
भारत ॥ ३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे भारत अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयो
गव्यवस्थितिः दानं दमः च यज्ञः च स्वाध्यायः तपः आ
र्जवं ॥ १ ॥ अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः शांतिः अपैशु
नं भूतेषु दया अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीः अचापलं ॥ २ ॥ ते
जः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहः नातिमानिता एते गुणाः दे
वीं संपदं अभिजातस्य भवन्ति ॥ ३ ॥

टीका.

तेरहे अध्यायको लैके पंद्रहेपर्यंत क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञका विवर्कं

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

२८८

औ गुणत्रयका विभाग औ बद्धमुक्त क्षराक्षरका स्वरूप औ पर-
मात्माका पुरुषोत्तमत्व तथा सामर्थ्य वर्णन किया अब सोरहवे
अध्यायमे जीवकीशास्त्रवश्यता औ देवासुरसंपत्तिविभाग कह
तेहैं अभयंइहासे लैके श्रीकृष्णभगवान कहते भये कि हेभरतवं
शोत्पन्न हेअर्जुन अभय औ अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञानयोगव्यव-
स्थिति याने प्रकृतिवियुक्त आत्मस्वरूपमे निष्ठा दान जो न्याय
करिके संग्रह किये द्रव्यको सुपात्रके अर्पण करना दम मनको
विषयोंसे निवृत्त करना यज्ञ फलानुसंधानरहित भगवदाराध-
नरूपपंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान स्वाध्याय वेदाभ्यासमंत्रजपादि
कतप क्लृप्तांद्रायणरूप भगवदाराधनआर्जवसरलता याने स-
वसेसीधेरहना ॥ १ ॥ अहिंसा परपीडाको नकरना सत्य यथार्थ
औहितवाक्य अक्रोध चित्तमे पर पीडाका निमित्त लाईके क्रोध
न करना त्याग उदारता शांति इंद्रियोंको विषयसे निवृत्त कर
ना अपैशुनं किसीके पिछाडी उसके दोष न कहना याने चुगली
न करना भूतेषु दया दीनजनौपर अनुकंपा अलोलुप्त्वं अलोभ-
तः वाषियोंमे अस्पृहा मार्दवं अक्रुरता-हीः लज्जा अचापलं
व्यर्थक्रियाका न करना ॥ २ ॥ तेजःदुर्जनौसे न हारना क्षमा
सामर्थ्यहोनेसेभी अपने अपकारीपर दया करना धृति धीरज
शौच बाह्याभ्यंतरशुद्धि अद्रोह द्रोह न करना अमानिता आप
को अतिपूज्य मानिके मानन करना ये छब्बीस गुण जिस
को दैवीसंपदा प्राप्त होती है उसके होते हैं ॥ ३ ॥

मूलम्.

दंभोदपौऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥

आज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरमि ॥ ४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ दंभः दर्पः अभिमानः क्रोधः च पारुष्यं च अज्ञानं
एवं एते गुणाः आसुरीं संपदं अभिजातस्य भवन्ति ॥ ४ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र दंभ याने मनमे कपट राखिके लोकौके देखानेको
धर्म आचरण करना दर्प याने धन विद्यादिकका गर्व अभिमान
याने अहंकार क्रोध याने गुस्सा पारुष्य याने कठिनभाषण औ
अज्ञान याने अविवेक ये यतने अवगुण जो आसुरी संपदा
को प्राप्त भया है उसके होते हैं ॥ ४ ॥

मूलम्.

दैवीसंपद्विमोक्षायनिबन्धायासुरीमता ॥ माशुचः
संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥

अन्वयः

हे पाण्डव दैवीसंपत् विमोक्षाय आसुरी संपत् निबन्धस्य
मता त्वं दैवीं संपदं अभिजातोऽसि अतः माशुचः ॥ ५ ॥

टीका.

हे पंडुपुत्र जो दैवी संपदा है सो मोक्षके वास्ते है औ आ-
सुरी संपदा बंधनके वास्ते है तुम दैवीसंपदाको प्राप्तभये हौ
इसवास्ते शोच न करौ ॥ ५ ॥

मूलम्.

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव असुर एव च ॥ दैवो वि-
स्तरशः प्रोक्त आसुरपार्थमेशृणु ॥ ६ ॥

अन्वयः

हे पार्थ अस्मिन् लोके भूतसर्गौ द्वौ स्तः दैवः च आ-
सुरः एव तत्र देवः प्रोक्तः आसुरं मे शृणु ॥ ६ ॥

हे अर्जुन लोकमे भूतोंकी उत्पत्ति दोप्रकारकी है देव
और असुर तिनमे देव तो विस्तारपूर्वक कहा अब आसुर
कहता हूँ सो सुनौ ॥ ६ ॥

मूलम्.

प्रवृत्तिंच निवृत्तिंच जनानविदुरासुराः ॥ न शौचं
नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः

आसुराः जनाः प्रवृत्तिं च निवृत्तिं अपि न विदुः च तेषु
शौचं न विद्यते च आचारः न विद्यते च सत्यं अपि न विद्यते ॥ ७

टीका.

आसुराः याने आसुरीसंपदाको प्राप्त भये मनुष्य वै प्रवृत्ति
जो संसारसाधन औ निवृत्ति जो मोक्षसाधन इन दोनोंको
नहीं जानते हैं औ उनमे शौचभी नहीं औ आचारभी नहीं
औ सत्यभी नहीं रहता है याने वै बाहेर औ अंतःकरणमे प-
वित्रभी नहीं रहते हैं औ सदाचार जो संध्यावंदनादिक जिस
ते पवित्र होते हैं वह पवित्र होनेका साधन आचारभी नहीं
करते हैं कहा है कि ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥
इति तथा वै सत्य भाषणभी नहीं करते हैं ॥ ७ ॥

मूलम्.

असत्यमप्रतिष्ठं जगदाहुरनीश्वरम् ॥ अपरस्परसंभू-
तं किमन्यत्कामहेतुकम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

ते जगत् असत्यं अप्रतिष्ठं अनीश्वरं आहुः अपरस्परसंभू-
तं अन्यत् किं न किमपि अतः इदं कामहेतुकं एव ॥ ८ ॥

टीका.

वै आसुरप्रकृतिवाले पुरुष जगत्को असत्य कहते हैं याने यह जगत् मिथ्या है ऐसे कहते हैं औ अप्रतिष्ठित कहते हैं तथा अनीश्वर कहते हैं औ कहते हैं कि इस जगत्मे स्त्रीपुरुषके संयोगविना क्याहै अर्थात् कुछभी नहीं सर्व मनुष्य पशु इत्यादिक स्त्रीपुरुषके संयोगहीसे होता है इसवास्ते उत्पत्तिकारण कामही है ऐसा कहते हैं इहां यह निश्चय होता है कि इन आसुरीप्रकृति वालोंमेभी मतभेद है क्यों कि जो असत्य कहि चुका सो अप्रतिष्ठित औ अनीश्वर कामहेतुसे परस्पर उत्पन्न है ऐसा क्यों कहेंगा जो मिथ्या है उसकी प्रतिष्ठा वगैरे कहां हैं इसवास्ते यह निश्चय होता है कि कोई आसुरीप्रकृतिवाले जगत्को मिथ्या कहते हैं औ कोई अप्रतिष्ठित कहते हैं औ कोई अनीश्वर कहते हैं तथा कोई कहते हैं कि कामचेष्टासे परस्पर स्त्रीपुरुषसे उत्पन्न है ॥ ८ ॥

मूलम्.

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोल्पबुद्धयः ॥ प्रभवत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतो हिताः ॥ ९ ॥

अन्वयः

ते नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः एतां दृष्टिं अवष्टभ्य सर्वेषां अहिताः जगतः क्षयाय उग्रकर्माणः प्रभवन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

वै आसुरप्रकृतिवाले नष्टात्मानः याने देहसे भिन्न आत्माको न देखते भये अथवा नष्टात्मानः याने अदृश्य भई है ईश्वरविषयिक बुद्धिजिनकि इसीसे उनकी बुद्धिभी अल्पपदार्थोंमे रहती है याने खानपानाहिकहीमे रहती है संध्यादिक कर्मोंमे नहीं

१९२ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका।
 सोकि कहा है ॥ संध्यावंदनवेलायांब्रह्माहमितिमन्यसे ॥ खंडमौ
 दकवेलायांदंडमुद्यम्यधावसी ॥ अर्थ संध्याकरनेके वखत कहते
 हैं कि हम ब्रह्म हैं हमको कर्म करनेसे क्या प्रयोजन है औ खां
 डके लडुनको सुनिके हाथमे दंडलैके भोजनको दौडते हैं ऐसे तु
 छ विषयादिकोंमेभी बुद्धिवाले इसी दृष्टिका आश्रय करिके स
 बके अहित याने किसीका ब्रह्म किसीकी स्त्री औ किसीके पुत्र
 को भ्रमायके हरनेवाले इससे वै जगतके नाश करनेको उग्रक
 र्म करनेवाले होते हैं याने कोई स्त्रीको भ्रमायके आप भोग-
 ते है औ उसके पतीसे विरोध कराते हैं औ कोई दूसरेका ब्र-
 ह्म अनेक पाषंडकरिके हरते हैं औ कोई किसीके पुत्रको भ्रमा
 यके उनका वियोग कराते हैं ऐसे कृष्णभगवानने जो कहेथे
 सो इसकालमे बहुत देखनेभी आते हैं ॥ ९ ॥

मूलम्.

काममाश्रित्यदुष्पूरंदंभमानमदान्विताः ॥ मो
 हाद्गृहीत्वाऽऽसद्गृहान्प्रवर्ततेऽशुचित्रताः ॥ १० ॥

अन्वयः

तै दुष्पूरं कामं आश्रित्य दंभमानमदान्विताः संतः मोहा
 त् असद्गृहान् गृहीत्वा अशुचित्रताः अशुचौ कर्मणि
 प्रवर्तते ॥ १० ॥

टीका.

वै आसुरीप्रकृतिवाले दुष्पूर याने दुःखकरिके पुरनेमे आवै
 अर्थात् परस्त्रियोंको अनेक प्रकारसे बडे दुःखसे जब अपने वश
 करें तब कुछ कामभोगकी प्राप्ति होय तौभी अनेक स्त्रियोंसे
 भी तृप्ति न होय ऐसे कामको आश्रय करिके दंभ करें याने अ-
 नेक कपट करें जैसे कि मै तेरे पतीको तेरे वशकरि देउंगा तेरे

पुत्र नहीं होता है सोभी मैं देउंगा तूं मेरेपास आइके मेरी आज्ञा प्रमाण रहाकर ऐसे अनेक कपट करें औ मान तथा गर्व याने हम सिद्ध हैं ऐसे व्हेके मोहसे असद्राहोंको गृहण करिके अपवित्र व्रत भये हुये अपवित्रकर्मोंमे प्रवर्त्त होते हैं याने मोहको प्राप्त व्हेके असद्राह याने मारण मोहन वशीकरणादिक सिद्ध करनेके वास्ते भूत प्रेत मसानोंकी सिद्धि चाहते भये उनहीके व्रतादिककरतेभये हुये अपवित्र कर्म याने भूतादिक साधनेको मय पशु हिंसा इत्यादि कर्म करते हैं ॥ १० ॥

मूलम्

चिंतामपरिमेयांच प्रलयांतामुपाश्रिताः ॥ कामो
पभोगपरमा एव तादिति निश्चिताः ॥ ११ ॥ आ
शापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥ ईहंते
कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

अन्वयः

अपरिमेयां च प्रलयांतां चिंतां उपाश्रिताः संतः कामो
पभोगपरमाः एतावत् इति निश्चिताः ॥ ११ ॥ आशापा
शशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः कामभोगार्थं अन्या-
येन अर्थसंचयान् ईहंते ॥ १२ ॥

टीका

अपरिमेया याने बेपरमान औ मरनपर्यंत जो रहै ऐसी
चिंताको धारणकरि रहेहुये कामभोगही श्रेष्ठ है ऐसा मानि रहे
भये औ कामभोगके सेवाय दुसरा सब तुच्छ है ऐसा मानि रहे
भये ॥ ११ ॥ आशारूपी सेकड़ों पाशोंमे बंधे इधरउधरखिचि रहे
भये काम औ क्रोधको धर किये भये ऐसे पुरुष कामभोगके-
वास्ते अन्यायसे याने धर्मविरुद्ध धनसंग्रहके वास्ते उपाय करते
हैं ॥ १२ ॥

मूलम्.

इदमद्ययालब्धमिमंप्राप्स्येमनोरथं ॥ इदम
स्तीदमपिमेभविष्यतिपुनर्द्धनं ॥ १३ ॥ असौ
मयाहतःशत्रुर्हनिष्येचापरानपि ॥ ईश्वरोऽहम
हंभोगीसिद्धोहंबलवान्सुखी ॥ १४ ॥ आढ्यो
भिजनवानस्मिकोऽन्योऽस्तिसदृशोमया ॥ य
क्ष्येदास्यामिमोदिष्येइत्यज्ञानविमोहिताः ॥
॥ १५ ॥ अनेकचित्तविभ्रांतामोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताःकामभोगेषुपतंतिनरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

अन्वयः

मया अद्य इदं लब्धं अहं इमं मनोरथं प्राप्स्ये इदं धनं
मे अस्ति पुनः अपि मे इदं धनं भविष्यति ॥ १३ ॥ मया
असौ शत्रुः हतः च अहं अपरान् अपि शत्रुन् हनिष्ये अ
हं ईश्वरः अहं भोगी अहं सिद्धः अहं बलवान् अहं सुखी
॥ १४ ॥ अहं आढ्यः अहं अभिजनवान् अस्मि मया
सादृशः अन्यः कः अस्ति अहं यक्ष्ये अहं दास्यामि अहं
मोदिष्ये इति अज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥ अनेकचित्त
विभ्रांताः मोहजालसमावृताः कामभोगेषु प्रसक्ताः सं
तः अशुचौ नरके पतन्ति ॥ १६ ॥

टीका.

मैंने आज यह पाया औ मैं इसमनोरथको फिरि पावौंगा
यह धन मेरे है औ फिरिभी यह धन मेरे होयगा ॥ १३ ॥ मैंने
यह शत्रु मारा औ मैं औरभी शत्रुनको मारौंगा मैं इश्वर हौं मैं
भोगी हौं मैं सिद्ध हौं मैं बलवान् हौं मैं सुखी हौं ॥ १४ ॥ मैं य-

नाह्य हौं मै उत्तमकुलमे जन्मा हौं मेरे मानस दुसरा है कौन
मै यज्ञ करौंगा मै दान देउंगा मै आनंदको प्राप्त होउंगा ऐसे ई-
श्वर वश्यताको न जानते भये अज्ञानसे मोहित॥ १५॥ अनेक क
सौंमें चित्त लगा है जिनका इसवास्ते यहकारौं कि यह करौं ऐ
से भ्रमको प्राप्त भये हुये मोहरूप जालमे फसेभये काम भोगमे
आसक्त ऐसे पुरुष अपवित्र नरक याने घोरनरकमे पडते है॥ १६

सूत्रम्.

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दंभेनाऽविधिपूर्वकं ॥ १७ ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥ मामा-
त्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥ तानहं
द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ॥ क्षिपाम्यज-
स्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥ आसुरीं
योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ॥ मामप्राप्यै-
व कौन्तेय ततो यां त्यधमां गतिं ॥ २० ॥

अन्वयः

ये आत्मसंभाविताः स्तब्धाः धनमानमदान्विताः ते दं-
भेन अविधिपूर्वकं नामयज्ञैः यजन्ते ॥ १७ ॥ च अहंका-
रं बलं दर्पं कामं क्रोधं संश्रिताः संतः मां आत्मपर देहेषु
द्विषतः अभ्यसूयकाः संति ॥ १८ ॥ अहं तान् द्विषतः
क्रूरान् अशुभान् नराधमान् संसारेषु अज स्वं आसुरी-
षु योनिषु एव क्षिपामि ॥ १९ ॥ हे कौन्तेय ते मूढाः ज-
न्मनि जन्मनि आसुरीं योनिं आपन्नाः संतः मां अ-
प्राप्य ततः अधमां एव गतिं यांति ॥ २० ॥

जो आत्मसंभाविन हैं याने आपकी प्रसंसा आपही करी लेते हैं अनघ इसीसे धन मान औ मद करिके युक्त भये हुये दंभकरिके अविधिपूर्वक नाममात्र यज्ञोंको करते हैं या ने देखने भरको करते हैं ॥ १७ ॥ औ अहंकार बल दर्प काम क्रोध इनके आश्रित भये हुये मेरेको आपको औ दुसरेकेभी देहोंमे रहेभयोका द्वेष करतेभये मेरी निंदा करते हैं ॥ १८ ॥ मै उन द्वेषकरनेवाले क्रूर अशुभ नराधमोंको संसारमे वारंवार आसुरीयोनियोंमेही डालता हों ॥ १९ ॥ हे अर्जुन वै मूर्ख जन्मो जन्म आसुरीयोनिमे प्राप्त भयेहुये मेरेको न प्राप्त वहै के फिरि अधमही गतीको जाते हैं ॥ २० ॥

मूलम्.

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥ कामः
क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥
एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमो द्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥ आचर
त्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिं ॥ २२ ॥

अन्वयः

कामः क्रोधः तथा लोभः इति इदं त्रिविधं नरकस्य
द्वारं आत्मनः नाशनं तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत् ॥
॥ २१ ॥ हे कौंतेय एतैः त्रिभिः तमो द्वारैः विमुक्तः स
न् आत्मनः श्रेयः आचरति ततः परां गतिं याति ॥ २२ ॥

टीका.

अब आसुरस्वभावमे जो मूलकारण आत्मनाशक उन्हें दे खाते हैं काम क्रोध औ लोभ ऐसे यह तीन प्रकारका नरकका द्वार याने नरकका मार्ग आत्मनाशन याने आत्माको अधोगति

कोलै जानेवाला है इसवास्ते इन तीनोंको त्यागना अर्थात्स्व
वश करना नहींतौ जो सर्वथा त्याग कहेंगे तौअर्जुन युद्ध कि-
सवास्ते करेंगे इसवास्ते इहांभी सात्त्विकरीतिप्रमाण त्याग क-
हते हैं ॥ २२ ॥ हेकुंतीपुत्र यै तीनों नरकप्राप्तिकारणोंसे छुटा
भया पुरुष याने इनको श्रेष्ठ न मानता भया जो रहता है सो
आपके कल्याणके वास्ते शुभ आचरण करता है उस आचार-
से परम गती जो मैं सो मेरेको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मूलम.

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकामकारतः ॥ नस
सिद्धिमवाप्नोतिनसुखंनपरांगतिं ॥ २३ ॥ त
स्माच्छास्त्रंप्रमाणंतेकार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

अन्वयः

यःशास्त्रविधिं उत्सृज्य कामकारतः वर्तते सः सिद्धिं न
अवाप्नोति न सुखं अवाप्नोति न परांगतिं अवाप्नोति ॥
॥ २३ ॥ तस्मात् ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ शास्त्रं प्रमाणं
स्यात् इह शास्त्रविधानोक्तंज्ञात्वाकर्मकर्तुं अर्हसि ॥ २४ ॥

टीका.

प्रथम कहे त्यागका खुलासा करते हैं जो शास्त्रविधिको
चल छोड़िके आपकी इच्छासे वर्तता है सो सिद्धिको औ
सुखको औ परमगतिकोभी नहीं पावता है ॥ २३ ॥ इसीवास्ते
तुम्हारी कार्याकार्य व्यवस्थामे शास्त्रही प्रमाण होना चाहिये
याने क्या करना क्या न करना यह सब शास्त्रविधानसे जा-
निके तुम कर्म करनेको योग्य हौं अर्थात् शास्त्रविधिप्रमाण
तुमको कर्म करनाही चाहिये ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्वि
भागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां षोडशो ० १६

मूलम्.

॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ येशास्त्रविधिं मृतसृज्य
यजंतेश्रद्धयान्विताः ॥ तेषां निष्ठा तु का कृष्ण स
त्वमाहोरजस्तमः ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे कृष्ण ये शास्त्रविधिं उत्सृज्य श्रद्धया
न्विताः संतः यजंत तेषां तु का निष्ठा सत्त्वं अहोस्वित्
रजः किं वा तमः ॥ १ ॥

टीका.

दैवासुरविभागअध्यामे यह कहा कि ईश्वरतत्त्वज्ञान औ
उसकी प्राप्तिका उपाय इनका कारण मूल वेदही है औ अंत
मे कहा कि जो शास्त्रविधिको छोड़िके आपने मनकी इच्छा
से कर्म करते हैं उनको सिद्धी औ सुख तथा परमगतीभी न-
ही मिलती है सो सुनिके अशास्त्रीय कर्म करनेवालोंकी निष्ठा
जाननेकेवास्ते अर्जुन बोलते भये हे श्रीकृष्ण जे कोई शास्त्र
विधि याने वेदमे नहीं कहा है औ लोकरीति अंधपरंपरासरी-
खा प्रवर्ते जो कोईसेभी देवादिकका आराधन उसमे श्रद्धा
रखिके यजन करते हैं उनकी क्या निष्ठा है क्या स्थिति हैं

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

२९९

याने कौन आश्रय है क्या उनका आश्रय सत्त्वगुण है अथवा
रजोगुण है किंवा तमोगुण है सो कहौ ॥ १ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ त्रिविधाभवतिश्रद्धा
देहिनांसास्वभावजा ॥ सात्त्विकीराजसीचैव
तामसीचेतितांशृणु ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच सात्त्विकी च राजसी च तामसी इ-
ति त्रिविधा एव श्रद्धा भवति सा देहिनां स्वभावजा
अस्ति तां शृणु ॥ २ ॥

टीका.

अर्जुनकी प्रश्न सुनिके भगवान् उत्तर देते हैं कि सात्त्विकीरा-
जसी औ तामसी ऐसे तीनही प्रकारकी श्रद्धा है सो श्रद्धा देह-
धारि योंकी स्वभावसे उत्पन्न है जैसे सात्त्विकोंकी सात्त्विकी रा-
जसोंकी राजसी औ तामसोंकी तामसी उसको तुम क्रम-
से सुनौ ॥ २ ॥

मूलम्.

सत्त्वाऽनुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥ श्रद्धा
मयोऽयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ॥ ३ ॥

अन्वयः

हेभारत सर्वस्य श्रद्धा सत्त्वानुरूपा भवति अयं पुरुषः
श्रद्धामयः यः यच्छ्रद्धः सः सएव भवति ॥ ३ ॥

टीका.

हेभारत सर्वमनुष्यमात्रकी श्रद्धा सत्त्व याने अंतःकरणके अ-
नुरूपही होती है जिसका जैसा प्राचीनवासनासे अंतःकरण है

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

उसकी श्रद्धाभी वैसिही होती है यह पुरुष श्रद्धामय है जो जिस श्रद्धायुक्त होय सो वही है याने सात्विकी श्रद्धायुक्त सात्विक राजसीयुक्त राजस तामसीयुक्त तामस होता है ॥ ३ ॥

मूलम्.

यजंते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ॥ प्रे-
तान् भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

अन्वयः

सात्विकाः देवान् यजंते राजसाः यक्षरक्षांसि यजंते च-
अन्ये तामसाः जनाः प्रेतान् भूतगणान् यजंते ॥ ४ ॥

टीका.

सात्विकी श्रद्धावाले सात्विक देवतोंको पूजते हैं राजसी-
पुरुष यक्षराक्षसोंको पूजते हैं औ इनसे विलक्षण औरता
मसीलोग भूतप्रेतोंको पूजते हैं ॥ ४ ॥

मूलम्.

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥ दंभाहं-
कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥ कर्षयं-
तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥ मां चैवांतः शरी-
रस्थं तान् विद्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

अन्वयः

दंभाहंकार संयुक्तः कामरागबलान्विताः ये जनाः अशा-
स्त्र विहितं घोरं तपः तप्यंते ॥ ५ ॥ ते अचेतसः शरी-
रस्थं भूतग्रामं च अंतः शरीरस्थं मां एव कर्षयन्ति ता-
न् आसुरनिश्चयान् विद्धि ॥ ६ ॥

टीका.

दंभ औ अहंकारकारिकेयुक्त कामना औ विषयानुरागके ब-

लकरिके संयुक्त ऐसे जे मनुष्य अशास्त्रविहित याने शास्त्रमे जो व्रतादिक नही कहा है ऐसा उपवासादिक घोरतप याने शरीर-पीडाकारक तप करते हैं ॥ ५ ॥ वै अचेतपुरुषशरीरमे स्थित जो-आकाशादि भूतसमूह औ मैभी उनका अंतर्यामी व्हैके उनके शरीरहीमे रहता हौ सो वे भूतसमूह औ मेरेकोभी सुखा-वते याने दुख देते हैं उनमनुष्योंको ऐसा जानना कि येई आसुरि संपत वाले हैं ॥ ६ ॥

मूलम्.

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥ यज्ञ-
स्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

अन्वयः

आहारः अपि सर्वस्य त्रिविधः प्रियः भवति तु यज्ञः
तपः तथा दानं अपि तेषां इमं भेदं शृणु ॥ ७ ॥

टीका.

आहारभी सर्वप्राणिमात्रके तीनप्रकारका प्रिय होता है
औ यज्ञ तप तथा दानभी तीनतीन प्रकारके हैं इनका भेद-
कहौंगा सो सुनौ ॥ ७ ॥

मूलम्.

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥ रस्याः
स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

अन्वयः

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः रस्याः स्निग्धाः
स्थिराः हृद्याः एवं भूताः आहाराः सात्विकप्रियाः संति ॥ ८ ॥

टीका.

जो आहार आयुष्य औ सत्व याने अंतःकरण अर्थात् अं-

३०२ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

तःकरणकार्य ज्ञान औ बल आरोग्यसुख औ प्रीति इनके बढ़ा-
नेवाले औ मधुरादि स्वादुरस्ययुक्त स्निग्ध स्थिर याने स्थिर-
तासे गुणकारक हृद्य याने अभीष्ट ऐसे आहार सात्विक ज.
नोंको प्रिय हैं ॥ ८ ॥

मूलम्.

कटुम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥ आ-
हाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

अन्वयः

कटुम्ललवणाऽत्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः आहाराः रा-
जसस्य इष्टाः ते दुःखशोकामयप्रदाः भवन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

अतिकडुए अतिखट्टे अतिखारे अतिगरम अतितीक्ष्ण अ-
ति रुक्ष औ दाहकारक ऐसे आहार राजसीलोगोंको प्रिय हैं
औ वै आहार दुःख शोक औ रोगके देनेवाले हैं जैसे कि
दुःख तो तात्कालही कडुये इत्यादिकोंसे प्रसिद्ध है औ शोक
पीछेसे शोच करना अहो हमने आज अमुक पदार्थ बहुत
खायलिया जिससे आज हमारे शरीरमे चैन नहीं है औ रा-
ग जैसे कटुकसे वायु अम्लसे पित्त इत्यादिक ॥ ९ ॥

मूलम्.

यातयामंगतरसंपूतिपर्युषितंचयत् ॥ उच्छिष्टं
मपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियं ॥ १० ॥

अन्वयः

यत् यातयामं गतरसं पूति च पर्युषितं च उच्छिष्टं च
अमेध्यं अपि भोजनं तामसप्रियं भवति ॥ १० ॥

टीका.

जो पदार्थ भात इत्यादिक प्रहरका कियाभया याने दिसको करिके एकप्रहर भया हो औ वह ठंढा होगया होय औ जिसका रस गया हो जैसे पीना इत्यादिक औ पूति यानेदुर्गंधयुक्त पर्युषित याने बासी औ गुरूमाता पिता बडाभ्राता पीता इत्यादिकोंके सेवाय दुसरों जूठा ऐसा अमेध्य याने मेधा जो बुद्धि तिस बुद्धिका नाशक भोजनतामसीजनौको प्यारा है इसते फिरिभी तमोगुण बढता है इसवास्ते ऐसा भोजन श्रेष्ठ सात्विकजनौको नकरना चाहिये सात्विकीही आहार करना जिसते सत्वगुण बढता है ॥ १० ॥

मूलम्.

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयइज्यते ॥ य
ष्ठव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्विकः ॥ ११ ॥

अन्वयः

यष्ठव्यं एव इति मनः समाधाय अफलाकांक्षिभिः वि
धिदृष्टः यः यज्ञः इज्यते सः सात्विकः ॥ ११ ॥

टीका.

यज्ञ करना अपनेको उचित है याने हमारा स्वधर्म है ऐ
से मनको लगायके औ फलकांक्षारहित व्हेके शास्त्रविधिपूर्वक
मंत्रद्रव्यक्रियादियुक्त जो यज्ञ करनेमे आता सोसात्विक है ११

मूलम्.

अभिसंधायतुफलंदंभार्थमपिचैवयत् ॥ इज्यते
भरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्विराजसं ॥ १२ ॥

अन्वयः

हेभरत श्रेष्ठ यत् फलं अभिसंधाय तुदंभार्थं अपि च एव
इज्यते तं यज्ञं राजसं विद्धि ॥ १२ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो फलकी इच्छाकरिके अथवादंभकेवास्तेही यज्ञ करते हैं उसको राजस यज्ञ जानौ ॥ १२

सूलम्.

विधिहीनमसृष्टान्नमंत्रहीनमदक्षिणं ॥ श्रद्धावि
रहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

अन्वयः

विधिहीनं असृष्टान्नं मंत्रहीनं अदक्षिणं श्रद्धाविरहितं
एवं भूतं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

टीका.

जो यज्ञविधि हीन औ असृष्टान्न याने जो अन्नादिक चा
हिये तिनकरिके हीन मंत्रहीन दक्षिणारहित श्रद्धारहित
ऐसे यज्ञको तामस कहते हैं ॥ १३ ॥

सूलम्.

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवं ॥ ब्रह्मचर्यम
हिंसाचशारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचं आर्जवं ब्रह्मचर्यं च अहिं
सा इदं तपः शारीरं उच्यते ॥ १४ ॥

टीका.

अब तपकोभी सात्विकादि भेदकरिके तीनिप्रकारका कहते
हैं जैसेकि देव ब्राह्मण गुरु विद्वान इनका पूजन शौच सरल-
स्वभाव ब्रह्मचर्य अहिंसा यह शरीरसंबंधी तप है ॥ १४ ॥

सूलम्.

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥

स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः

यत् वाक्यं अनुद्वेगकरं च सत्यप्रियहितं च स्वाध्यायाभ्यसनं एव इदं तपः वाङ्मयं उच्यते ॥ १५ ॥

टीका.

जो वाक्य किसीके मनको उद्वेग न करै औ सत्यप्रिय तथा हितकारक होय औ स्वाध्यायका अभ्यास याने वेदपाठ मंत्रजपादिक यह तप वाणिमय है ॥ १५ ॥

मूलम्.

मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः ॥ भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनं आत्मविनिग्रहः भावसंशुद्धिः इति एतत् तपः मानसं उच्यते ॥ १६ ॥

टीका.

मनकी प्रसन्नता सौम्यत्व याने सबसे अच्छे रहना मौन मिथ्याभाषण न करना आत्मविनिग्रह याने मनको विषयों से रोकना भावसंशुद्धि याने स्वभावकी शुद्धता यह तप मानस याने मनसंबंधी है ॥ १६ ॥

मूलम्.

श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तत्रिविधंनरैः ॥ अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते ॥ १७ ॥

अन्वयः

यत् त्रिविधं तपः अफलाकांक्षिभिः युक्तैः नरैः परयाश्रद्धया तप्तं तत् सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

टीका.

जो कहा है तीनप्रकारका जैसे शरीर वाणी औ मनका-
तप वह तप फलानुसंधानरहित श्रेष्ठमनुष्योंने परमश्रद्धाक-
रिकै किया तब उसको सात्विक कहते हैं ॥ १७ ॥

मूलम्.

सत्कारमानपूजार्थतपोदंभेनचैवयत् ॥ क्रियतेत
दिहप्रोक्तंराजसंचलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

अन्वयः

यत् तपः सत्कारमानपूजार्थं च दंभेन एव क्रियते तत्
इह राजसं चलं अध्रुवं प्रोक्तं ॥ १८ ॥

टीका.

जो तप सत्कार मान औ पुजावनेकेवास्ते अथवा लोक
देखावनेकेवास्ते करते हैं वह तप इसशास्त्रमे राजस चला-
यमान औ नाशमान कहा है ॥ १८ ॥

मूलम्.

मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडयाक्रियतेतपः ॥ परस्यो
त्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

अन्वयः

यत् तपः मूढग्राहेण आत्मनः पीडया वा परस्य उ-
त्सादनार्थं क्रियते तत् तामसं उदाहृतं ॥ १९ ॥

टीका.

जो तप दुराग्रहकरिके शरीरपीडाकारक अथवा दूसरेके
मारनेकेवास्ते करते हैं उसको तामस कहते हैं ॥ १९ ॥

मूलम्.

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका. ३०७
देशकालेचपात्रेचतदानंसात्त्विकंस्मृतम् ॥ २० ॥

अन्वयः

यत् दानं दातव्यं इति बुद्ध्या देशे च काले अनुपकारि
णे च पात्रे रक्षकाय दीयते तत् दानं सात्त्विकं स्मृतं ॥ २० ॥

टीका.

अब दानकोभी तीनप्रकारका कहते हैं जो दान दातव्यबु
द्धि करिके याने दान देना सौभाविकधर्म है कुछ फलका प्रयो
जन नहीं ऐसा निश्चय करिके देशकुरुक्षेत्रादिक काल ग्रहणा
दिक इनमे जिसते फिर आपना कुछ प्रत्युपकार न होय औ
वह पातायाने पालनहार अर्थात् तप स्वाध्याय इत्यादिक क
रिके रक्षक होय उसको देह वह दान सात्त्विक कहा है ॥ २० ॥

मूलम्.

यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः ॥ दीयते
चपरिक्षिप्तंराजसमुदाहृतं ॥ २१ ॥

अन्वयः

यत् तु दानं प्रत्युपकारार्थं वा पुनः फलं उद्दिश्य परि
क्षिप्तं दीयते तत् राजसं उदाहृतं ॥ २१ ॥

टीका.

जो दान प्रत्युपकारके वास्ते अथवा फलप्राप्तिके निमित्त
करिके परिक्षिप्त याने क्लेशयुक्तमनसे अथवा राहु इत्यादिनि
मित्त लोहादि क्षिप्तदान देते हैं उसको राजसदान कहते हैं ॥ २१ ॥

मूलम्.

अदेशकालेयदानमपात्रेभ्यश्चदीयते ॥ अस
त्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतं ॥ २२ ॥

अन्वयः

यत् दानं असत्कृतं अवज्ञातं अदेशकाले च अपात्रेभ्यः
दीयते तत् तामसं उदाहृतं ॥ २२ ॥

टीका.

जो दान असत्कारयुक्त औ अवज्ञायुक्त देशकालविना अपा-
त्रोंको देते हैं उसको तामसदान कहते हैं ॥ २२ ॥

मूलम्.

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

अन्वयः

ॐ तत्सत् इति ब्रह्मणः निर्देशः त्रिविधः स्मृतः तेन ब्रा-
ह्मणाः च वेदाः च यज्ञाः पुरा मया निर्मिताः ॥ २३ ॥

टीका.

ऐसे कहे प्रकारसे वैदिक यज्ञ तप दान इनका सत्त्वादिगुणों
करिके भेद कहा अब प्रणवके संयोगसे तत् सत् शब्दकी सूच-
ना करिके उसी वैदिकयागादिकके लक्षण कहते हैं ओं तत्सत्
यह तीन प्रकारका निर्देश याने शब्दब्रह्मसंबंधी कहा है ब्रह्म
याने वेद अर्थात् यह शब्द वैदिककर्ममें अन्वित यानेयुक्त कि
यागयाहै तांहां ओं इसशब्दको वैदिककर्मके अंगत्वकरिके प्र-
योगके आदिमें युक्त करते हैं इसतरहसे युक्तताभई तत् सत्
यै पूज्यत्व औ वाचकत्वमें युक्त होते हैं इसी तीन प्रकारके श-
ब्दकरिके युक्त ब्राह्मण याने वेदान्वयी त्रैवर्णिक औ वेद तथा
यज्ञ मैंने पूर्वकालमें निर्माण किये हैं ॥ २३ ॥

मूलम्.

तस्मादोमित्युदाहात्य यज्ञदानतपः क्रियाः ॥

प्रवर्तते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनां ॥ २४ ॥

अन्वयः

तस्मात् ओं इति उदाहृत्य वेदवादिनां विधानोक्ताः यज्ञ
दानतपः क्रियाः सततं प्रवर्तते ॥ २४ ॥

टीका.

उसीसे ओं यह शब्द उच्चारणकरिके वेदवादीजनौकी वेद
विधानसे कहीभई यज्ञ दान औ तप रूप क्रिया निरंतर प्रवर्त
होती है ॥ २४ ॥

मूलम्.

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ॥ दान
क्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

अन्वयः

तत् इति फलं अनभिसंधाय यज्ञदानतपः क्रियाः च वि
विधाः दानक्रियाः मोक्षकांक्षिभिः क्रियन्ते ॥ २५ ॥

टीका.

अब तत् शब्दकी युक्तता कहते हैं तत् याने तदर्थ ऐसे जा
निके अर्थात् परमेश्वरार्पण कर्मको करिके फलानुसंधानविना
यज्ञ दान तप ये क्रिया तथा अनेक प्रकारकी दान क्रिया मोक्षा
भिलाषी पुरुष करतेहैं ऐसे यह प्रसिद्ध भया कि ब्राह्मण क्षत्रि
य वैश्य ये त्रैवर्णिक हैं इनको मोक्षाभिलाषकरिके कर्मको ईश्व
रार्पणही करना योग्य है यह तत् पदने देखाया ॥ २५ ॥

मूलम्.

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥ प्रश
स्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थयुज्यते ॥ २६ ॥

३१० गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

यज्ञेतपसिदानेचस्थितिःसदितिचोच्यते ॥ क
र्मचैवतदर्थीयंसदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

अन्वयः

सद्भावे च साधुभावे सत् इति एतत् पदं प्रयुज्यते हेमार्थ
तथा प्रशस्ते कर्मणि सच्छब्दः युज्यते ॥ २६ ॥ यज्ञे चतप
सि च दाने स्थितिः सत् इति उच्यते च तदर्थीयं कर्मएव
सत् इति एव अभिधीयते ॥ २७ ॥

टीका.

अब सत्शब्दकी योजना कहते हैं सद्भाव याने विद्यमान
भावमे साधुभाव याने कल्याणार्थकभावमे सत् ऐसा यह पद
युक्तकरते हैं हेष्टयापुत्र तैसेही श्रेष्ठकर्ममे सत्शब्दको युक्त कर
ते हैं जैसे कि सज्जन सत्कर्म इत्यादि ॥ २६ ॥ यज्ञ औ तप
औ दान इनमेभी सत्शब्द युक्त करते हैं औ जो कर्म ईश्वरा
र्थ है उसकोभी सत् यहते हैं ॥ २७ ॥

मूलम्.

अश्रद्धयाहुतंदत्तंतपस्तप्तंकृतंचयत् ॥

असदित्युच्यतेपार्थनचतत्प्रेत्यनोइह ॥ २८ ॥

अन्वयः

हेपार्थ यत् अश्रद्धया हुतं च दत्तं च तप्तं तपःचकृतं तत् अ
सत् इति उच्यते तत् न प्रेत्य नो इह सुखायेत्यर्थः ॥ २८ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो अश्रद्धासे याने श्रद्धाविना होम करे दान दे
इ तप करे तथा कुछभी करै उसको असत् कहते हैं वह न इ
सलोकमे न परलोकमे कहीभी सुखदायक नहीं है ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो

गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयो
गोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपांडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी भाषाटीकायां सप्तदशो
ऽध्यायः ॥ १७ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ ॥ संन्यासस्य महाबाहो तत्त्व
मिच्छामि वेदितुम् ॥ त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्
शिक्षिषूदन ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे महाबाहो हे हृषीकेश हे केशिनिषूदन सं
न्यासस्य च त्यागस्य तत्त्वं पृथक् वेदितुं इच्छामि ॥ १ ॥

टीका.

इस अठारहें अध्यायमे सर्वगीताका सारांश कहेंगे तहां
अर्जुन पूछते भये कि हे महाबाहो हे इंद्रियोंके प्रेरक हे केशि-
दैत्यके मारनेवाले भगवन् संन्यास औ त्यागका तत्त्व न्यारा
न्यारा कहौ मैं जानना चाहता हौं ॥ १ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ काम्यानां कर्मणान्यासं
संन्यासं कवयो विदुः ॥ सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुः
स्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच काम्यानां कर्मणां न्यासं तं कवयः सं
न्यासं विदुः सर्वकर्मफलत्यागं विचक्षणाः त्यागं प्राहुः ॥ २ ॥

टीका.

अर्जुनके वाक्य सुनिके श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि काम्य कर्मोंका जो न्यास है याने त्याग उसको कवी जो विवेकी है वै संन्यास कहते हैं औ सर्वकर्मोंके फलत्यागको विद्वानलोग त्याग कहते हैं ॥ २ ॥

मूलम्

त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषिणः ॥ यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यमितिचापरे ॥ ३ ॥

अन्वयः

येके मनीषिणः दोषवत् कर्म त्याज्यं इति प्राहुः च अपरे मनीषिणः यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं इतिप्राहुः ॥ ३ ॥

टीका.

कोई एक ज्ञानी कपिल इत्यादिक कहते हैं कि हिंसादि-दोषयुक्त जो यज्ञादिक कर्म है उसको त्याग करना योग्य है और दूसरे ज्ञानी कहते हैं कि यज्ञ दान तप इनको न त्यागना चाहिये ॥ ३ ॥

मूलम्

निश्चयंशृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ॥ त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधःसंप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥ यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥ यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणां ॥ ५ ॥ एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यत्काफलानिच ॥ कर्तव्यानीतिमेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमं ॥ ६ ॥

अन्वयः

हेभारतसत्तम तत्र त्यागे मे निश्चयं शृणु हेपुरुषव्याघ्र
हियस्मात् त्यागः त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥ तत्
स्मात् यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं किंतु कार्यमेव किं
चयज्ञः दानं चतपः मनीषिणां एव पावनानि ॥ ५ ॥ तु
किंतु हेपार्थ एतानि अपि कर्माणि संगं त्यक्त्वा च
फलानि त्यक्त्वा कर्तव्यानि इति मे निश्चितं उत्तमं
मतं अस्ति ॥ ६ ॥

टीका.

हे अर्जुन तहां उस त्यागविषयमे मेरा निश्चयसुनौहेपुरु.
षौमेंश्रेष्ठ जिसवास्ते कि त्याग तीनप्रकारका है यानेफलत्याग
कर्तुत्वत्याग औ ममतत्वत्याग ऐसे तीनप्रकारका है ॥४॥ इसी
वास्ते यज्ञ दान औ तप इनकर्मोंका त्यागना न चाहिये
क्योंकिये करनेयोग्य ही हैं सबब यज्ञ दान औ तप ये ज्ञानी
जनौकेही पवित्र करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ औरभी कहता हौं किहे
पार्थ इन कर्मोंकाभी संग याने कर्मोंमे ममता औ फलोंकात्या
गकरिके कर्म करना यहमेरा निश्चय उत्तम मत है ॥ ६ ॥

मूलम्.

नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणोनोपपद्यते ॥ मोहा
त्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्तितः ॥ ७ ॥

अन्वयः

तु किंतु नियतस्य कर्मणः संन्यासः न उपपद्यते किंच
मोहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

टीका.

औरभी कहते हैं नियत जो करनाही चाहिये नित्य नै-
मित्तिक पंचमहायज्ञ देवाराधनरूप कर्म इसका संन्यास याने

३१४

त्याग नहीं हो सकता है क्योंकि भगवानने प्रथमही कहा है कि ॥ शरीरयात्रापिचतेनप्रसिध्येदकर्मणः ॥ अर्थ जो सर्व था कर्म न करेंगे तो शरीरकाभी रहना न होयगा जो कहौं गे कि यज्ञादिक हिंसात्मकहैं इनको कियेविना भोजनादिक करते रहै तौभी शरीर रहहीगा तहांभी कहा है कि ॥ यज्ञशिष्टाऽमृतभुजोयातिब्रह्मसनातनं ॥ यज्ञशिष्टाशिनःसंतोमुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः ॥ भुंजतेतेत्वघपापायेपंचत्यात्मकारणात् ॥ इत्यादिवाक्यौकरिके यह सिद्ध भया कि यज्ञादिकर्मका त्याग कोई कालमेभी न करना जो मोहसे त्याग करै तौ वह त्याग तामस है तामसी त्यागसे अधोगति होती है ॥ ७ ॥

मूलम्.

दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्यजेत् ॥ सकृत्त्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

अन्वयः

यः दुःखं इति यत् कायक्लेशभयात् एव कर्म त्यजेत् सः राजसं त्यागं कृत्वा त्यागफलं न एव लभेत् ॥ ८ ॥

टीका.

जो ऐसा विचारै कि कर्मकरनेमे अनेक पदार्थ चाहिये ऐसे दुःख होयगा इसवास्ते ज्ञानसाधनही करना यद्यपि मोक्ष साधन है तथापि वर्णाश्रमोचितकर्ममे शरीर दुःखहै ऐसी बुद्धिसे जो कर्मत्यागता है वह राजसीत्याग है उसराजसी-त्यागको करिके त्यागका फलजो मोक्ष सोनही पावताहै ॥ ८ ॥

मूलम्.

कार्यमित्येवयत्कर्मनियतां क्रियतेर्जुन ॥ संगंत्य त्काफलंचैव सत्यागः सात्विको मतः ॥ ९ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन संगं च फलं त्यक्त्वा यत् कर्म कार्य एव इति बु
द्ध्या क्रियते सः त्यागः सात्त्विकः मतः ॥ ९ ॥

टीका.

हे अर्जुन कर्ममे ममता त्यागिके औ फलकोभी त्यागीके जो
कर्म करनेयोग्यहीहै ऐसाजानिके करै सो त्यागसात्त्विकहै ॥ ९ ॥

मूलम्.

नद्वेष्ट्यकुशलंकर्मकुशलंनानुषज्जते ॥ त्यागीस
त्त्वसमाविष्टोमेधावीछिन्नसंशयः ॥ १० ॥

अन्वयः

यःसत्त्वसमाविष्टः मेधावी छिन्नसंशयः सः कर्मफलासंग
त्यागी सः अकुशलं कर्मन द्वेष्टिकुशले न अनुषज्जते ॥ १० ॥

टीका.

अब सात्त्विकत्याग करनेवालेके लक्षण कहते हैं जो सत्त्वगु
णकरिके व्याप्त है औ बुद्धिमान है औ जिसके संशय नष्ट भये
हैं तथा कर्मके फल औ ममताकाभी त्याग किया है जिसने ऐ-
सा पुरुष अकुशल कर्म याने संसारकी प्राप्ति करनेवाले विषया-
दिक इनसे द्वेषभी नहीं करता है औ कुशलजो मोक्षदायक यज्ञ-
तप दानादिक इनमे आसक्तभीनहीं होता है ॥ १० ॥

मूलम्.

नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुंकर्माण्यशेषतः ॥ यस्तु
कर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

अन्वयः

हियतःदेहभृता अशेषतः कर्माणि त्यक्तुं न शक्यं अतःतु
यःकर्म फलत्यागी सः त्यागी इति अभिधीयते ॥ ११ ॥

टीका.

३१६ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

जिसतेकिदेहधारीमात्र सर्व कर्म त्यागनेको नहीं सकते हैं इसी वास्ते जिसने कर्मफलका त्याग किया है वही त्यागी है ॥ ११ ॥

मूलम्

अनिष्टमिष्टमिश्रंचत्रिविधंकर्मणःफलं ॥ भवत्य
त्यागिनांप्रेत्यनचसंन्यासिनांकचित् ॥ १२ ॥

अन्वयः

अनिष्टं इष्टं च मिश्रं एवं कर्मणः फलं त्रिविधं भवति तत्
अत्यागिनां प्रेत्यभवति च संन्यासिनां कचित् न भवति ॥ १२ ॥

टीका.

अनिष्ट अधोगतिदायक इष्ट स्वर्गदायक मिश्रपुत्रादिदायक ऐसे कर्मका फल तीनप्रकारका है सो अत्यागी जो कर्मफला नुसंगी हैं उनको देहत्यागेपीछे होता है औ फलत्यागिनको न इसलोकमे न परलोकमे कहींभी बंधनकारक नहीं है ॥ १२ ॥

मूलम्.

पंचैतानिमहाबाहोकारणानिनिबोधमे ॥ सांख्ये
कृतांतप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्मणां ॥ १३ ॥

अन्वयः

हेमहाबाहोसर्वकर्मणां सिद्धये एतानि पंच करणानि सां
ख्येकृतांत प्रोक्तानि तानि मे निबोध ॥ १३ ॥

टीका.

हेमहाबाहो सर्वकर्मोंकी सिद्धिकेवास्ते ये पांच कारण सां
ख्यशास्त्रमे कहे हैं वे मेरेसे तुम जानौ याने मै कहता हों तुम
सुनौ ॥ १३ ॥

मूलम्.

अधिष्ठानंतथाकर्ताकरणंचपृथग्विधं ॥ विवि

धाश्चपृथक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमं ॥ १४ ॥ शरी
रवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥ न्याय्यं वा
विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

अन्वयः

तान्येव कारणान्याह अधिष्ठानं तथा कर्त्ता च पृथक्विधं
करणं च विविधा पृथक् चेष्टा च अत्र पंचमं दैवं एव
॥ १४ ॥ यत् नरः शरीरवाङ्मनोभिः न्यायं वा विपरीतं
वा कर्म प्रारभते तस्य कर्मणः एते पंचहेतवः संति ॥ १५ ॥

टीका.

अब वै पांचौ कारण कहते हैं अधिष्ठान याने शरीर क
र्त्ता जीव औ कोई एक कर्त्ता अंतःकर्णकोभी कहते हैं तहां
भी अंतः करणाभिमानी जीवही भया इस जीवका कर्त्तापना
सूत्रसिद्ध है सो ब्रह्मसूत्रभी लिखता हों ॥ ज्ञोतएवचकर्त्ताशा-
स्त्रार्थत्वात् ॥ इति औ न्यारा न्यारा करण याने मनसहितपंचक
र्म इंद्रियोंका व्यापार औ अनेकप्रकारकी न्यारीन्यारी चेष्टा या
ने पंचप्राणवायुकी चेष्टा औ इहा पांचवां दैव याने अंतर्यामी
परमात्मा सो इसीगीतशास्त्रहीमे कहा है सर्वस्य चाहं हृदिसंनि-
विष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥ औ कहेंगेभी ॥ ईश्वरः सर्वभूता-
नां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया
॥ इसकरिके जीवका कर्त्तापना परमात्माके स्वाधीन भया ब्रह्म-
सूत्रभी कहता है पराचुतच्छ्रुतेः इहां शंका करते हैं कि जो जीवा
त्माका कर्त्तृत्व परमात्माके आधीन है तौ जीवात्मा शुभाशुभ
कर्म क्यों भोगता है तहां सूत्रहीमे कहा है कि ॥ कृतप्रयत्नापे
क्षस्तु विहितनिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः इति ॥ अर्थ परमात्माने
दिये औ परमात्माही है आधार जिनका ऐसे इंद्रिय शरीरादिक

११८ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

औं उनमे परमात्माहीकी शक्ति है औं वह जीवात्माभी उसी परमात्माके आधार है औं परमात्माहीकी उसमे शक्ति है ऐसा जीवात्मा अपनी इच्छा करिके कर्म उत्पत्तिके वास्ते उन शरीर इंद्रियों करिके प्रयत्न करता है औं आप परमात्मा उस जीवात्मा के अंतःकरणमे प्रवेश भयाहुवा अनुमति देता है उसवाते जीवात्माका भी स्वबुद्धिसे कर्तृत्व सिद्ध भया ॥ १४ ॥ जो मनुष्य शरीरवाणी औं मन करिके न्याय अथवा अन्यायरूप कर्म करता है उसकर्म कैसे पांच कारण हैं ॥ १५ ॥

मूलम्.

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥ पश्य
त्यकृतबुद्धित्वात् न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

अन्वयः

एवं सति तत्र यः केवलं आत्मानं कर्तारं पश्यति सः दुर्मतिः अकृतबुद्धित्वात् न पश्यति ॥ १६ ॥

टीका.

जहां ऐसे पांच कारण कहे हैं तहां जो केवल आत्माको कर्ता करिके देखता है वह दुर्मती पुरुष अकृतबुद्धि याने यथार्थ वस्तुको उसकी बुद्धि निश्चय नहीं करि सकती है ऐसा वह मनुष्य नहीं देखता है याने उसको सूझता नहीं अर्थात् अज्ञानां धर्मे ॥ १६ ॥

मूलम्.

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥ ह
त्वापि स इमां लोकान्न हंति न निबद्धयते ॥ १७ ॥

अन्वयः

यस्य अहंकृतः भावः न यस्य बुद्धिः न लिप्यते सः इमां

न लोकान् अपि हत्वा न हन्ति न निवध्यते ॥ १७ ॥

टीका.

जिसके अहंकृतभाव याने मै कर्त्ता हों ऐसाभाव नहीं है औ जिसकी बुद्धि कर्ममें लिप्त न होय याने कर्ममें ममत्व बुद्धि न होय सो जो इन सबलोकोंको मारै तौभी न वह किसीको मारता है औ न वह युद्धरूपकर्मसे बंधनको प्राप्त होता है तात्पर्य कि तुम भीष्मादिकोंके मारनेहीमे पापसे डरते हों परंतु अहंता ममतारहित पुरुषको लोकहिंसाकाभी भय नहीं है ॥ १७ ॥

मूलम्.

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥ करणं कर्मकर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

अन्वयः

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता इति त्रिविधा कर्मचोदना अस्तिकरणं कर्मकर्त्ता इति त्रिविधः कर्म संग्रहः अस्ति ॥ ८ ॥

टीका.

यह सर्व अकर्तृत्व इत्यादिक अनुसंधान सत्त्वगुण वृद्धिसे होता है ऐसे सत्त्वगुणकी गृहणता जागवनेके वास्ते कर्मसे सत्त्वगुण रजोगुण औ तमोगुण इनकी करीभई विषमताको विस्तार कहते कहते प्रथम कर्मप्रवृत्ति कहते है ज्ञान याने करने योग्यकर्मकी विधि जानना ज्ञेय याने करनेयोग्य कर्मपरिज्ञाता उसकर्मका जाननेवाला ऐसे तीन प्रकारका कर्मकी प्रवृत्ति है तहां जाननेयोग्य जो कर्म सो तीनप्रकारका कहते हैं कारण याने यज्ञसाधन द्रव्यादिक कर्म योगादिक करता उसके अनुष्ठान करने वाला तीन प्रकार कर्मका संग्रह याने कर्मका आश्रय है ॥ १८ ॥

मूलम्.

ज्ञानं कर्म च कर्तेति त्रिधैव गुणभेदतः ॥ प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणुतान्यपि ॥ १९ ॥

अन्वयः

ज्ञानं कर्म च कर्ता इति गुणसंख्याने गुणभेदतः त्रिधा एव प्रोच्यते तानि अपि यथावत् शृणु ॥ १९ ॥

टीका.

ज्ञान कर्म औ कर्ता हे सांख्यशास्त्रमे तीन प्रकारके कहे है तिनकोभी तुम यथाशास्त्र सुनौ याने उसशास्त्रमे जैसे कहे हैं तैसे सुनौ ॥ १९ ॥

मूलम्.

सर्वेभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥ अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकं ॥ २० ॥

अन्वयः

येन ज्ञानेन विभक्तेषु सर्वभूतेषु एकं अविभक्तं अव्ययं भावं ईक्षते तत् ज्ञानं सात्त्विकं विद्धि ॥ २० ॥

टीका.

जिस ज्ञान करिके ब्राह्मण क्षत्रिय गृहस्थ ब्रह्मचारी इत्यादि विभाग युक्त भूत प्राणी मात्र कर्मके अधिकारियोंमे एक आत्मा नामक भाव है तहांभी विभागरहित याने ब्राह्मणादिक शरीर न्यारे न्यारे हैं तौभी आत्मा सर्वत्र एकरूप है औ अविनाशी है ऐसा जो भाव देखता है सो ज्ञान सात्त्विक है ॥ २० ॥

मूलम्.

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नाना भावान् पृथग्विधान् ॥ वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसं ॥ २१ ॥

अन्वयः

यत् तु पृथक्त्वेन ज्ञानं येन ज्ञानेन सर्वेषु भूतेषु पृथग्वि-
धानं नानाभावान् वेत्ति तत् ज्ञानं राजसं विद्धि ॥ २१ ॥

टीका.

यत् पृथक्त्वेन ज्ञानं जो जुदापनकरिके ज्ञान है जिस ज्ञा-
नकरिके ब्राह्मणादिक सर्वभूतोंमें न्यारेन्यारे नानाप्रकारके भा-
व जानता है याने यह आत्मा ब्राह्मण है क्षत्रिय है बड़ा है
छोटा है ऐसे शरीरसंबंधसे आत्माकोभी अनेकप्रकारका
जानता है औ कर्माधिकारसमयमेंभी अनेकप्रकारके न्यारे-
न्यारे फल देखता है सो ज्ञान राजस है ॥ २१ ॥

मूलम्.

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकं ॥ अत-
त्त्वार्थवदल्पंचतत्तामसमुदाहृतं ॥ २२ ॥

अन्वयः

यत् तु एकस्मिन् कार्ये कृत्स्नवत् सक्तं अहैतुकं अत-
त्त्वार्थवत् च अल्पं तत् तामसं उदाहृतं ॥ २२ ॥

टीका.

जो ज्ञान एकही कार्यमें याने भूतादिक आराधनरूपकार्य-
में सर्वफलवानकी तरह आसक्त और हेतुरहित औ तत्त्वज्ञान
रहित अल्पफलदायक सो तामस है याने एक कोई तुच्छदे-
वताका आराधनकरिके उसीमें सर्व मोक्ष स्वर्ग औ धनादि
कभी चाहते हैं वह तामस है ॥ २२ ॥

मूलम्.

नियतंसंगरहितमरागद्वेषतः कृतं ॥ अफलप्रे-
प्सुना कर्मयत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

अन्वयः

यत् कर्म अफलप्रेप्सुना नियतं संगरहितं अरागद्वेषतः
कृतं तत् सात्त्विकं उच्यते ॥ २३ ॥

टीका.

जो कर्म फलइच्छा न करनेवाले पुरुषने नियत याने वि-
हित औ ममतारहित औ रागद्वेषविना किया है उसको सा-
त्त्विक कहते हैं याने जो कर्म अपनेको करनाही उचित है
उसमे ममता औ उसका फल त्यागिके रागद्वेषविना याने
आसक्ती औ तिरस्कारविना स्वधर्म जानिके करता है सो
कर्म सात्त्विक है ऐसे कहा है ॥ २३ ॥

मूलम्.

यत्तुकामेप्सुना कर्मसाहंकारेण वा पुनः ॥ क्रिय
ते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतं ॥ २४ ॥

अन्वयः

यत् तु बहुलायासं कर्म कामेप्सुना वा पुनः साहंका-
रेण क्रियते तत् राजसं उदाहृतं ॥ २४ ॥

टीका.

जो बहुतपरिश्रमसाध्यकर्ममे कामनाकी इच्छाकिके औ
अहंकारकरिके कि मेरेबिन ऐसा कर्म कौन करि सकता है
ऐसी बुद्धिसे करते हैं वह राजस कर्म कहता है ॥ २४ ॥

मूलम्.

अनुबंधक्षयंहिसामनपेक्ष्यचपौरुषं ॥ मोहादार
भ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

अन्वयः

अनुबंधं क्षयं हिंसां च पौरुषं अनवेक्ष्य मोहात् यत् कर्म

आरभते तत् तामसं उच्यते ॥ २५ ॥

टीका.

जो अनुबंध याने कर्म कियेपिछे दुःख क्षय आपके द्रव्य का स्वर्च हिंसा उस कर्ममे प्राणीमात्रको पीडा पौरुष कर्म समाप्त करनेकी समर्थता इनको देखेविना मोहसे जो कर्म का आरंभ करते हैं सो तामसकर्म है ॥ २५ ॥

मूलम्.

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥ सि
द्धयसिद्धयोर्निर्विकारः कर्त्ता सात्विक उच्यते ॥ २६ ॥

अन्वयः

यः मुक्तसंगः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः सिद्धय
सिद्धयोः निर्विकारः सः कर्त्ता सात्विकः उच्यते ॥ २६ ॥

टीका.

जो कर्त्ता याने करनेवाला पुरुष फलसंगरहित औ कर्त्ता
पनके अहंकारकरीके रहित धीरज औ उत्साहकरिके युक्त
तथा सिद्धि औ असिद्धिमे विकाररहित होय सो कर्त्ता सा-
त्विक कहता है ॥ २६ ॥

मूलम्.

रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्त्ताराजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

अन्वयः

यः कर्त्ता रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशु
चिः हर्षशोकान्वितः सः राजतः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

टीका.

जो कर्त्ता रागी याने यशकी इच्छा करनेवाला औ कर्मफल

३२४ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.
चाहनेवाला लोभी याने जितना द्रव्य खर्च करना चाहिये व
तना उसकर्ममे न खर्चकरनेवाला हिंसात्मक याने दूसरोंको
पीडित करिके कर्मकरनेवाला अशुचि कर्ममे कहे प्रमाण प-
वित्रताको न करनेवाला औ सिद्धि तथा असिद्धिके निमित्त
हर्षशोकयुक्त होय सो राजस है ऐसा कहा है ॥ २७ ॥

मूलम्.

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः
॥ विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

अन्वयः

यः कर्ता अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठः नैष्कृतिकः अल-
सः विषादी च दीर्घसूत्री सः तामसः उच्यते ॥ २८ ॥

टीका.

जो कर्ता शास्त्रोक्तकर्मके अयोग्य औ विद्या न पढा भया
अनम्र अभिचारादिक कर्मोंमे रुचिकरनेवाला ठग आलसी
विषाद करनेवाला औ एकदिनके कामको महीनेमे करनेवा-
ला होय उसको तामस कहते हैं ॥ २८ ॥

मूलम्.

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥ प्रोच्यमा-
नमशेषेण पृथक्त्वेन धनं जय ॥ २९ ॥

अन्वयः

हे धनं जय अशेषेण मया प्रोच्यमानं पृथक्त्वेन गुणतः त्रि-
विधं बुद्धेः च धृतेः एव भेदं शृणु ॥ २९ ॥

टीका.

हे धनं जय याने हे अर्जुन अशेष याने आदिअंतसे मेरा क
हाभया न्यारान्यारा गुणों करिके तीनप्रकारका ऐसा जो बुद्धि

औ धारणका भेद है सो सुनौ ॥ २९ ॥

मूलम्.

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्याकार्येभयाऽभये ॥ बंधं
मोक्षंचयावेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्विकी ॥ ३० ॥

अन्वयः

हे पार्थ या बुद्धिः प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भया
ऽभये बंधं च मोक्षं वेत्ति सा सात्विकीबुद्धिः ॥ ३० ॥

टीका.

हेअर्जुन जो बुद्धि प्रवृत्ति औ निवृत्ति तथा कार्य औ अ-
कार्य भय औ अभय बंध औ मोक्ष इनको जानै सो सात्वि-
कीबुद्धि है ॥ ३० ॥

मूलम्.

ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥ अय
थावत्प्रजानातिबुद्धिःसापार्थराजसी ॥ ३१ ॥

अन्वयः

हे पार्थ यया बुद्ध्या नरः धर्मं च अधर्मं कार्यं च अकार्यं
एव अयथावत् प्रजानाति सा बुद्धिःराजसी ॥ ३१ ॥

टीका.

हेअर्जुन जिसबुद्धिकरिके मनुष्यधर्म औ अधर्म कार्य औ
अकार्य इनको निश्चय न जानिसकै सो बुद्धि राजसी है ॥ ३१ ॥

मूलम्.

अधर्मधर्ममितियामन्यतेतमसावृता ॥ सर्वा
र्थान्विपरीतांश्चबुद्धिःसापार्थतामसी ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ याबुद्धिः तमसा वृता अधर्म धर्म इति मन्यते च

सर्वार्थान् विपरीतान् मन्यते सा बुद्धिः तामसी ॥ ३२ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो बुद्धि अज्ञानसे लपटी भईहुई अधर्मको धर्म
औ धर्मको अधर्म मानौ औ इसीतरह सर्व पदार्थोंको उलटे
ही जानै सो बुद्धि तामसी है ॥ ३२ ॥

मूलम्

धृत्याययाधारयतेमनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥ यो
गेनाऽव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्विकी ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हे पार्थ नरः यथा अभिचारिण्या धृत्या योगेन मनः प्रा
णेंद्रियक्रियाः धारयते सा धृतिः सात्विकी ॥ ३३ ॥

टीका.

हे पृथातनय मनुष्य जिस अखंड मोक्षसाधनभूत धारणा
करिके योगबलसे मन प्राण औ इंद्रिय इनकी क्रियाओंको धार
ण करै सो धारणा सात्विकी ॥ ३३ ॥

मूलम्.

ययातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेनरः ॥ प्रसं
गेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥ ३४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ फलाकांक्षी नरः फलाकांक्षाप्रसंगेन यथा धृत्या
धर्मकामार्थान् धारयते सा धृतिः राजसी ॥ ३४ ॥

टीका.

हे अर्जुन फलकी इच्छा करनेवाला उस फलइच्छाके प्रसं
गकरिके जिस धारणाकरिके धर्म काम औ अर्थ इनको धार
ण करता है सो धारणा राजसी है ॥ ३४ ॥

मूलम्.

ययास्वप्नभयंशोकंविषादंमदमेवच ॥ नविमुं
चतिदुर्मेधाधृतिःसातामसीमता ॥ ३५ ॥

अन्वयः

दुर्मेधाः पुरुषः यया धृत्या स्वप्नं भयं शोकं विषादं च
मदं एव न विमुंचति सा धृतिः तामसी मता ॥ ३५ ॥

टीका.

दुष्ट है मेधा याने बुद्धि जिसकी ऐसा पुरुष जिस धारणा
करिके स्वप्न भय शोक विषाद औ मद याने गर्व नहीं छोड़ता
है अर्थात् इन स्वप्नादिकोंके साधनरूप कर्म बारंवार करता है
सो धारणा तामसी है ॥ ३५ ॥

मूलम्.

सुखंत्विदानींत्रिविधंशृणुमेभरतर्षभ ॥ अ
भ्यासाद्रमतेयत्रदुःखांतंचनिगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्तदग्रेविषमिवपरिणामेऽमृतोपमं ॥ तत्सुखं
सात्त्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजं ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हे भरतर्षभ इदानीं सुखं अपि त्रिविधं मे मत्तः शृणु
यत्र सुखे अभ्यासात् रमते च दुखांतं निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत् तदग्रे विषं इव परिणामे अमृतं इव तत् आत्मबु
द्धि प्रसादजं सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं ॥ ३७ ॥

टीका.

हे भरतवंशमे श्रेष्ठ अब सुखभी तीनप्रकारका मेरेसे सुनौ
जिससुखमे अभ्यास करनेसे बहुतकालमे मन रमता है औ

दुःखके अंतकोभी प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ औ जो सुख प्रथम उसके साधनकालमें विषसदृश्य कारण किं मनका संयमादिक करनेमें दुःख होता है इसवास्ते प्रथम विषतुल्य प्राप्ति औ परिणाममें अमृततुल्य अर्थात् जब अत्मस्वरूपकी प्राप्ति भई तब अमृतवत् भया सो आत्मा संबंधी बुद्धिकी प्रसन्नतासे प्राप्त भया जो सुख सो सात्विक है ॥ ३७ ॥

मूलम.

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमं ॥ परिणा
मेविषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतं ॥ ३८ ॥

अन्वयः

यत् सुखं विषयेंद्रियसंयोगात् तदग्रे अमृतोपमं परि
णामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतं ॥ ३८ ॥

टीका.

जो सुख विषय इंद्रियोंके संयोगसे प्रथम अमृततुल्य औ परीणाममें उसका फल संसारदुःख इसवास्ते विषतुल्य होता है सो सुख राजस है ॥ ३८ ॥

मूलम.

यदग्रेचानुबंधेचसुखंमोहनमात्मनः ॥ निद्राल
स्यप्रमादोत्थंतत्तामसमुदाहृतं ॥ ३९ ॥

अन्वयः

यत्सुखं अग्रे च अनुबंधे अपि आत्मनःमोहनं तत् निद्रा
लस्यप्रमादोत्थं सुखं तामसं उदाहृतं ॥ ३९ ॥

टीका.

जो सुख प्रारंभमें औ अंत परिणाममेंभी मनका मोहनेवा-
ला याने अचेत करनेवाला सो निद्रा आलस औ प्रमाद जिससे

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

३२९

कृत्याकृत्यका विवेक न रहै इसको प्रमाद कहते हैं सो इन निद्रा आलस औ प्रमादसे उत्पन्न भया जो सुख उसको तामस कहते हैं ॥ ३९ ॥

मूलम.

नतदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥ सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्य त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

अन्वयः

यत् सत्त्वं एभिः प्रकृतिजैः त्रिभिः गुणैः मुक्तं तत् पृथिव्यां वा दिवि वा पुनः देवेषु न अस्ति ॥ ४० ॥

टीका.

जो प्राणीमात्र इन प्रकृतिजन्य तीनौ गुणोंकरिके छुटा है सो पृथ्वीमे अथवा स्वर्गमे अथवा ब्रह्मलोकपर्यंत देवतोंभी नहीं है ॥ ४० ॥

मूलम.

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांच परंतप ॥ कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हे परंतप ब्राह्मणक्षत्रियविशां च शूद्राणां स्वभावप्रभवैः गुणैः कर्माणि प्रविभक्तानि ॥ ४१ ॥

टीका.

हे परंतप अर्जुन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य औ शूद्र इनके स्वभावसे याने ब्राह्मणादिक जन्महेतुकस्वभावसे उत्पन्न भये जो गुण तिनकरिके कर्मोंका भी विभाग किया है ॥ ४१ ॥

मूलम.

शमोदमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥ ज्ञानं वि

ज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजं ॥ ४२ ॥

अन्वयः

शमः दमः तपः शौचं क्षांतिः च आर्जवं ज्ञानं विज्ञानं
आस्तिक्यं इति ब्रह्मकर्म स्वभावजं एव ॥ ४२ ॥

टीका.

शम बाहेरकी इंद्रियोंको नेममे रखना दम अंतःकरणको नियममे रखना तप भोगोंका नेम शास्त्रप्रमाण कायकेश शौच शास्त्रोक्तकर्म करनेकी योग्यताकेवास्ते बाहेर औ अंतःकरणकी शुद्धि क्षांति क्षमा आर्जुव सर्वसे सीधे रहना ज्ञान परावरतत्व-निश्चयरूप विज्ञान परतत्वकेविषे विशेषताजानिके उसकी भक्ति करना आस्तिक्य याने वैदिकवाक्योंमे सत्यता यह ब्राह्मणका स्वाभाविक धर्म है ॥ ४२ ॥

सूत्रम्.

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनं ॥

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजं ॥ ४३ ॥

अन्वयः

शौर्यं तेजः धृतिः दाक्ष्यं च युद्धे अपि अपलायनं दानं च
ईश्वरभावः इति क्षात्रं कर्म स्वभावजं अस्ति ॥ ४३ ॥

टीका.

शूरवीरपना याने युद्धमे निर्भय व्हाँके प्रवेश करना तेज याने जिसके सामने दुसरे डरते डरने खडे रहै धृति धीरज याने युद्धादिकमे कुछ विघ्न देखिके घबडानानही दाक्ष्य समस्त कार्य करने मे चातुर्य युद्धे अपि अपलायनं याने युद्धमे आपके मृत्युपर्यंतभी भागना नही दान उदारता ईश्वरभाव सबको आपके स्वाधीन रखनेकी समर्थता यह क्षत्रियका सौभाविक कर्म है याने जिसपूर्व

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका. ३३७
कर्मसे क्षत्रियजन्म भया उसी कर्मसे यह स्वभाव पैदा है ॥ ४३ ॥

मूलम्.

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यवैश्यकर्मस्वभावजं ॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजं ॥ ४४ ॥

अन्वयः

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं इति वैश्यकर्म स्वभावजं अस्ति प
रिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजं अस्ति ॥ ४४ ॥

टीका.

कृषि खेतिकरना गोरक्ष्य गौवें पालना उनके दूध दही वगै
रेसे जीविका करना वाणिज्य याने सौदा लेना बेचना इत्या-
दिक वैश्यका कर्म स्वभावहीसे औ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इ
न तिनौ वर्णकी परिचर्या याने चाकरि करना यह शूद्रका
कर्म स्वभावहीसे है ॥ ४४ ॥

मूलम्

स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥ स्वकर्म
निरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥ यतः
प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततं ॥ स्वकर्मणा त
मभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ ४६ ॥

अन्वयः

स्वे स्वे कर्मणि आभिरतः नरः संसिद्धिं लभते स्वकर्म
निरतः यथा सिद्धिं विंदति तत् शृणु ॥ ४५ ॥ यतः
सकाशात् भूतानां प्रवृत्तिः येन इदं सर्वं ततं तं स्वक
र्मणा अभ्यर्च्य मानवः सिद्धिं विंदति ॥ ४६ ॥

टीका.

आपआपके कर्मोंमें लगे रहनेसे मनुष्यसिद्धियाने परमपद

मोक्षको प्राप्त होता है सो जैसे आपके कर्ममे निरत भयाहुवा सिद्धिको प्राप्त होता है सो सुनौ ॥ ४५ ॥ जिसपरमात्मासे इन भूतप्राणी मात्रोंकी प्रवृत्ति याने उत्पत्ति रक्षा प्रलय है औ जिसकरिके यह सर्व जगत व्याप्त है उसका आपके स्वकर्मसे आराधन करिके मनुष्य परमपद पावता है अर्थात् वह परमात्मा मै हों मेरेको पूजिके सिद्धि पावौगे मेरी आज्ञामे रहो सो प्रथमही कहा है ॥ अहंसर्वस्यजगतः प्रभवःप्रलयस्तथा ॥ मत्तः परतरंनान्यात्किंचिदस्तिधनंजय ॥ मयाततमिदंसर्वजगदव्यक्तमूर्तिना ॥ मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरं ॥ अहंसर्वस्य प्रभवोमत्तःसर्वप्रवर्तते इत्यादि ॥ ४६ ॥

मूलम्.

श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥ स्वभावनियतंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषं ॥ ४७ ॥

अन्वयः

स्वनुष्ठितात् परधर्मात् स्वधर्मः विगुणः अपि श्रेयान् स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् सन् किल्बिषं न आप्नोति ॥ ४७ ॥

टीका.

अतिरमणीय अनुष्ठानयुक्त पराये धर्मसे आपना धर्म विगुणभी श्रेष्ठ है जैसे कि तुमने कहा कि यह गुरुहिंसादिकयुक्त युद्ध मैं न करौंगा भिक्षा अहिंसा धर्म है सो करौंगा सो उस भिक्षासे तुमको यह युद्धही कल्याणकारक है क्योंकि जो कर्म जिसका जन्मस्वभावहीसे वर्णाश्रमके उचित है उसको करताकरता पापको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

मूलम्.

सहजंकर्मकौंतेयसदोपमपिनत्यजेत् ॥ सर्वा

रंभाहिदोषेणधूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय सदोषं अपि सहजं कर्म न त्यजेत् हि यस्मात्
अग्निः धूमेन इव सर्वारंभाः दोषेण आवृताः ॥ ४८ ॥

टीका.

हेकुंतीपुत्र दोषकरिकेभी युक्त सहजकर्म याने ब्राह्मणादि-
कौंका स्वभावजनित कर्म न त्यागना क्योंकि जैसे धुआँसे
अग्नि आच्छादित रहता है याने धुवां जहां अग्नि वहां रहईगा
ऐसेही ज्ञानकर्मादिक सर्व आरंभ दोषाँकरिके युक्त हैं इहां त
ह सिद्ध भया कि केवल ज्ञानाभ्याससे कर्म करनाही याने
निष्कामकर्म करनाही कल्याणकारक है ॥ ४८ ॥

मूलम्.

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥ नैष्क
र्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

अन्वयः

यः सर्वत्र असक्तबुद्धिः जितात्मा विगतस्पृहः सः परमां
नैष्कर्म्यसिद्धिं संन्यासेन अधिगच्छति ॥ ४९ ॥

टीका.

जो सर्वत्र फलादिकौंमे असक्तबुद्धि याने फलइच्छारहित
औ जीता है मन जिसने ऐसा औ कर्तुत्वादिक परमात्माने
युक्तकिये हैं इसते स्पृहारहित है ऐसा पुरुष परमां निष्कामक
र्मसिद्धिं याने परमपद उसपदको संन्यास करिके याने कर्मफल
त्याग करिके औ करनेके योग्य कर्मकरताभया परमपदको
पावैगा ॥ ४९ ॥

मूलम्.

सिद्धिप्राप्तो यथा ब्रह्मतथा प्रोतिनिबोधमे ॥

३३४ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

समासेनैवकौंतेयनिष्ठाज्ञानस्ययापरा ॥ ५० ॥

अन्वयः

हेकौंतेय सिद्धिप्राप्तः नरः यथा ब्रह्म आप्नोति तथा मे म
त्तःसमासेन निबोध या ज्ञानस्य परा निष्ठा अस्ति ॥ ५० ॥

टीका.

हेकौंतेय अर्जुन उससिद्धिको प्राप्त हुआ जैसे ब्रह्मको प्राप्त
होता है तैसे मेरेसे संक्षेपकरिके सुनौ जो ध्यानात्मक ज्ञानकी
परनिष्ठा याने श्रेष्ठप्राप्तियोग्य है अर्थात् ज्ञानकी समाप्ति है ॥ ५० ॥

मूलम.

बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥
॥ ५१ ॥ विविक्तसेवीलघ्वाशीयतवाक्कायमा
नसः ॥ ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रि
तः ॥ ५२ ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

अन्वयः

विशुद्ध्या बुद्ध्या युक्तः च धृत्या आत्मानं नियम्य शब्दा
दीन् विषयान् त्यक्त्वा च रागद्वेषौ व्युदस्य ॥ ५१ ॥ विधि
क्तसेवीलघ्वाशी यतवाक्कायमानसः नित्यं ध्यानयोगप
रः वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रो
धं परिग्रहं विमुच्य निर्ममः शांतः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

टीका.

विशेषकरिके जो शुद्ध ऐसी बुद्धिकारिके युक्त याने सात्विकी
बुद्धियुक्त औ सात्विकी धारणकरिके मनको विषय विमुखक

रिक्के परमात्मामे नियमित करै शब्दादिकविषयोंको त्यागिके
याने शब्दादि विषय प्रीतिरहित व्हाके उन शब्दादिकोंके नि
मित्त जो रागद्वेष है उनको छोड़िके विविक्तसेवी याने एकांतमे
रहै याने वृथावादीपुरुषोंका संग न करें लघ्वाशी युक्तीका आ
हार करै औ वाणी शरीर तथा मनको योगयत्नमे राखै नित्यही
योगध्यानमे तत्पर रहै आत्मव्यतिरिक्तविषयोंसे वैराग्यराखै
औ अहंकार याने आनात्मादेहमे अत्माभिमान बल याने उस
अहंकारवृद्धिका कारण अर्थात् वासना बल दर्प याने गर्व तथा
काम क्रोध परिग्रह याने आत्मव्यतिरिक्त वस्तुका स्वीकार इन
सबनको छोड़िके निर्मम याने सर्व परमात्माका है यह सर्व मे
रा करिके जो प्रतीत होत है सो मेरा नहीं इसीसे शांत केवल आ
त्मानुभव सुखमे आनंद ऐसा पुरुष ब्रह्म भूयायकल्पते याने ब्रह्म
भावको प्राप्त होता है अर्थात् सर्व बंधनसे छुटा भया यथास्थित
आत्मस्वरूपहीका अनुभव करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥

मूलम्.

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मानो चोचति न कांक्षति ॥ स

मः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां ॥ ५४ ॥

अन्वयः

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति सर्वेषु भू

तेषु समः सन् परां मद्भक्तिं लभते ॥ ५४ ॥

टीका.

ब्रह्मभूतः याने स्वस्वरूपको प्राप्त भयाहुवा इसी स्वस्वरूप
प्राप्तिसे प्रसन्नमनवाला पुरुष न मेरे व्यतिरिक्त वस्तुको शोचता
है न चाहै इसीसे सर्वभूतप्राणीमात्रमे सम याने न किसीसे
वैर न प्रीति ऐसा पुरुष मेरी पर याने उत्कृष्ट भक्तियाने मेरेमे

३३६ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.
अति प्रियतारूप भक्तिको प्राप्त होता है अर्थात् मेरेको सर्व ज-
गत् कारण औ आपका प्रियस्वामी जानिके मेरेहीमे अति
प्रेम करता है यही पराभक्ति है ॥ ५४ ॥

मूलम्.

भक्त्यामामभिजानातियावान्यश्चास्मि तत्त्वतः
॥ ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरं ॥ ५५ ॥

अन्वयः

अहं यावान् अस्मि च यः अस्मि तं मां भक्त्या तत्त्वतः
अभिजानाति ततः मां तत्त्वतः ज्ञात्वा तदनंतरं मां
विशते ॥ ५५ ॥

टीका.

मैं विभूति औ गुणोंकरिके जेतना हों औ स्वरूप तथा
स्वभासे जो हों तिस मेरेको उस भक्तिरूप साधनसे तत्त्वक
रिके जानता है तिस पीछे मेरेको तत्त्वसे जानिके फिरि मेरे
को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

मूलम्.

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्ब्रयपाश्रयः ॥ म
त्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययं ॥ ५६ ॥

अन्वयः

मद्ब्रयपाश्रयः सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणः सन् म
त्प्रसादात्तु शाश्वतं अव्ययं पदं अवाप्नोति ॥ ५६ ॥

टीका.

मद्ब्रयपाश्रयः याने मेराही आश्रयः है जिसको सो सर्वकर्म
याने नित्यनैमित्तिक लौकिक वैदिकभी सर्वकालमे करता
करता मेरी कृपासे सनातन औ अविनाशीपद याने मेरेको
प्राप्त होयगा अर्थात् यह मेरे शरणका प्रभाव है ॥ ५६ ॥

मूलम्.

चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥ बुद्धि
योगमुपाश्रित्यमच्चित्तःसततंभव ॥ ५७ ॥

अन्वयः

मत्परःसन् चेतसा सर्वकर्माणि मयिसंन्यस्य बुद्धियो
गं उपाश्रित्य सततं मच्चित्तः भव ॥ ५७ ॥

टीका.

मत्परः याने महीं हों पर परमेश्वर जिसका ऐसा व्हेके चित्त
से सर्व लौकिक वैदिक कर्म मेरे अर्पणकरिके बुद्धियोग याने
व्यवसायात्मिका बुद्धिका आश्रय करिके अर्थात् मेरेही प्राप्ति
की चाहना करिके निरंतर मेरेहीमे चित्त लगावौ ॥ ५७ ॥

मूलम्.

मच्चित्तःसर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥ अथ
चेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

अन्वयः

मच्चित्तः सन् मत्प्रसादात् सर्वदुर्गाणि तरिष्यसि अथ
चेत्त्वं अहंकारात् मे वचः श्रोष्यसि तर्हि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

टीका.

मेरेमे चित्तको लगाये भये मेरी कृपासे सब संसारदुर्गको
तरौगे जो कदाचित् तुम अहंकारसे मेरे वाक्य न सुनौगे तौ
नष्ट होऊगे ॥ ५८ ॥

मूलम्.

यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥ मिथ्यै
वव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

अन्वयः

यत् अहंकारं आश्रित्य अहं न योस्स्ये इति मन्यसे तदा
तेव्यवसायः मिथ्या एव त्वां युद्धादौ प्रकृतिः नियोक्ष्यति ५९

टीका.

जो अहंकारसे तुम यह कहोगे कि मैं युद्ध न करौंगा तो
तुझारा यह निश्चय मिथ्या होयगा औ प्रकृती जो तुझारा
क्षात्रस्वभाव सो तुमको युद्धमे आपही युक्त करैगा याने जब
दुसरोंके शस्त्र तुझारे अंगमे लगैगे तब तुमसेभी न रहा जा
यगा युद्धही करने लगैगे ॥ ५९ ॥

मूलम.

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥ कर्तुं ने
च्छसि यन्मोहात् करिष्यस्य वशोऽपि तत् ॥ ६० ॥

अन्वयः

हे कौंतेय यत् युद्धं मोहात् कर्तुं न इच्छसि तत् एव
युद्धं त्वं स्वभावजेन स्वेन कर्मणा निबद्धः सन् ततः
अवशः अपि करिष्यसि ॥ ६० ॥

टीका.

हे कौंतेय जिस युद्धको तुम मोहसे करनेको नहीं इच्छा
करते हो उसही युद्धको तुम आपके क्षत्रियस्वभावके कर्म क-
रिके बंधनमे प्राप्त भये हुये करौगे याने जब दूसरे मारने ल-
गैगे तब आपही स्वभावपरवश व्हीके युद्ध करौगे ॥ ६० ॥

मूलम.

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति ॥ भ्रामय
न्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥ तमे
वशरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥ तत्प्रसादात्परां

शांतिस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतं ॥ ६२ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन ईश्वरः मायया यंत्रारूढानि सर्वभूतानि भ्रा
मयन्सन् सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति ॥ ६१ ॥ हेभारत
सर्वभावेन तं एव शरणं गच्छ तत्प्रसादात् परां शांतिं
च शाश्वतं स्थानं प्राप्स्यसि ॥ ६२ ॥

टीका.

हे अर्जुन ईश्वर जो परमात्मा सो आपकी मायाकरिके यंत्रा
रूढानि याने शरीरमें रहेभये सर्वभूतोंको भ्रमावताभया सर्वभू-
तोंके हृदयमे स्थित है ॥ ६१ ॥ हेभारत सर्वभावेन याने सर्व
का अंतर्धामी जानिके अथवा सर्व माता पिता सुहृदंधु द्रव्य
विद्या इत्यादिक सर्व उसीपरमात्माको जानिके उसीकी अ
र्थात् वह परमात्मा मैं हौं सो तुम मेरी शरण आवौ औ उ-
सी मेरी प्रसन्नतासे परांशांति याने सर्वबंधमुक्तिको पावोगे औ
शाश्वत याने सनातन स्थान जो मैं उस मेरेको प्राप्त होउगे
॥ ६२ ॥

मूलम्.

इतितेज्ज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥ वि

मृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ॥ ६३ ॥

अन्वयः

मया इति गुह्यात् गुह्यतरं ज्ञानं ते आख्यातं एतत् अ
शेषेण विमृश्य यथा इच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

टीका.

हेअर्जुन मैने यह गोप्यस्त्रेभी गोप्य ज्ञान तद्द्वारेसे कहा
इसको अच्छी तरहसे विचारिके फिरि जैसी इच्छा होय तै
सा करौ ॥ ६३ ॥

मूलम्.

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥ इष्टोऽसि मे हृदमिति ततो वक्ष्यामि ते हितं ॥ ६४ ॥

अन्वयः

सर्वगुह्यतमं मे परमं वचः भूयः शृणु यतः त्वं मे हृदं इष्टः असि ततः ते इति हितं वक्ष्यामि ॥ ६४ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्णभगवान् लोकौपर परम दयाकरिके इन तीन श्लोकौमे सर्वगीताका सार कहते हैं सर्वमे गुह्यसे गुह्य भक्ति योगगर्भित मेरा वाक्य भूयः याज्ञे एकवार ॥ इदं तु ते गुह्यतमं प्र वक्ष्याम्यनसूयवे ॥ ऐसे कहाथा इसवास्ते कहते हैं कि फिरिभी सुनौ क्योंकि तुममेरेहृदप्रिय याने अतिशय करिके प्रिय हो इसवास्ते यह तुझारा हित होनेकेवास्ते कहता हौं ॥ ६४ ॥

मूलम्.

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥ मामे वैष्ण्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

अन्वयः

मन्मनाः भव मद्भक्तः भव मद्याजी भव मां नमः कुरु ततः मां एव एष्ण्यसि इति ते सत्यं प्रतिजाने यतः त्वं मे प्रियः असि ॥ ६५ ॥

टीका.

हेअर्जुन तुम मेरेहीमे मन लगावौ औ मेरेही भक्ति करौ या ने मेराही अखंड स्मरण करौ मद्याजी याने मेराही पूजन करौ मां नमस्कुरु याने मेरेहीको नमस्कार करौ तिसते मेरेहीको प्राप्त होउगे यह मै तुझारेसे सत्य प्रतिज्ञाकतरा हौं क्योंकि तुम

मेरे प्रिय हौ इसवास्ते प्रतिज्ञाकरिके तुम्हारा हित करता हौं ॥ ६६

मूलम.

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ अहं त्वां
सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥

अन्वयः

त्वं सर्वधर्मान् परित्यज्य एकं मां शरणं व्रज अहं त्वां सर्व
पापेभ्यः मोक्षयिष्यामि त्वं मा अशुचः ॥ ६६ ॥

टीका.

हे अर्जुन तुम सर्वधर्मोंको त्यागिके याने कर्मयोग ज्ञानयोग
भक्तियोगरूप परमकल्याणके साधन मेरे आराधनरूप मेरी प्री
तिवास्ते यथाधिकारसे सर्व कर्मकरिके उनका कर्तापन औ
उनमे समत्व औ फलोंका त्यागरूप त्यागकरिके मेरीहीको क
र्ता औ उन धर्मोंकरिके आराधनेयोग्य औ प्राप्त होनेयोग्य औ
उपायभी जानिके मेरेही एकके शरण आवौ तौ मैं तुम्हारेको
सर्व भक्तिके विरोधी पापोंसे तुमको छोड़ावौंगा तुमशुच नकरो
इहां श्रीकृष्णभगवानने सर्वधर्मोंका फलकर्तृत्वऔसमत्वहीका
त्याग कहा है सर्वधर्मोंका स्वरूपहीका त्याग नहीं कहा है जैसे
कि प्रथमही जनाया है ॥ निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्रत्रिविधः परिकीर्तितः ॥ इहांसे आरंभकरिके सं
गत्यत्काफलं चैव सत्यागः सात्त्विको मतः ॥ नहि देहभृता शक्यं त्य
क्तुं कर्माण्यशेषतः ॥ यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते यह
अध्यायके आदिहीमे अतिटुटकरिके कहा है स्वरूपसे त्यागमे
औरभी विरोध आता है जैसेकि धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामियु
गेयुगे ॥ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् इसवास्ते इहां
फलादिकत्याग हीको त्याग कहा है यही सिद्धांत है जो कि स्वरूप

पसे धर्म त्यागनेको अर्थ करते है वै भगवान्की माया करि
के मोहित व्हैके वृथा अनर्थही करते हैं ॥ ६६ ॥

मूलम्.

इदं तेनातपस्कायनाभक्ताय कदाचन ॥ नचा
शुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

अन्वयः

इदं शास्त्रं ते त्वया अतपस्काय न वाच्यं च अभक्ता
य कदाचन न वाच्यं च अशुश्रूषवे न वाच्यं च यः
मां अभ्यसूयति तस्मै न वाच्यं ॥ ६७ ॥

टीका.

यह जो अतिगौप्य गीताशास्त्र है इसको मैने तुमसे कहा
तुम इसशास्त्रको जिसने तप न किया होय उसको न कहना औ
मेरा औ मेरे भक्तोंका जो भक्त न होय उसको कोईकालमेभी
न कहना औ जो तपस्वी औ भक्तभी दीखै तौभी जो गुरु याने
इसशास्त्रके उपदेश करनेवालेका सेवा न करै उसकोभी न कहना
औ जो मेरे रूप गुण औ वैभव सुनिके निंदा करै उसकोभी न
कहना अर्थात् इसको कोईतरहसेभी उपदेश न करना ॥ ६७ ॥

मूलम्.

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥ भक्तिं म
यि परां कृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥ नच
तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृतमः ॥ भवि
तान च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

अन्वयः

यः इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु अभिधास्यति सः मयि परां

भक्तिं कृत्वा मां एव एष्यति इति असंशयः ॥ ६८ ॥

मनुष्येषु तस्मात् अन्यः कश्चित् मे प्रियकृतमः न अभूत् न च अस्ति न भविता च भुवि तस्मात् अन्यः कश्चित् मे प्रियतरः न अभूत् अस्ति च न भवति ॥ ६९ ॥

टीका.

जो यह परम गोप्य गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमे वर्णन करेगा सो मेरेविषे परमभक्तिकरि के मेरेहीको प्राप्त होयगा इसमे संशय नहीं ॥ ६८ ॥ औ मनुष्योंमे उसते अधिक कोईभी मेरा अतिप्रिय करनेवाला नहीं होता भया औ न है न होयगा औ पृथ्वीमे मेरेभी उसते दूसरा प्यारेसे प्यारा न कोई भया न है औ न होयगा ॥ ६९ ॥

मूलम्.

अध्येष्यतेचयद्दमंधर्म्यसंवादमावयोः ॥ ज्ञान

यज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामितिमेमतिः ॥ ७० ॥

अन्वयः

यः च इमं आवयोः धर्म्यं संवादं अध्येष्यते तेन ज्ञानयज्ञेन अहं इष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

टीका.

गीताशास्त्रव्याख्या करनेवालेका महात्म्य कहा अब अध्ययन करनेवालेका कहते हैं हेअर्जुन जो कोई इस हमारे औ तुम्हारे संवादको पढेगा तिसकरि के ज्ञानयज्ञसे मै पूजित होऊँगा याने उसने ज्ञानयज्ञकरि के मेरा आराधन किया ऐसा मै मानौगा ऐसा मेरा मत है ॥ ७० ॥

मूलम्

श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपियोनरः ॥ सोपिमु

क्तः शुभं लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणां ॥ ७१ ॥

अन्वयः

यः नरः श्रद्धावान् च अनसूयः सन् शृणुयात् अपि सः
अपि मुक्तः सन् पुण्यकर्मणां शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् ॥ ७१ ॥

टीका.

जो मनुष्य श्रद्धासंयुक्त औ निंदारहित व्हेके केवल श्रवण
ही करैगा सोभी संसारबंधसे मुक्त व्हेके जो पुण्यकर्म करनेवा
ले याने मेरे भक्तोंके लोकोको प्राप्त होयगा ॥ ७१ ॥

मूलम्.

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्र्येण चे तसा ॥ क
च्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनं जय ॥ ७२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ कच्चित् एतत् एकाग्रचेतसा श्रुतं किं हे धनं जय
कच्चित् ते अज्ञानसंमोहः प्रणष्टः ॥ ७२ ॥

टीका.

भगवान् पूछते हैं कि हे पार्थ जो मैंने कहा सो क्या तुमने ए
काग्रचित्तकरिके सुनाया नहीं जो सुना तो हे धनं जय क्या तुम्हा
रा अज्ञानसे उत्पन्न भयामोह नष्ट भया कि कैसा सो कहौ ॥ ७२ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसा
दान्मयाऽच्युत ॥ स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये
वचनं तव ॥ ७३ ॥

अर्जुनः उवाच हे अच्युत त्वत्प्रसादात् मोहः नष्टः मया

स्मृतिः लब्धा इदानीं गतसंदेहः स्थितः अस्मि अतः
तव वचनं करिष्ये ॥ ७३ ॥

टीका.

अर्जुन कहते हैं कि हे अच्युत तुझारी कृपासे मोह नष्ट
भया औ मै स्मृतिको प्राप्त भया अब संदेहरहित स्थित हौं
इसवास्ते आपका वचन याने स्वधर्मरूप युद्ध करौंगा ॥ ७३ ॥

मूलम्.

संजयउवाच ॥ इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महा
त्मनः ॥ संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणं ॥ ७४ ॥

अन्वयः

संजयः उवाच अहं वासुदेवस्य च महात्मनः पार्थस्य
इति इमं अद्भुतं रोमहर्षणम् संवादं अश्रौषं ॥ ७४ ॥

टीका.

यह सब सुनिके संजय धृतराष्ट्रको कहते हैं कि हे महाराज
मै वसुदेवके पुत्र कृष्णका औ महात्मा याने प्रसन्न है मन
जिसका ऐसा पृथाके पुत्र अर्जुनका यत्तना यह अद्भुत रो-
मांचकारक संवाद सुनता भया ॥ ७४ ॥

मूलम्.

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरं ॥ योगयो
गेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयं ॥ ७५ ॥

अन्वयः

स्वयं कथयतः साक्षात् योगेश्वरात् कृष्णात् एतत् परं
गुह्यं योगं व्यासप्रसादात् अहं श्रुतवान् अस्मि ॥ ७५ ॥

टीका.

आपही कहि रहे ऐसे साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्णभगवानसे

इसपरमगोप्ययोगको श्रीव्यासजीके अनुग्रहसे सुनता भया ॥ ७५

मूलम्.

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतं ॥ केश
वार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥ तच्च
संस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतं हरेः ॥ विस्मयो मे
महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

अन्वयः

हे राजन् केशवार्जुनयोः इमं अद्भुतं पुण्यं संवादं संस्मृ
त्य संस्मृत्य मुहुः मुहुः हृष्यामि ॥ ७६ ॥ च हे राजन्
तत् अत्यद्भुतं हरेः रूपं संस्मृत्य संस्मृत्य मे महान् वि
स्मयः जायते च पुनः पुनः हृष्यामि ॥ ७७ ॥

टीका.

हे राजन् श्रीकृष्ण औ अर्जुनके इस अद्भुत पुण्यदायक
संवादको स्मरण करिकरिके वारंवार हर्षको प्राप्त होता हौं
॥ ७६ ॥ हे राजन् वह भगवानका अतिअद्भुतरूप उसको
स्मरण करिकरिके मेरेको बड़ा विस्मय होता है औ वारंवार
हर्षित होता हौं ॥ ७७ ॥

मूलम्.

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥ तत्र श्री
विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

अन्वयः

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र धनुर्धरः पार्थः तत्र श्रीः वि
जयः भूतिः ध्रुवानीतिः इति मम मतिः ॥ ७८ ॥

टीका.

जहां योगेश्वर कृष्ण औ जहां धनुषके धरनेवाले अर्जुन हैं त
हांही अचलसंपत्ति औ अचलविजय अचलऐश्वर्य औ अचल

नीति है ऐसा मेरेको निश्चय होता है ॥ ७८ ॥

कान्यकुब्जद्विजोत्तंसोभरहाजान्वयाब्धिजैः ॥ ब्रभूवसुक
लोनाम्नाबालाशर्मेतिविश्रुतः ॥ तदंशवर्द्धनःप्राज्ञोजातो
गोवर्द्धनाऽभिधः ॥ तापीरामःसुतस्तस्यतस्यायंस्तनुजा
स्त्रयः ॥ सीतारामश्चदत्तश्चमोतीरामइतिक्रमात् ॥ सीता
रामात्मजेनेयंगीतावाक्यार्थबोधिनी ॥ रघुनाथप्रसादेन
मयाव्याख्याकृताजनाः ॥ हरिभक्तिरसास्वादरसिकाअ
नुमोदत ॥ वसुवन्द्यं कभूसंख्येविक्रमार्कगताब्दके ॥ मार्ग
शीर्षेदलेकृष्णेह्यष्टम्यांगुरुवासरे ॥ इयंसंपूर्णतांयातागुरो
र्मेऽनुग्रहात्किल ॥ श्रीश्रीनिवासतातार्थमुनेःश्रीरंगवासि
नः ॥ यत्कृतेऽस्याःफलंभूयात्तन्मयापादपद्मयोः ॥ गीता
चार्यस्यकृष्णस्यसीतानाथस्यचार्षितं ॥ इतिश्रीमद्भगव
द्गीता सूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसं
वादेमोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ इति
श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृता
यांश्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायामष्टा
दशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥

हरसेटसुतोबापूरूयातोयंत्रालयाधिपः ॥ रघुना
थश्चबाबाख्यस्तत्सुतावितिविश्रुतौ ॥ १ ॥ व्या
ख्येयंरचिताताभ्यांप्रार्थितेनमयाकिल ॥ रघुना
थप्रसादेनताभ्यामेवविमुद्घिता ॥ २ ॥ स्वीयेयं
त्रालयेरम्येमुंबयांशीसकाक्षरैः ॥ प्राप्तानन्याऽ
धिकाराभ्यांव्याख्याकर्तुःसकाशतः ॥ ३ ॥

समाप्तोयंग्रंथः

